MA HIS-103 H

भारतीय इतिहास-II
(Indian History-II)
(750 to 1857 AD)

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

SWAMI VIVEKANAND
SUBHARTI UNIVERSITY
Meerut (National Capital Region Delhi)

भारतीय इतिहास–II

(INDIAN HISTORY–II)

[750 to 1857 AD]

MA HIS–103 H

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY
MEERUT–250 005
UTTAR PRADESH

SLM Developed by :
S. Prakesh

Reviewed by :
Dr. Sartaj Ahmed

Copyright © भारतीय इतिहास-II Pragati Prakashan, Meerut

No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any meaning now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior permission from the publisher.

Information contained in this book has been published by Pragati Prakashan, Meerut and has been obtained by its authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the publisher and its author shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specially disclaim and implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by : Pragati Prakashan, 240 W.K. Road, Meerut – 250 001
Tel. 2640642, 2643636, 6544643, E-mail : pragatiprakashan@gmail.com

EDITION : 2021

Syllabus

Indian History-II

(750 to 1857 A.D.)

Course Objectives:

After the completion of this course, the students will be able to :

- Acquire knowledge the early medieval India..
- Understanding the religious conditions of 750 to 1200 A.D.
- Develop a critical attitude about the Police of Mughal &.Sur empire.
- Understanding the culture & social changes of British 's India.

Unit-1: Early Medieval India: Major Dynasties:

The Chola Empire. Agrarian & political structures. The Rajaputras. Extent of social mobility. Position of women. The Arabs in Sindh and in the Ghaznavides.

Cultural trend : 1200, Religious conditions: Importance of temples and monastic institutions. Sankaracharya; Islam, Sufism, Literature & Science. Alberuim's "India". Art & Architecture.

Unit-2: 13 & 14 centuries:

Ghorian invasions causes and consequences. Delhi Sultanate under the "slave" rulers Alauddin Khalji; conquests; administrative; agrarian and economic measure. Muhammad Tughlaq innovations, Firoz Tughlaq and the decline of the Delhi Sultanate. Growth of Commerce & Urbanization. Mustic movements in Hinduism & Islam. Literature, Architecture. Technological changes.

Unit-3: The Mughal Empire (1526 to 1707 A.D.)

The hoolis, first phase of the Mughal Empire: Babur, Humayun, The Sur empire and administration. The Portuguese.

Akbar: conquests, administrative measures, Jagir & Mansab system; policy of Sulh-l-hul Jahangir, Shahjahan and Auranggeb: Expansion in the Sevan: religious policies. Shivaji.

Culture: Persian & regional literatures, Religious thoughts: Abul fazl; Maharashtra dharma, Painting Architecture. Economy: conditions of peasant and artisans growth in trade; commerce with Europe. Social stratification and status of women.

Unit-4: British expansion:

The carnatic wars, conquest of Bengal. Mysore and its resistance to British expansion; The three Anglo Maratha wars. Early structure of British Raj regulating (1773) & Pit's India Act (1784).

Cultural encounter & social changes: Introduction of western education. India Renaissance, social & religious reform movements, growth of Indian middle class; The press and its impact; rise of modern literature in Indian languages. Social reform measures before 1857.

विषय-सूची

1. प्रारंभिक मध्यकालीन भारत : प्रमुख राजवंश (Early Medieval India : Major Dynasties) 1–16

2. मुहम्मद गौरी के आक्रमण (Muhammad Ghori's Invasions) 17–47

3. मुगल साम्राज्य (1526-1707 ई.) [Mughal Empire (1526–1707 A.D.)] 48–99

4. कर्नाटक में आंग्ल-फ्रांसिसी प्रतिद्वंदिता (Anglo-French Rivalry in Karnataka) 100–153

5. मराठा शक्ति का उत्कर्ष (1627-1707 ई0) [Rise of Maratha Power (1627–1707 A.D.)] 154–169

6. राजस्थान और विजयनगर : समाज और अर्थव्यवस्था, धर्म और संस्कृति
[Rajasthan and Vijaynagar : Society and Economy, Religion and Culture] 170–184

इकाई (Unit)

1

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत : प्रमुख राजवंश
(Early Medieval India : Major Dynasties)

संरचना

उद्देश्य (Objectives)
विषय प्रवेश (Introduction)
चोल वंश के प्रमुख शासक (Main Rulers of Chola Dynasty)
राजेंद्र चोल (1014-1044 ई०) (Rajendra Chola, 1014-1044 A.D)
चोलों की शासन प्रणाली (Administration of Cholas)
महमूद गजनवी (Mahmud Ghaznavi)
राजपूतों की पराजय के कारण (Reasons for the Defeat of Rajputs)
● सारांश (Summary)
अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
संदर्भ-ग्रन्थ (Reference Books)

उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक जान सकेंगे—

- चोल वंश के प्रमुख शासकों को
- चोलों की शासन प्रणाली
- महमूद गजनवी का परिचय और भारत पर आक्रमण
- राजपूतों की सभ्यता और संस्कृति

विषय प्रवेश (Introduction)

चोल वंश भारत के इतिहास में अति प्राचीन राजवंश है। महाभारत में चोलों का उल्लेख आता है। **सभापर्व** और **भीष्मपर्व** में यत्र-तत्र चोलों का वर्णन है। **मेगस्थनीज** एवं **टोलेमी** ने भी चोलों के विषय में लिखा है। डॉ० राजबली पांडे का मानना है कि प्राचीन राजाओं में जो राजा प्रमुख होते थे, उन्हें चोल कहा जाता था। बौद्ध विद्वान 'चोल' शब्द का अर्थ तमिल भाषा के शब्द 'चूल' से लगाते हैं- जिसका अर्थ है 'भ्रमण करने वाले'। विद्वानों का एक वर्ग ऐसा भी है जो मानता है कि बिंबिसार ने चोलों को अपने अधीन करने का प्रयास किया किन्तु वह असफल रहा। अशोक के कलिंग आक्रमण के समय चोल कलिंग के साथ थे, ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। परन्तु इस विषय में निश्चित कुछ नहीं है। अशोक के अभिलेखों से विदित होता है कि चोल राज्य और लंका के राज्य में घनिष्ठ संबंध था। एक सिंहली ग्रंथ भी इस तथ्य का अनुमोदन करता है। **कात्यायन** ने भी चोलों का उल्लेख किया है। इतना होने पर भी चोलों के संपूर्ण इतिहास का पता लगाना एक कठिन कार्य है। इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं है कि एक समय ऐसा अवश्य आया जब चोल बहुत अधिक

शक्तिशाली रहे। प्रारम्भ में वे चालुक्यों एवं पल्लवों के अधीन रहे किन्तु 9 वीं शताब्दी के अंत में उ- पल्लवों को परास्त कर एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और तंजौर पर विजय प्राप्त कर उसे अपनी राज- बनाया।

● चोल वंश के प्रमुख शासक (Prominent Rulers of Chola Dynasty)

(1) विजयालय—प्रारंभ में चोल पल्लवों के अधीन थे। उनके प्रारंभिक राजाओं में **करिक- नेदुयुदिकिल्ल, विजयालय** और **आदित्य प्रथम** उल्लेखनीय हैं। ये सभी पल्लवों के अधीन सामंत शासक- विजयालय ने लगभग 871 ई० तक राज्य किया।

नवीं शताब्दी के मध्य चोल वंश के उत्कर्ष का सूत्रपात विजयालय ने किया जो पल्लवों का सामन्त उसने पल्लवों एवं पांड्यों के बीच संघर्ष का लाभ अपनी शक्ति को सुदृढ बनाने के दृष्टिकोण से उठाया। अपने स्वामी पल्लव नरेश की ओर से तंजौर पर आक्रमण करके उस पर अपना अधिकार कर लिया तंजौर को अपनी राजधानी बनाया। इस विजय ने कावेरी प्रदेश में चोल वंश की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित- दिया। परन्तु विजयालय अभी भी पल्लवों के अधीन ही रहा।

(2) आदित्य प्रथम (871 ई० -907 ई०)—आदित्य I विजयपाल का पुत्र था। विजयपाल की के पश्चात् 871 ई० में वह गद्दी पर आसीन हुआ। प्रारम्भिक काल में वह पल्लवों के अधीन था। पल्लव प्रभाव को समाप्त करने के लिए पांड्य राजा **वरगुणवर्मन द्वितीय** ने चोल-राज्य पर आक्रमण किया। पल्ल- चोलों और गंगों ने एक साथ मिलकर उसे परास्त कर दिया। युद्ध में सहायता के कारण पल्लव **नृपतुगवर्मन** ने आदित्य प्रथम के राज्य में कुछ प्रदेश और मिला दिए। आदित्य प्रथम की महत्त्वाकांक्षा स्वामी पल्लवराज को प्रसन्न करके ही सन्तुष्ट नहीं हुई क्योंकि वह पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का स्वप्न रहा था। भाग्यवश उसे अवसर मिल भी गया और उसने पल्लवों के विरुद्ध विद्रोह करके पल्लव **अपराजित** की हत्या कर दी और संपूर्ण पल्लव राज्य का स्वामी बन बैठा।

अब आदित्य प्रथम ने पांड्य नरेश **परांतक वीर नारायण** पर आक्रमण किया और **कांगू** प्रदेश पर अ- अधिकार कर लिया। ऐसा भी कहा जाता है कि आदित्य प्रथम ने गंगों का भी दमन किया और अंत में गंग- पृथ्वीपति उसकी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य हुआ।

विजयों के अतिरिक्त आदित्य प्रथम ने राष्ट्रकूटो एवं चेरों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित करके अपनी स्थिति को मजबूत किया। उसने स्वंय को एक स्वतन्त्र राज्य का शासक घोषित किया एवं सूर्य- बताकर अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की।

आदित्य प्रथम भगवान शिव का भक्त था और उसने अनेक शिव मंदिरों का निर्माण कराया। मंदिरों निर्माण कावेरी नदी के तट पर कराया गया था।

(3) परांतक प्रथम (907 ई० -955 ई०)–955 ई० में आदित्य प्रथम की मृत्यु के उपरान्त उ- पुत्र परांतक प्रथम चोल-वंश के सिंहासन पर आसीन हुआ। दक्षिण भारत में चोल प्रतिष्ठा एवं शक्ति वास्तविक स्थापना का श्रेय उसी को है। वह अपने पिता के समान ही महत्त्वाकांक्षी था और उसने साम्राज्यवादी नीति अपनायी। परांतक प्रथम के शासन-काल में पांड्यों का राजा मारवर्मन् राजसिंह द्वितीय उसे परांतक प्रथम ने पराजित कर दिया।

पांड्यों को पराजित करने के उपरान्त परांतक ने लंका पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण का क- यह था कि लंका के शासक ने चोलों के विरुद्ध युद्ध में पांड्यों की सहायता की थी। इस आक्रमण में पर प्रथम को सफलता नहीं मिली। ऐसा मानना भी है कि परांतक ने बनों और बैदुंबों पर आक्रमण करके पराजित करके उन्हें अपने अधीन कर लिया था।

परांतक प्रथम ने राष्ट्रकूटों का सामना किया। इस काल में राष्ट्रकूट वंश का राजा कृष्ण तृतीय था। परांतक ने **कृष्ण तृतीय** को हराकर अपने आप को **वीरचोल** की उपाधि से विभूषित किया। परंतु इसके कुछ ही समय पश्चात् कृष्ण तृतीय ने उस पर आक्रमण कर दिया। तक्कोलम नामक स्थान पर दोनों में युद्ध हुआ, जिस में चोलों की हार हुई। काँची और तंजौर दोनों ही प्रान्त उनके हाथ से निकल गए। स्पष्ट है कि परांतक प्रथम के काल से ही चोल राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। परांतक प्रथम की मृत्यु 955 ई० के लगभग हुई।

(4) गंदरादित्य, अरिंजय, परांतक द्वितीय और उत्तम चोल (955 ई० -985 ई०) (अन्धकार युग)—परांतक की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र गंडरादित्य को राज्य मिला, उसने मात्र दो वर्ष तक राज्य किया। उसके शासन काल में चोल राज्य का क्षेत्र बहुत सीमित रह गया था। तदोपरान्त 985 ई० तक चोलों की दशा बहुत दयनीय रही। यह काल चोलों के पराभव का काल था। इस 30 वर्ष के काल में चोलों की प्रतिष्ठा एवं शक्ति को गहरा आघात पहुँचा जिस कारण यह युग अन्धकार युग के नाम से जाना जाता है। गंदरादित्य के पश्चात् अरिंजय और उसके बाद परांतक द्वितीय ने राज्य किया। 973 ई० में परांतक द्वितीय चल बसा और उत्तम चोल ने शासन संभाला। उसके शासनकाल में चालुक्यों की शक्ति बहुत बढ़ गई और चालुक्यों के राजा तैलप द्वितीय ने उसे पराजित कर दिया। 985 ई० के लगभग उनका देहावसान हो गया।

(5) राजराज प्रथम (985 ई० -1014 ई०)—राजराज प्रथम संदुर चोल का पुत्र था। वह 985 ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। उसका प्रारंभिक नाम अरुमोलि वर्मन था। सिंहासनारुढ़ होने के पश्चात् उसने अपने आप को 'राजराज' की उपाधि से विभूषित किया और चोल वंश के खोए हुए वैभव को प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने लगभग 30 वर्ष राज्य किया। जब वह चोल वंश के सिंहासन पर बैठा था तो राज वंश की शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी। सर्वप्रथम राजराज प्रथम ने केरलों की नौ-सेना को नष्ट किया। उसके उपरान्त पांड्य वंश के शासक अमर भुजंग को परास्त किया और कोल, उदंग और कुंग पर भी अधिकार कर लिया। उसने भी लंका पर आक्रमण करके महेंद्र पंचम की राजधानी अनुराधापुर को नष्ट करके उत्तरी लंका पर अधिकार जमा लिया। इसके उपरान्त राजराज ने गणराज्य के तीन प्रदेशों—**गंगवड़ी, नीलांबवड़ी** और **तादिंगवड़ी** पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन कर लिया। राजराज ने वेंगी पर आक्रमण किया और जरामोड़ भीम को परास्त करके शक्तिवर्मन प्रथम को वहाँ का राजा घोषित कर दिया। इस प्रकार वेंगी उसके आधीन हो गई।

चालुक्य नरेश, राजराज प्रथम के इस उत्कर्ष को नहीं पचा सका और चालुक्यों एवं चोलों में संघर्ष प्रारंभ हो गया। उसके शासनकाल में पश्चिमी चालुक्यवंश का राजा सत्याश्रय था जिसे राजराज प्रथम ने पूरी तरह पराजित किया। अपने शासन के अंतिम समय में राजराज ने कलिंग, लक्षद्वीप और मालद्वीव को भी हासिल कर लिया और इस प्रकार चोल साम्राज्य का विस्तार पूरी मद्रास प्रेसीडेंसी के कुर्ग, मैसूर और सिंहलद्वीप के उत्तरी भाग तक फैल गया। संक्षेप में राजराज के साम्राज्य में तुंगभद्रा नदी के दक्षिण का समस्त भारत, मालद्वीव और उत्तरी लंका सम्मिलित हो गया। आंध्र प्रदेश भी उसके प्रभाव में था।

राजराज एक महान शासक था। उसने स्थानीय स्वशासन को अधिक महत्व दिया और भूमि की नाप करवाई। इस आशंका से कि कहीं उसके पुत्रों में उत्तराधिकार हेतु युद्ध न हो, उसने अपने पुत्र राजेंद्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। इसके साथ ही उसने राजेंद्र को प्रशासकीय कार्यों में पूर्णरूप से शिक्षित भी कर दिया था।

राजराज शैवधर्म का अनुयायी था। उसने तंजौर में राजराजेश्वर के मंदिर का निर्माण करवाया और शिवपादशेखर की उपाधि ग्रहण की। यद्यापि वह शिव का भक्त था, किन्तु अन्य धर्मों एवं मतों का वह विरोधी नहीं था। उसने विष्णु के भी कई मंदिर बनवाए। कहा जाता है कि 'नेग-पटम्' में बौद्ध विहार बनाने में उसने सहायता की थी और तंजौर के '**राजराजेश्वर**' मंदिर में भगवान बुद्ध की मूर्ति भी बनवाई थीं।

राजराज प्रथम ने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की जिसमें तुंगभद्रा नदी तक समस्त दक्षिणी उत्तरी श्रीलंका एवं मालद्वीव द्वीप सम्मिलित थे। चोल मार्तंड, केरलान्तक, सिंहलान्तक, गुम्मडि- पांडकुलाशनि आदि उपधियाँ उसकी शक्ति और समृद्धि की सूचक हैं। चोलों को दक्षिण भारत में शक्ति बनाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। उसने इस साम्राय को सुदृढ़ संगठन, कुशल प्रशासन एवं शक्ति सेना तथा नौसेना प्रदान की। अपनी उपलब्धियों के कारण ही वह 'राज राजा महान' के नाम से जाना जाता

● राजेंद्र चोल (1014–1044 ई०) (Rajendra Chola, 1014-1044 A.D.)

राजेन्द्र चोल 'राजराज' चोल का पुत्र था। अपने पिता के शासनकाल में ही वह उत्तराधिकारी घोषि- दिया गया था। युवराज के रूप में उसने पश्चिम के चालुक्यों को धूल चटाई और प्रशासकीय कार्यों गुणवत्ता हासिल की।

(1) लंका पर आक्रमण—राजेंद्र प्रथम एक साम्राज्यवादी शासक था। उसने भी लंका पर आ किया और वहाँ के राजा महेंद्र पंचम को परास्त कर लंका पर पूर्ण अधिकार कर लिया। लंका पर राजेंद्र का शासन बहुत समय तक न चल सका और वहाँ महेंद्र के पुत्र कश्यप ने दक्षिणी लंका पर अपना आ जमा लिया और वह वहाँ विक्रमबाहु के नाम से शासक बन गया।

(2) चेरों और पांड्यों पर विजय—राजेंद्र प्रथम ने चेरों और पांड्यों के राज्यों को पराजित किय- उनके प्रदेशों को चोल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। अपने पुत्रों को उसने चेर राज्य और पांड्य राज- प्रशासक नियुक्त कर दिया।

(3) चालुक्यों से युद्ध— राजेंद्र प्रथम के शासनकाल में चालुक्यों की पश्चिमी शाखा का राजा ज द्वितीय चोलों का प्रतिद्वंदी था। वह चोलों का सबसे बड़ा शत्रु था। पूर्वी चालुक्यों की शाखा के उत्तराधिक प्रश्न को लेकर जयसिंह द्वितीय और राजेंद्र में झगड़ा हुआ। शक्तिवर्मन प्रथम की मृत्यु के उपरान्त पूर्वी च शाखा का राजा विमलादित्य हुआ जो मात्र सात वर्ष ही जीवित रहा। उसकी मृत्यु के बाद उसके विजयादित्य और राजराज में सिंहासन के लिए लड़ाई प्रारम्भ हो गई। चालुक्यों की पश्चिमी शा विजयादित्य को राज्य देना चाहा। किन्तु राजेंद्र ने राजराज का पक्ष लिया। फलस्वरूप दोनों में भयंकर युद्ध जो तीन-चार वर्ष तक चलता रहा। इस युद्ध में राजेंद्र और राजराज की विजय हुई तथा 1022 ई० में रा वेंगी के सिंहासन पर बैठा। इस के बाद भी विजयादित्य हताश नहीं हुआ और वह सिंहासन के लिए करता रहा। अंतत: 1031 ई० में जयसिंह द्वितीय की सहायता से वह राजराज को सिंहासन से हटाने में हुआ और विष्णुवर्द्धन विजयादित्य के नाम से सिंहासन पर बैठा, पर विजयादित्य भी सुख की नींद न सका और 4 वर्ष के बाद उसको भी सिंहासन छोड़ना पड़ा। 1035 ई० में राजराज पुन: राजा बन विजयादित्य पुन: पश्चिम के चालुक्यों की शरण में गया। इस समय चालुक्यों की पश्चिमी शाखा का सोमेश्वर प्रथम था जो जयसिंह द्वितीय का पुत्र था। उसने वेंगी पर आक्रमण किया। उधर राजेंद्र भी शान्त वाला नहीं था, उसने राजराज की सहायता के लिए एक सेना भेजी परंतु युद्ध के बीच में ही राजेंद्र का देहा हो गया।

(4) पूर्वी भारत का अभियान—1021 ई० और 1025 ई० के मध्य राजेंद्र प्रथम ने पूर्वी भार ओर अभियान चलाया। एक विशाल सेना के साथ वह उड़ीसा के रास्ते बंगाल पहुँचा और बंगाल देश बंगाल के राजा गोविंदचंद्र) को परास्त करके गंगापार बंगाल के पालवंशी राजा महिपाल के साथ युद्ध दिया। दोनों के मध्य भयंकर संघर्ष हुआ और इस संघर्ष में राजेंद्र प्रथम विजयी हुआ। राजेंद्र चोल बंग अधिक दिनों तक न ठहर सका और विजय प्राप्त करने के उपरान्त गंगाजल लेकर स्वदेश वापस लौटा। द के जिन राज्यों को उसने परास्त किया था, वे राजा गंगाजल सिर पर रखकर उसके साथ चले। इस गंगाजल उसने एक तालाब 'चोलगंगम' में अर्पित कर दिया और 'गंगकोंडचोल' की उपाधि धारण कर ली।

राजेंद्र प्रथम की बंगाल विजय के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान मानते हैं कि राजेंद्र प्रथम की इस विजय का कोई निश्चित परिणाम अथवा लाभ न हुआ। इससे मात्र उसके यश में वृद्धि हुई किन्तु कुछ इतिहासकार मानते हैं कि यह ठीक है कि राजेंद्र चोल बंगाल में न टिक सका परंतु उसकी बंगाल की विजय के उपरान्त सामंत लोग बंगाल और मिथिला में रहने लगे और कालांतर में उन्होंने बंगाल में 'सेन राजवंश' और मिथिला में 'कनार्ट राजवंश' की स्थापना कर ली।

(5) श्रीविजय पर विजय—श्रीविजय के अंतर्गत मलाया, सुमात्रा, जावा प्रायद्वीप और अन्य निकटवर्ती क्षेत्र आते थे। श्रीविजय चोलों के राज्य और चीन के मध्य में स्थित था। 1025 ई० के लगभग राजेन्द्र चोल ने श्रीविजय पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। वहाँ के राजा विजयोतुंगवर्मन को बंदी बना लिया गया। किन्तु जब उसने चोलों की अधीनता स्वीकार कर ली तो उसे मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार भारत और चीन के मध्य जलमार्ग सुरिक्षत हो गया और 1033 ई० में राजेंद्र चोल ने अपने राजदूत चीन भेजे।

(6) पांड्यों-चेरों का विद्रोह—पांड्य और चेर को राजेंद्र की अधीनता में रहना पसंद नहीं था, अत: उन्होंने विद्रोह कर दिया। राजेंद्र प्रथम ने अपने पुत्र राजाधिराज प्रथम को इन विद्रोहियो का दमन करने के लिए नियुक्त किया। राजाधिराज उनके दमन में सफल हुआ और उसने विद्रोहियों को परास्त कर कठोर दंड भी दिया।

(7) लंका के स्वतंत्रता संग्राम को कुचलने का प्रयास—लंका में विक्रमवाद के नेतृत्व में स्वतंत्रता के लिए पूर्ण प्रयत्न हो रहे थे। 1043 ई० के आसपास राजेंद्र ने राजाधिराज को उनके दमन के लिए भेजा। राजाधिराज इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सका।

(8) निर्माण कार्य—राजेंद्र केवल वीर और साहसी ही न था, निर्माण कार्यों में भी उसकी विशेष रुचि थी। वह अत्यधिक साहित्य-प्रेमी था। उसने पंडित चोल की उपाधि धारण की थी और एक वैदिक विद्यालय की स्थापना की थी, जिसमें लगभग 300 छात्र अध्ययन करते थे। उसने अनेक भवनों, मंदिरों और तालाबों का निर्माण कराया तथा 'गंगकोंडचोलपुरम' को अपनी नवीन राजधानी बनाया।

1044 ई० के लगभग जब चालुक्यों और चोलों के बीच भयंकर युद्ध हो रहा था उसमें राजेंद्र प्रथम की मृत्यु हो गई।

वास्तव में राजेंद्र चोल भी चोल वंश का एक महान शासक था। उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं का बहुत अधिक विस्तार किया था।

(9) राजाधिराज प्रथम (1044 ई० –1052 ई०)—राजेंद्र प्रथम के पश्चात् राजाधिराज प्रथम सिंहासनारुढ़ हुआ। वह 1018 ई० से ही युवराज की हैसियत से अपने पिता के सैनिक एवं प्रशासनिक कार्यों में सहायता करता रहा था। सिंहासनारुढ़ होते ही उसको पांड्य, केरल तथा सिंहल के राजाओं के सम्मिलित गुट को परास्त किया और इसे उपलक्ष्य में अश्वमेघ यज्ञ किया। उसने अपने पिता की विस्तारवादी नीति को आगे बढ़ाया और उस समय जो राजा स्वतंत्र होने का अवसर खोज रहे थे, उनका दमन किया। उसने चालुक्यों की राजधानी कल्याणी पर विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की, परंतु बाद में 'चालुक्य राजा सोमेश्वर' से युद्ध करते हुए 1052 ई० में वह कोप्पम के युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुआ।

(10) राजेंद्र द्वितीय (1052 ई० –1064 ई०)—राजाधिराज प्रथम के उपरान्त उसका अनुज राजेंद्र द्वितीय 1052 ई० में सिंहासन पर बैठा। वह भी जीवनपर्यंत चालुक्यों से युद्ध करता रहा। कहा जाता है कि राजेंद्र द्वितीय ने लंका पर आक्रमण करके उसके अधिकांश भाग को अपने अधीन कर लिया था। सन् 1064 ई० में वह स्वर्ग सिधार गया। उसने अपनी विजयों के साथ-साथ चोल साम्राज्य की एकता को भी बनाकर रखा।

(11) वीर राजेंद्र (1064 ई० –1070 ई०)—1064 ई० में राजेंद्र द्वितीय का भाई वीर राजेंद्र सिंहासन पर बैठा। 1066 ई० में तुंगभद्रा नदी के तट पर उसने चालुक्यों के राजा सोमेश्वर को परास्त किया।

तत्पश्चात् कूडलशगमम् नामक स्थान पर उसकी मुठभेड़ चालुक्यों से फिर हुई। इस स्थान पर सोमेश्व अस्वस्थता के कारण युद्ध में शामिल न हो सका और वीर राजेंद्र ने उसकी सेना को फिर हरा दिया। इस विजा के उपलक्ष्य में उसने तुंगभद्रा नदी के किनारे एक **विजय-स्तंभ** का निर्माण कराया। कलिंग का युद्ध आरंभ हुआ था कि चालुक्य नरेश सोमेश्वर ने अपनी अस्वस्थता से दुखी आकर तुंगभद्रा नदी में कूदकर अपने प्रा त्याग दिए।

सोमेश्वर के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर द्वितीय चालुक्य सिंहासन पर बैठा। उसे भी वीर राजेंद्र के आक्रमण का सामना करना पड़ा। वीर राजेंद्र ने एक सैनिक टुकड़ी सहित कम्पिल की ओर प्रस्थान किया औ उस पर आक्रमण कर दिया। यह चालुक्यों का दुर्भाग्य ही था कि सोमेश्वर द्वितीय का कनिष्ठ भ्राता अपने भ के विरुद्ध विद्रोह करके वीर राजेंद्र की शरण में चला गया। वीर राजेंद्र बहुत चतुर था। उसने अवसर का ला उठाया और विक्रमादित्य को अपना दामाद बनाकर चालुक्य साम्राज्य के दक्षिणी भाग का सम्राट घोषित क दिया। वेंगी की चालुक्य शाखा के राजा विजयादित्य को वीर राजेंद्र के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा।

वीर राजेंद्र ने लंका नरेश **विजयबाहु** से भी युद्ध किया और उसे पराजित करने में भी सफलता प्राप्त क उसने कडारम (श्रीविजय) पर भी आक्रमण करके उस पर विजय प्राप्त की और वहाँ के राजा को पदच्यु करके अपने मित्र को वहाँ का राजा घोषित कर दिया। वीर राजेंद्र की मृत्यु 1070 ई० में हुई।

(12) अधिराजेंद्र (1070 ई०)—वीर राजेंद्र की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र अधिराजेंद्र चोलवंश क शासक हुआ। वह बहुत ही डरपोक था। उसके समय में अनेक उपद्रव हुए जिनको वह नहीं दबा सका औ कुछ दिन उपरांत ही उसको मार डाला गया। उसने बहुत ही कम समय तक राज्य किया।

(13) कुलोतुंग प्रथम (1070 ई०–1120 ई०)—वीर राजेंद्र प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पु अधिराजेंद्र सिंहासन पर बैठा। परंतु शीघ्र ही उसकी हत्या कर दी गई और शासन की बागडोर कुलोतुंग नामक पूर्वी चालुक्य राजा के हाथ में चली गई जो राजेंद्र चोल की बहन का पुत्र था। कुलोतुंग ने पश्चिमी चालुक्यों युद्ध किया और पांड्य शासकों एवं मालाबार के सामंतो पर विजय पायी। उसने परमारों को भी परास्त कि और दो बार कलिंग पर विजय पायी।

कुलोतुंग वीर सैनिक होने के साथ-साथ एक कुशल शासक भी था। उसने भूमि की नाप-जोख करवा यह भी निश्चित है कि उसने 'शुगम तबित्' (करों को हटाने वाला) की उपाधि धारण की थी। परंतु इस विष में कुछ निश्चित् नहीं कहा जा सकता कि उसने कौन से कर हटाए थे। उसके शासनकाल में कांची नगर व बहुत उन्नति हुई। 1020 ई० उसकी मृत्यु हो गई।

(14) विक्रम चोल (1120 ई० –1133 ई०)—कुलोतुंग की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र विक्र चोल 1120 ई० में गद्दी पर आसीन हुआ। उसने 1120 ई० से 1133 ई० तक राज्य किया।

(15) कुलोतुंग द्वितीय (1133 ई० –1150 ई०)—विक्रम चोल के उपरान्त उसके पुत्र कुलोतुं द्वितीय ने राज्य की बागडोर संभाली। उसने कोई राजनीतिक उपलब्धि प्राप्त नहीं की किन्तु 1133 से 115 ई० तक शांतिपूर्वक शासन का संचालन किया।

(16) राजराज द्वितीय (1150 ई० –1173 ई०)—वह कुलोतुंग का दूसरा पुत्र था। इसने 1150 ई से 1173 ई० तक शासन किया।

(17) राजाधिराज द्वितीय (1173 ई० –1178 ई०)—इसने 1173 ई० से 1178 ई० तक शास किया।

(18) कुलोतुंग तृतीय (1178 ई० –1206 ई०)—इसने 1178 ई० से 1206 ई. तक शास किया।

(19) राजराज तृतीय (1206 ई.-1246 ई.)—कुलोतुंग तृतीय के पश्चात राजराज तृतीय राजा हुआ। अंतत: केलों, पांड्यों, होयसलों आदि का उत्कर्ष हुआ और फलस्वरूप चोल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

(20) राजेन्द्र तृतीय—राजेन्द्र तृतीय चोलवंश का अंतिम शासक था। उसके समय में केन्द्रीय शक्ति की निर्बलता के कारण दक्षिणी सामन्तों की शक्ति बढ़ने लगी और पड़ोसी राज्यों के बार-बार आक्रमणों ने राज्य की आर्थिक स्थिति काफी खराब कर दी। पांड्य, होयसल एवं काकतीपय राज्य चोलवंश की सत्ता पर प्रहार करने लगे। 1258 ई० में पांड्य राजा सुन्दर पांड्य ने राजेन्द्र तृतीय पर आक्रमण करके उसे परान्त कर अपने अधीन कर लिया। राजेन्द्र तृतीय ने 1258 से 1279 ई० तक पांड्य वंश के अधीन एक सामनत के रूप में राज्य किया। कुछ समय तक पांड्य राजा कुलशेखर चोल मंडल का अधिपति बना रहा। अन्तत: 1310 ई० में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मालिक काफूर ने चोल वंश को समाप्त कर दिया।

चोलों की शासन प्रणाली (Administration of Cholas)

चोल शासकों ने एक विस्तृत साम्राज्य की ही स्थापना नहीं की वरन् एक सुव्यवस्थित एवं कुशल शासन प्रबन्ध भी प्रदान किया। चोलों की शासन-प्रणाली दक्षिण भारत के शासन के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) शासक—उत्तरी भारत के महान साम्राज्यों के शासकों के ही समान चोल शासक भी प्रशासन की धुरी एवं सम्पूर्ण सत्ता का स्रोत था। चोल राजा बहुत शक्तिशाली होते थे और वह अपने को अनेक उपाधियों से विभूषित करते थे। राजा का पद पैतृक होता था और बहुधा सिंहासन के लिए संघर्ष भी होता था। राजा की सभा में बड़े-बड़े सामंत और पदाधिकारी होते थे।

चोल राजा का पद कितनी प्रतिष्ठा का होता था, यह इस बात से प्रकट हो जाता है कि मंदिरों में राजा और रानियों की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं। शासन के सभी क्षेत्रों में राजा का अधिकार होता था। वह प्रधान सेनापति होता था और वही उच्चतम न्यायाधीश। उसका निर्णय अंतिम होता था।

(2) युवराज—राजा अपने जीवनकाल में ही अपने सबसे बड़े अथवा योग्यतम पुत्र को युवराज घोषित कर देता था और अपने शासन काल में ही उसे प्रशासकीय कार्यों का पर्याप्त अनुभव करा देता था।

(3) विभिन्न पदाधिकारी—इस बात का कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि चोलों के राज्य में मंत्रिमंडल की कोई व्यवस्था थी। कोई भी साक्ष्य इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डालता, परंतु यह भी निश्चित है कि राजा अपनी सहायता के लिए अनेक पदाधिकारी नियुक्त करता था जिनको नकद वेतन की व्यवस्था होती थी और उन्हें भूमि एवं संपदा भी प्रदान की जाती थी। विभिन्न पदाधिकारी प्रचलित परंपराओं के आधार पर कार्य करते थे। चोलों के शासन काल में एक सुसंगठित सेवा योजना का भी विकास हुआ था।

(4) साम्राज्य का विभाजन—शासन की सुविधा के लिए समस्त साम्राज्य को मंडलों में विभाजित किया गया था। मंडल का पुन: विभाजन कोट्टमों में होता था। एक मंडल में अनेक 'कोट्टम' होते थे। कोट्टम' 'नाडुओं' में विभक्त होता था और एक 'नाडु' में अनेक 'कुर्रम' (कई ग्रामों का समूह) होते थे। 'कुर्रम' को अनेक नगरों एवं गाँवों में विभाजित किया जाता था। मंडल के प्रशासन के लिए राजा कोई प्रशासक नियुक्त करता था, जो राजकुमार होता था या राजवंश से संबंधित होता था। मंडलों से लेकर ग्रामों तक स्थानीय सभाओं की व्यवस्था की जाती थी। 'नाडु' की सभा को 'नट्टर' और नगर की सभा को 'नगस्तार' कहा जाता था। ग्राम सभा 'डरार' के नाम से जानी जाती थी।

(5) स्थानीय शासन—चोल शासनकाल में ग्रामों में स्थानीय शासन की व्यवस्था की गई थी। परान्तक प्रथम के दो अभिलेखों से हमें स्थानीय प्रशासन की कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में विवरण मिलता है। ग्रामों की

सभाएँ जनतंत्रात्मक ढंग से चलती थीं। प्रशासकीय कार्यों के लिए विभिन्न समितियाँ बनाई जाती थीं, जि वरियम कहा जाता था। विभिन्न समितियों में ग्राम की स्थायी-समिति, तड़ाग-समिति, कृषि-समिति, उप समिति, न्याय-समिति आदि प्रमुख होती थीं। विभिन्न समितियोंता के चुनाव के लिए प्रत्येक ग्राम को 30 व में बाँटा जाता था। विभिन्न समितियों के उम्मीदवारों की योग्यतएँ भी निर्धारित कर दी जाती थीं। 'लाट' के द्व निर्वाचन होता था। विभिन्न उम्मीदवारों के नाम अलग-अलग पत्तियों पर लिखकर किसी बर्तन में डाल f जाते थे। उसके बाद किसी निष्पक्ष व्यक्ति या बालक से निश्चित संख्या की पत्तियाँ निकालने के लिए व जाता था। जिन व्यक्तियों के नाम की पत्तियाँ निकलती थीं, वे नियुक्त घोषित कर दिए जाते थे।

ग्राम प्रशासन का कार्य दो संस्थायें करती थी—उर, जो जनसाधरण की सभा थी तथा जिसके सद ग्राम के समस्त करदाता होते थे। दूसरी संस्था 'सभा' अथवा 'महासभा' थी जो केवल उन ग्रामों में होती थी ब्राह्मणों को दान में दिये जाते थे। ग्राम के वरिष्ठ जन इसके सदस्य होते थे। इन दो संस्थाओं के अतिरिक्त ए और संस्था 'नगरम' थी जो व्यापारिक हितों की रक्षार्थ सामान्यत: व्यापारिक केन्द्रों में होती थी।

ग्राम सभाओं के विविध कार्य होते थे। वे तालाबों, नहरों और कुओं का प्रबंध करती थीं, भूमि कर एव करती थीं, मंदिरों की व्यवस्था करती थीं और शिक्षा का प्रबंध करती थीं। दैवी विपदा के समय सहायता, के की व्यवस्था करना, पीड़ितों को सहायता पहुँचाना, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य का प्रबंध करना आदि भी इन ग्र सभाओं के कर्तव्य थे। वास्तव में इन कार्यों की रूपरेखा राजा के द्वारा निर्धारित की जाती थी और ग्राम सभ ही इन सब कार्यों को सम्पन्न करती थीं। साधारणतया राजा, ग्राम सभाओं के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता परंतु ग्राम सभाओं पर निगाह रखने के लिए राजा के पदाधिकारी नियुक्त किए जाते थे। यदि किसी गाँव की ग्र सभा में कोई अनियमितता पाई जाती थी तो उसकी सूचना राजा को तुरंत दे दी जाती थी। एक अभिलेख में ग्र बात का उल्लेख मिला है कि चोल राजा ने एक ग्राम सभा पर एक मंदिर की आय का दुरुपयोग करने कारण जुर्माना लगा दिया था। इस बात का भी उल्लेख है कि समय पर भूमि कर न जमा करने पर ए ग्राम-सभा के सदस्यों को कारागार भेज दिया गया था। यह ठीक है कि ग्राम सभाएँ न्याय आदि के कार्यों संपन्न करती थीं। परंतु बहुत-से ऐसे कार्य थे जिनमें राजा की पूर्व अनुमति अनिवार्य होती थी। ग्राम-सभा किसी भी व्यक्ति को मृत्युदंड देने का अधिकार नहीं था।

(6) न्याय-व्यवस्था—चोलों की न्याय-व्यवस्था भी अत्यंत उच्चकोटि की थी। अधिकांश वादों निर्णय स्थानीय संस्थाएँ ही करती थीं। राजा ही न्यायालय का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था और वही अंतिम न सुनता था। जूरी की प्रथा भी विद्यमान थी। दंड-व्यवस्था कठोर नहीं थी। व्यभिचारियों को गधे पर बैठाकर च ओर घुमाने का दंड दिया जाता था। संयोगवश हत्या हो जाने पर 16 गायों का दंड होता था। अधिकांश मुकद का निर्णय स्थानीय संस्थायें ही करती थी। मानवीय साक्ष्य उपलब्ध न होने पर अग्नि तथा जल द्वारा परीक्षण भी व्यवस्था थी।

(7) राजस्व व्यवस्था—राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर था जो उपज का एक-तिहाई हो था। यह अनाज अथवा मुद्रा दोनों ही रूपों में दिया जाता था। विभिन्न अवसरों पर भूमि का वर्गीकरण कि जाता था। भूमिकर गाँव सभाएँ ही एकत्र करती थीं। समय पर कर न एकत्र करने वाली ग्राम-सभा पदाधिकारियों को दंड दिया जाता था।

इसके अतिरिक्त व्यवसायियों और शिल्पियों से कर लिया जाता था। जल-थल दोनों ही मार्गों से कर ले की व्यवस्था थी। वनों, खानों आदि से भी राज्य को पर्याप्त आय होती थी, अधिकांश चोल राजाओं ने जनता प बहुत अधिक कर नहीं लगाए परंतु कुछ राजाओं ने जनता को करों के बोझ से दबा दिया था। कर अत्य कठोरता से वसूल किया जाता था। चोल वंश का कुलोतुंग प्रथम एक ऐसा राजा था जिसने जनता पर बहुत क कर लगाए और जनता का विश्वास प्राप्त किया। राज्य में व्यय की मद निम्नलिखित होती थी—

(i) राज्य कर्मचारियों का वेतन, (ii) सेना का गठन, (iii) मंदिर, (iv) सड़कें, (v) तालाब, (vi) नहरें, (vii) यज्ञ, दान, महोत्सव आदि, (viii) राजा एवं राजदरबार से संबंधित कार्य (ix) शिक्षा (x) स्वास्थ्य आदि।

अधिकांश धन युद्धों में ही व्यय होता था। परंतु चोल शासकों ने सार्वजनिक हित के कार्यों में भी बहुत अधिक धन व्यय किया। अनेक राजाओं ने नहरें, जलाशय, कुएँ आदि बनवाए तथा जनता की सुविधाओं का ध्यान रखा।

8. सेना-व्यवस्था—चोल सम्राट विशाल सेना रखते थे जिसमें पैदल, घुड़सवार और हाथी तीनों प्रकार की सेना होती थी। औसतन सेना में लगभग 60,000 हाथी रखते थे। सेना में अनेक दल रखे जाते थे, जैसे—

(i) कुदिरैच्चैवगर—विशिष्ट घुड़सवारों का दल।

(ii) बिल्लिगड़—विशिष्ट धनुर्धारियों का दल।

(iii) वडपेर्र कैवकोलर—राजा के अंगरक्षकों का पैदल दल।

(iv) कुंजरि मल्लर—हाथियों का दल।

सेना को विभिन्न टुकड़ियों में बाँटा जाता था और ये टुकड़ियाँ कडगम् (छावनियों) में रहती थीं। सैनिकों के प्रशिक्षण की भी उत्तम व्यवस्था थी। सेना सदैव नागरिकों का ध्यान रखती थी और उसकी सुख-सुविधाओं के लिए हर संभव प्रयत्न करती थी। राजा सेना का सर्वोच्च नायक होता था। वह युद्धभूमि में सेना का नेतृत्व करता था। उसके आधीन 'महादंडनायक' होता था, जिसे सेनापति कहा जाता था। **'महादंडनायक'** के अधीन अनेक 'नायक' और उनकी टुकड़ियाँ होती थीं।

चोलों के पास नौ सेना (जहाजी बेड़ा) भी थी, जिससे स्पष्ट है कि वे सागर तथा नदियों पर भी युद्ध करते थे। राजराज ने अपने जहाजी बेड़े की सहायता से मालदीव पर अधिकार किया था। राजेन्द्र प्रथम ने नौ-सेना की सहायता से श्रीलंका पर धावा बोला था। चोलों की विशाल नौ सेना ने समुद्र पार की विजयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। बंगाल की खाड़ी पर चोल सेना के प्रभुत्व के कारण वह 'चोल झील' ही कहलाने लगी थी।

चोल सेना अपनी दक्षता के साथ-साथ क्रूरता के लिये भी जानी जाती है। चोल सेना परास्त शत्रुओं के प्रति अत्यंत कठोर व्यवहार करती थी और सैनिक निरीह नागरिकों, महिलाओं और ब्राह्मणों तक पर अत्याचार करते थे। युद्ध-भूमि में शौर्य से लड़ने वाले चोलों के लिए यह बहुत लज्जाजनक था। चोलों की संपूर्ण शासन-व्यवस्था का गहराई से अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि चोलों की प्रशासन व्यवस्था बहुत सुदृढ़ और अत्यंत संगठित थी।

● महमूद गजनवी (Mahmud Ghaznavi)

महमूद गजनवी गजनी के शासक सुबुक्तगीन का पुत्र था। उसका नाम अबु कासिम महमूद था। उसका जन्म 2 नवंबर, 971 ई० को हुआ था। उसकी माता गजनी के निकटवर्ती प्रांत जबुलिस्तान के एक अमीर की पुत्री थी। इस्माइल नसूर और युसुफ महमूद के दो भाई थे। सुबुक्तगीन ने अपने छोटे पुत्र इस्माइल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, परन्तु महसूद ने युद्ध में इस्माइल को पराजित कर 998 ई० में 27 वर्ष की आयु में गजनी का शासक बना था। उसने खलीफा अल कादिर बिल्ला से शासक होने की मान्यता और यमीनउद्दौला (साम्राज्य की दक्षिण भुजा) तथा अमीन-अल-मिल्लत (धर्मरक्षक) की उपाधियाँ प्राप्त की थी। महमूद प्रथम मुसलमान शासक था, जिसने सुल्तान (सशक्त या अधिपति) की पदवी ग्रहण की थी। महमूद के व्यक्तित्व के संबंध में लेनपूल ने लिखा है, **''महमूद एक महान सैनिक, अदम्य साहसी एवं विलक्षण मानसिक तथा शारीरिक शक्ति का स्वामी था।''**

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण के उद्देश्य
(Aims of Mahmud Ghaznavi's Invasion on India)

महमूद गजनवी ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किए। डॉ० ईश्वरी प्रसाद का मानना है, "उसका उद्देश्य भारत को जीतना नहीं था, वरन वह यहाँ की अपार संपत्ति को लूटना चाहता था और इस्लाम धर्म का प्रचार भी उसका उद्देश्य था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने भारत पर 1000 से 1027 के मध्य 17 बार आक्रमण किया।" अधिकांश विद्वानों ने तो उसे लुटेरा माना है। हैवेल ने तो यहाँ तक कहा है कि, **"वह बगदाद को भी निर्दयता से लूट सकता था, यदि उसे वहाँ धन मिलने की संभावना होती।"** उसके द्वारा भारत पर किए गए आक्रमणों के संबंध में भी अधिकतर कहा जाता है—**"महमूद मात्र एक लुटेरा था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।"** अथवा **"महमूद गजनवी के भारतीय आक्रमणों का उद्देश्य मात्र धनलोलुपता थी।"**

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्यों के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। संक्षेप में उसके उद्देश्य निम्नलिखित थे—

1. मूर्तिपूजा का खण्डन—महमूद गजनवी एक कट्टर मुसलमान था। वह इस्लाम धर्म का झंडा हर देश में फहराना अपना प्रमुख कर्तव्य मानता था। भारत मूर्तिपूजक देश था। अतः भारत में मूर्तिपूजा को समाप्त करने तथा इस्लाम धर्म का प्रसार करने के उद्देश्य से उसने भारत पर बार-बार आक्रमण किए।

2. धन लूटना—महमूद बचपन में ही भारत की अपार धन-संपत्ति के विषय में जान चुका था। अतः महमूद का भारत पर आक्रमण करने का प्रमुख लक्ष्य भारत के अपार धन को लूटकर गजनी ले जाना था। डॉ० ईश्वरीप्रसाद का कथन है, **"जहाँ तक भारत का प्रश्न है, महमूद गजनवी एक लुटेरा मात्र ही था और भारत के धन को लूटना ही उसके आक्रमणों का प्रमुख लक्ष्य था।"**

3. राज्य-विस्तार की लालसा—कुछ इतिहासकारों ने महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य भारत में अपने राज्य का विस्तार करना माना है, किंतु यह सत्य नहीं है। भारत में शासन स्थापित करना उसका उद्देश्य नहीं था, क्योंकि उसके आक्रमणों का लक्ष्य राजधानियाँ और सुदृढ़ दुर्गों के स्थान पर समृद्ध नगर तथा सोने-चाँदी से परिपूर्ण मंदिर होते थे। वह दुर्गों पर आक्रमण तभी करता था, जब कोई विवशता होती थी। मंदिरों पर आक्रमण करने से उसकी धन प्राप्ति की लालसा की पूर्ति होती थी। इसी कारण भारत में उसके अधिकांश आक्रमण उन्हीं नगरों पर हुए जहाँ समृद्ध मंदिर अथवा जहाँ मंदिरों का आधिक्य था।

4. धर्म-प्रचार—कुछ इतिहासकारों ने महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य इस्लाम धर्म का व्यापक प्रचार करना माना है। यद्यपि यह बात पूरी तरह सच है कि वह भारत पर आक्रमणों के समय जेहाद (धर्म-युद्ध) का नारा लगाता था और मंदिरों एवं मूर्तियों को तोड़कर स्वयं को 'बुतशिकन' (मूर्ति तोड़ने वाला) सिद्ध करता था। महमूद गजनवी द्वारा हिंदू धर्म को पहुँचाए गए कष्ट तथा हानि का बखान करते हुए डॉ० ईवरीप्रसाद ने लिखा है **"अपने समय के मुसलमानों के लिए वह गाजी था, जो काफिर प्रदेशों में अधार्मिकता मिटाने में संलग्न था। हिंदुओं के लिए वह आज तक एक क्रूर हूण है, जिसने अनेक पवित्र मंदिरों को नष्ट कर दिया था और उनकी आत्माओं को अत्यधिक कष्ट दिया था।"**

वस्तुतः महमूद गजनवी के आक्रमणों का प्रमुख उद्देश्य मात्र भारत की अपार धन-संपदा को लूटना ही था। उसने धन प्राप्ति के लिए धर्म के नाम का अनुचित प्रयोग किया। डॉ० नाजिम का कथन है, **"यद्यपि उसकी विजयों के पीछे-पीछे धर्म-प्रचारक भी गए और हिंदुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, परंतु उसका वास्तविक उद्देश्य धन-प्राप्ति ही था।"** प्रो० जाफर ने लिखा है कि, **"महमूद का उद्देश्य भारत में इस्लाम का प्रचार करना नहीं वरन् धन लूटना था। उसने हिंदू मंदिरों पर इसलिए आक्रमण किया, क्योंकि वहाँ विपुल धन संचित था।"**

भारतीयों की दृष्टि में महमूद मात्र एक लुटेरा ही था। "**वह धार्मिक व्यक्ति की अपेक्षा योद्धा अधिक था। उसके लिए भारतवर्ष वह स्थान था, जहाँ से वह प्रचुर मात्रा में धन एवं रत्नाभूषण अपने घर ले जाता था।**" इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने भारत पर 17 बार आक्रमण किया।

महमूद गजनवी के आक्रमण—

(1) सीमान्त नगरों पर आक्रमण (1000 ई०)

(2) भटिण्डा के राजा जयपाल पर पुनः आक्रमण (1001)

(3) भीरा तथा अन्य नगरों पर आक्रमण (1004-5)

(4) मुल्तान पर आक्रमण

(5) सेवकपाल पर आक्रमण

(6) आनन्दपाल पर आक्रमण (1008-9)

(7) नगरकोट की विजय (1010 ई०)

(8) मुल्तान पर विजय (1011 ई०)

(9) थानेश्वर पर आक्रमण (1012 ई०)

(10) लाहौर विजय

(11) कश्मीर पर आक्रमण

(12) कन्नौज पर आक्रमण (1018)

(13) कालिंजर पर आक्रमण (1019 ई०)

(14) पंजाब पर आक्रमण (1020 ई०)

(15) ग्वालियर तथा कालिंजर पर आक्रमण (1021–22)

(16) सोमनाथ पर आक्रमण (1025–26 ई०)

(17) जाटों के विरूद्ध आक्रमण, महमूद की मृत्यु (30 अप्रैल, 1030 ई० में)

महमूद गजनवी के आक्रमणों का भारत पर प्रभाव—महमूद गजनवी द्वारा किए गए 17 आक्रमणों का भारत पर व्यापक प्रभाव पड़ा जिसको निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

1. भारत की अपार संपदा लुट जाने के कारण भारत आर्थिक दृष्टि से दुर्बल हो गया।

2. महमूद के आक्रमण से राजपूतों की सैनिक दुर्बलता और आपसी कलह स्पष्ट हो गई।

3. भारतीय साहित्य एवं कला की अपार हानि हुई, क्योंकि महमूद ने धन लूटने के साथ-साथ मंदिरों, मूर्तियों आदि को नष्ट कर दिया था और वह देश की अनेक दुर्लभ कलाकृतियों को अपने साथ गजनी ले गया।

4. पंजाब को गजनी राज्य में मिला लिए जाने से भविष्य के लिए मुसलमान आक्रमणकारियों का भारत में आने तथा अपना साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

इस प्रकार महमूद गजनवी के आक्रमणों के फलस्वरूप भारत को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी। इस संबंध में अलबरूनी ने लिखा है, "**महमूद ने देश की समृद्धि को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया और आश्चर्यजनक कार्यों का संपादन किया जिससे हिंदुओं को बालू के कणों की भाँति बिखेर दिया गया। उनके बिखरे अवशेष वास्तव में मुसलमानों से घोर घृणा करने लगे थे।**"

अधिक निर्भर रहते थे और अपनी स्वयं की शक्ति की ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे। इतना ही नहीं, अ असीम भक्ति-भावना के कारण वे मंदिरों का निर्माण करवाते थे और वहाँ पर असीम धन एकत्रित करके र थे। इसी कारण सोमनाथ के मंदिर पर महमूद गजनवी ने आक्रमण करके उसे खूब लूटा था। सोमनाथ मंदि पुजारियों का विश्वास था कि भगवान स्वयं आकर उनकी रक्षा करेंगे।

(2) युद्ध के सिद्धान्त की प्रमुखता—राजपूत धार्मिक युद्ध के पक्षपाती थे। वे युद्ध के नैतिक सिद्ध को अत्यधिक मानते थे और शत्रु को धोखे से मारना या शरणागत की हत्या करना धर्म के विरुद्ध समझते थे सत्य और दया के पक्षपाती थे, किंतु तुर्क आक्रमणकारी अवसरवादी थे। उनका सिद्धान्त था कि युद्ध में येन प्रकारेण विजय प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य है। उनका मानना था कि "Every thing is fair in w and love" विजय ही उनका एकमात्र धर्म है।

(3) मुसलमानों की जेहाद की भावना— मुसलमान सैनिक किसी भी युद्ध को इस्लाम धर्म की रक्ष लिए धर्म की भावना से लड़ते थे। युद्ध में अपनी जान देकर वे समझते थे कि हमने धर्म, अल्लाह या खुदा रक्षा की है। यह जेहाद की भावना भी मुसलमानों की विजय का प्रमुख कारण थी।

5. तात्कालिक (आकस्मिक) कारण

कुछ तात्कालिक कारणों ने भी राजपूतों की विजय को पराजय में बदल दिया। उदाहरणार्थ, पृथ्वीराज चौहान हाथी से उतरकर घोड़े पर सवार हुआ तो सेना ने समझा कि वह मारा गया और सेना खड़ी हुई। राजा जयचंद की आँख में अचानक तीर लग गया और राजपूत सेना में भगदड़ मच गई। इसी प्र के कुछ अन्य कारण भी राजपूतों की पराजय के कारण बने।

राजपूतों की सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture of Rajputs)

भारत के इतिहास में राजपूत युग को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। महाराजा हर्ष की मृत्यु से ले तुर्की शासन की स्थापना तक के काल को 'राजपूत युग' कहा जाता है। इस युग में जहाँ एक ओर उत्तरी भ अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था जिनमें प्राय: युद्ध होता रहता था, वहीं दूसरी ओर जब भ पर तुर्कों के आक्रमण प्रारम्भ हुए तो भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता, भारतीय समाज एंव धर्म की रक्षा का इन्हीं राजपूत राज्यों के कंधों पर था। यह संपूर्ण युग सैनिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण था किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। राजपूत शासकों ने भारतीय संस्कृति और सभ की रक्षा करते हुए उसे विकास के पथ पर आगे बढ़ाया था। विभिन्न राजपूत राजवंशों के अनेक राजाओं कला तथा विद्वत्ता को प्रश्रय दिया था जिसके कारण विभिन्न कलाओं और साहित्य का अत्यधिक विकास हु

राजपूत राजाओं का शासन काल साहित्य और कला की उन्नति के लिये विख्यात हैं। कुछ राजपूत न स्वंय भी उच्च कोटि के विद्वान थे जैसे परमारवंशी मुंज और भोज। मुंज एक उच्च कोटि का कवि था जिस राज सभा में 'नवसहसांकचरित' का रचयिता पद्मगुप्त और 'दशरूपक' का रचयिता धनन्जय रहते थे। की विद्धत्ता तथा काव्य प्रतिभा लोक विख्यात है। उसकी राजसभा विद्वानों एवं पंडितों से भरी हुई कर्पूरमंजरी और काव्य मीमांसा का लेखक राजशेखर, नैषधचरित का लेखक श्रीहर्ष, गीत गोविन्द का लेख जयदेव, विक्रमांकदेवचरित का लेखक बिल्हण, कथासरित्सागर का लेखक सोमदेव, राजतरंगिणी का लेख कल्हण और पृथ्वीराजरासो का लेखक चन्दबरदाई विशेष उल्लेखनीय हैं।

राजपूत शासक बड़े उत्साही निर्माता थे। उन्होंने अनेक भव्य मंदिर, मूर्तियों एवं सुदृढ़ दुर्गों का निर्म करवाया। राजपूतकालीन मंदिरों के भव्य नमूने भुवनेश्वर, खुजराहो, आबूपर्वत (राजस्थान) तथा गुजरात प्राप्त होते हैं। भुवनेश्वर का लिंगराज मंदिर, कोणार्क का सूर्यमंदिर, गुजरात के अन्हिलवाड़ा तथा राजस्थान आबू पर्वत पर बने कई भव्य मंदिर तथा खुजराहो में बने बहुत सारे मंदिर, जिनमें कन्दरिया महादेव का मं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, पूर्व मध्यकालीन वास्तु एवं लक्षण कला के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

सारांश (Summary)

- चोल वंश अति प्राचीन वंश है। महाभारत की कथा में चोलों का उल्लेख आया है। **सभापर्व** और **भीष्मपर्व** में यदा कदा चोलों का वर्णन है। **मेगस्थनीज** ने भी चोलों का वर्णन किया है। डॉ० राजबली पांडे का मत है कि प्राचीन काल में प्रमुख राजाओं को चोल कहा जाता था।
- नवीं शताब्दी के मध्य चोल वंश के उत्कर्ष का सूत्रपात विजयालय ने किया। उसने कावेरी प्रदेश में चोल वंश की प्रतिष्ठा को पुन स्थापित कर दिया, यद्यपि वह अभी भी पल्लवों के अधीन ही रहा।
- आदित्य प्रथम ने अपनी विजयों और विवाह सम्बन्धों के माध्यम से अपनी स्थिति को मजबूत किया और स्वयं को एक स्वतन्त्र राज्य का शासक घोषित किया।
- परान्तक प्रथम को दक्षिण भारत में चोल प्रतिष्ठा एवं शक्ति की वास्तविक स्थापना का श्रेय दिया जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् 30 वर्ष के काल में चोलों की प्रतिष्ठा एवं शक्ति को गहरा आघात् पहुँचा जिस कारण यह काल अंधकार युग के नाम से जाना जाता है।
- राजराजा प्रथम ने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। चोलों को दक्षिण में शक्तिशाली बनाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी।
- राजराजा प्रथम का पुत्र राजेन्द्र चोल एक महान शासक था जिसने अपने साम्राज्य की सीमाओं का बहुत अधिक विस्तार किया और विदेशों में भी चोलों का झंडा फहराया।
- इसके बाद चोल वंश के अनेक शासक हुए जिनमें राजाधिराज प्रथम, कुलोत्तुंग प्रथम आदि थे। चोल वंश का अंतिम शासक था राजेन्द्र तृतीय जिसके समय में चोल सत्ता अत्याधिक कमजोर पड़ गई तथा दक्षिणी सामंतों ने तथा पड़ोसी राज्यों ने इसका लाभ उठाना शुरू कर दिया। अन्तत: 1310 ई० में अलाउद्दीन खिल्जी के सेनापति मलिक काफूर ने चोल वंश को समाप्त कर दिया।
- चोलो ने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ एक सुव्यवस्थित एवं कुशल शासन प्रबन्ध भी प्रदान किया। राजा समस्त प्रशासन की धुरी एवं सम्पूर्ण सत्ता का स्रोत था। प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से समाज का अनेक इकाइयों में विभाजन था। चोल अपने स्थानीय प्रशासन के लिये अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।
- चोलों की न्याय व्यवस्था अत्यन्त उच्च कोटि की थी। अधिकांश मुंकदमों का निर्णय स्थानीय संस्थायें ही करती थी।
- राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर था। इसके अतिरिक्त वनों, खानों आदि से भी राज्य की पर्याप्त आय होती थी। अधिकांश धन युद्धों में ही व्यय होता था।
- चोलों के पास एक थल सेना के साथ-साथ एक जल सेना भी थी। उनकी विशाल नौ सेना ने समुद्र पार की विजयों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चोल सेना अपनी दक्षता के साथ-साथ क्रूरता के लिये भी जानी जाती है।
- महमूद गजनवी गजनी के शासक सुबुक्तगीन का पुत्र था। उसका पूरा नाम अबु कासिम महमूद था। उसका जन्म 2 नवंबर, 971 ई० में हुआ था।
- महमूद गजनवी के भारत आक्रमणों के विभिन्न उद्देश्य बताये जाते हैं जैसे राज्य विस्तार की लालसा, इस्लाम धर्म का प्रचार, परन्तु उसका एकमात्र उद्देश्य भारत की अतुलित सम्पदा को लूटना था।
- महमूद ने भारत पर 17 आक्रमण किये तथा उसमें भारत की सम्पदा को खूब लूटा। उसके आक्रमणों के फलस्वरूप भारत को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी।
- महमूद गजनवी के विरुद्ध भारतीय शासकों की हार के अनेक कारण थे जैसे उनमें एकता का अभाव, परस्पर ईष्या एवं द्वेष, सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की अपेक्षा, जाति प्रथा, सेना को दोषपूर्ण संगठन, आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का अभाव आदि।

- ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में मुसलमान आक्रमणकारियों को भारत में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त ह और राजपूत राजा उनके आक्रमणों को रोकने में असफल रहे तथा उनकी पराजय हुई।
- भारत के इतिहास में राजपूत युग को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हर्ष की मृत्यु से लेकर तुर्की शासन व स्थापना तक के समय को 'राजपूत युग' कहा जाता है। इस युग में उत्तरी भारत अनेक छोटे-छोटे राज्य में विभक्त हो गया था जिनमें सदैव युद्ध होता रहता था।
- राजपूत युग साहित्य एवं कलाओं के विकास के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। राजपूत युग में मुं और भोज जैसे विद्वान शासक और पद्मगुप्त, राजशेखर, श्रीहर्ष, जयदेव, बिल्हण, सोमदेव, कल्हण तथ चन्दबरदाई जैसे प्रसिद्ध कवि हुए। राजपूत शासकों ने भुवनेश्वर, पुरी, कोर्णाक, गुजरात के अन्हिलवाड़ राजस्थान के आबू पर्वत तथा बुन्देलखण्ड के खुजराहों में अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया जो उस यु के वास्तु एवं तक्षणकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

● अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

1. चोल वंश के प्रमुख शासकों का वर्णन कीजिए।
2. चोलों की शासन प्राणाली का वर्णन कीजिए।
3. महमूद गजनवी का परिचय दीजिए तथा उसके भारत पर आक्रमण के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
4. महमूद गजनवी के आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?
5. राजपूतों की पराजय के कारणों का उल्लेख कीजिए।
6. चोल राजा राजेन्द्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।

● संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. प्राचीन भारत इतिहास—*लेखन-प्रतिभा प्रकाशन।*
2. भारतीय इतिहास : एक विश्लेषण—*मनीकांत सिंह, किताब महल।*
3. भारत का इतिहास—*मनोज शर्मा, पियर्सन एजूकेशन।*

इकाई (Unit)

2

मुहम्मद गौरी के आक्रमण
(Muhammad Ghori's Invasions)

संरचना

उद्देश्य (Objectives)

विषय प्रवेश (Introduction)

मुहम्मद गौरी (Muhammad Ghori)

दास वंश : कुतुबुद्दीन ऐबक और इल्तुतमिश (Slave Dynasty : Qutbuddin Aibak and Iltutmish)

रजिया एवं बलबन (दासवंश के पतन के कारण)
[Razia and Balban-Reasons for the fall of Slave Dynasty]

- अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316 ई०) (Allauddin Khilji : 1296–1316 A.D.)

सुल्तान मुहम्मद तुलगक (1325–1351 ई०) (Sultan Muhammad Tughlaq : 1325–1351 A.D.)

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (1351–1388 ई०) (Sultan Firozshah Tughlaq : 1351–1388 A.D.)

- सारांश (Summary)

अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात पाठक जान सकेंगे—

- मुहम्मद गौरी को।
- कुत्तुबुद्दीन ऐबक की उपलब्धियाँ।
- इल्तुतमिश के चरित्र का मूल्यांकन।
- रजिया, बलबन एवं अलाउद्दीन खिलजी को।
- सुल्तान मुहम्मद तुगलक एवं फिरोजशाह तुगलक को।

विषय प्रवेश (Introduction)

गोर का छोटा-सा पहाड़ी राज्य गजनी और हैरात के मध्य पर्वतीय दुर्गम क्षेत्र था। पाँच पर्वत श्रेणियाँ इस क्षेत्र में एक-दूसरे को काटती हैं। ये पर्वत श्रेणियाँ दस हजार फीट तक ऊँची हैं। कई तेज बहने वाली नदियाँ भी इस क्षेत्र में मिलती हैं जिनके कारण इस क्षेत्र में आवागमन अत्यंत कठिन है। अफगानिस्तान का यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ था और गजनी, काबुल या कान्धार के निवासियों की अपेक्षा यहाँ के निवासी बहुत पिछड़े हुए थे।

गोर का उत्थान—संसबानी राजवंश के शासन में गोर का उत्थान हुआ। इस वंश के प्रारंभिक शासकों के बारे में कोई विवरण नहीं मिलता। इनके विषय में तबकाते-नासरी के लेखक मिनहाज ने विवरण एकत्रित करने

का प्रयास किया किन्तु सफलता नहीं मिली। उसने लिखा है कि इस वंश का संस्थापक जुहक था, किन्तु जु वास्तव में ईरान की पौराणिक गाथाओं का एक पात्र था।

सुबुक्तगीन के समय में मुहम्मद बिन सूरी गोर का शासक था। यद्यपि उस पर सुबुक्तगीन ने आक्र किया था किन्तु उस समय व्यावहारिक रूप से मुहम्मद बिन सूरी स्वतंत्र ही रहा। गोर के शासकों ने महमूद उसके पुत्र मसूद के शासनकाल में गजनी की नाममात्र की अधीनता बनाये रखी। मसूद के उत्तराधिकारी गजन शासक दुर्बल रहे, अत: गोर के संसबानी शासक स्वतंत्र हो गये। गोर के शासक अलाउद्दीन ने 'सुल्तान' उपाधि धारण की और गजनी पर आक्रमण करके उसे भस्म कर दिया। यह उदीयमान गोर की शक्ति परिचायक था। गियासुद्दीन 1163 ई० में गोर की गद्दी पर आसीन हुआ। अपने छोटे भाई मुईजुद्दीन को उ तकीनाबाद का शासक नियुक्त किया और उसे आदेश दिया कि वह गुज तुर्कों से गजनी को अपने अधिकार ले। 1173 ई० में गजनी पर मुईजुद्दीन ने अधिकार जमा लिया। भारत के इतिहास में यह मुईजुद्दीन ही मुहम्म गोरी के नाम से जाना जाता है और उसने तुर्क राज्य की स्थापना उत्तर भारत में की। मुईजुद्दीन इतनी सफलता को प्राप्त करके भी अपने बड़े भाई का आज्ञाकारी बना रहा।

● मुहम्मद गौरी (Muhammad Ghori)

मुहम्मद गौरी को उत्तर भारत में तुर्क साम्राज्य स्थापित करने का श्रेय है। उसमें महमूद गजनवी के स उच्च कोटि की सैनिक प्रतिभा नहीं थी और उसका व्यक्तित्व भी उतना प्रभावशाली नहीं था। किन्तु उस राजनीतिक दृष्टिकोण रचनात्मक था और कार्य को पूरा करने की उसमें पर्याप्त रुचि, योग्यता और क्षमता उसने भारत में तुर्क साम्राज्य की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की और अनेक बार असफल रहने पर भी अपने उद्देश्य से विचलित अथवा हताश नहीं हुआ।

(अ) प्रारंभिक आक्रमण- मुहम्मद गौरी के प्रारंभिक आक्रमण निम्नलिखित थे—

(i) मुल्तान—मुहम्मद गौरी का 1175 ई० में पहला आक्रमण मुल्तान पर था। महमूद गजनवी की म के पश्चात् मुल्तान के करामाता शासकों (शिया या इस्माइली शासक) ने पुन: स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली उन्हें पराजित कर मुहम्मद गौरी ने मुल्तान पर अधिकार जमा लिया। मुल्तान को सर्वप्रथम जीतने के कारण मुल्तान को मुहम्मद गौरी आधार बनाना चाहता था, मुल्तान का राज्य उत्तर-पश्चिम में सबसे दुर्बल था, मुल्त का शासक शिया था अत: उसके सैनिकों के लिए यह धर्म युद्ध था।

(ii) उच्छ—मुहम्मद गौरी ने मुल्तान पर अधिकार करने के उपरान्त उच्छ पर आक्रमण कर दि संभवत: यह आक्रमण 1176 ई० में हुआ था। मुहम्मद गौरी को भट्ठी रानी ने दुर्ग समर्पित कर दिया

(iii) गुजरात— गुजरात पर 1178 ई० में मुहम्मद ने आक्रमण किया। गुजरात पर इस समय चालु वंश के भीमदेव द्वितीय का राज्य था। जब आबू पर्वत के निकट तुर्क सेना पहुँची, तो चालुक्य सेना ने इस थ हुई सेना पर आक्रमण कर दिया। तुर्क सेना इस युद्ध में पराजित हुई। मुहम्मद गौरी बड़ी कठिनता से बची रह सेना के साथ मुल्तान वापस पहुँचा।

(iv) पेशावर—अब मुहम्मद गौरी ने अपनी भूल स्वीकार की। उसे ज्ञात हो गया कि सफल अभिय के लिये उचित आधार पंजाब है। 1179–80 में उसने पेशावर पर आक्रमण किया जो पंजाब के गजन शासक के आधीन था। लाहौर का दुर्बल गजनवी शासक पेशावर की रक्षा न कर सका और मुहम्मद गौरी ने पर अधिकार कर लिया।

पंजाब की विजय—पेशावर पर अधिकार मिलने से पंजाब विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया। पंजाब गजनवी शासक खुसरो मलिक पंजाब की रक्षा न कर सका। 1181–82 ई० में लाहौर पर मुहम्मद गौरी आक्रमण किया किन्तु स्थिति निर्णायक नहीं रही और मुहम्मद गौरी खुसरो मलिक से संधि करके वापस ल गया। वह खुरासान, हेरात, बल्ख की समस्याओं में अगले चार वर्षों तक व्यस्त रहा। 1184–85 में उ

लाहौर पर पुन: आक्रमण किया किन्तु जीतने में सफल न हो सका। अत: वह स्यालकोट को जीतने के उपरान्त वापस चला गया। 1186 ई० में उसने पुन: पंजाब आकर कपट से खुसरो मलिक को बंदी बनाकर लाहौर पर अधिकार कर लिया।

देबल तथा समुद्रतट पर अधिकार—इसी बीच 1182 ई० में उसने देबल पर आक्रमण करके निचले सिंध प्रांत और समुद्रतट को गोर राज्य में मिला लिया। सिंध के सूरमा शासकों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

(ब) राजपूत राज्यों पर विजय—मुहम्मद गौरी की इन प्रारंभिक विजयों से स्पष्ट हो जाता है कि राजपूत राजाओं से युद्ध प्रारंभ करने से पूर्व उसने स्यालकोट से देबल तक और पेशावर से लाहौर तक के विस्तृत क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया था। इस कार्य में उसे ग्यारह वर्ष लगे और संगठित तथा नियोजित ढंग से यह कार्य उसने सम्पन्न किया। पंजाब में तीन वर्ष तक शक्ति संगठित करने के उपरान्त उसने राजपूतों से युद्ध आरंभ किया।

(1) भटिण्डा पर आक्रमण—मुहम्मद गौरी ने 1189 ई० सतलज नदी को पार करके भटिण्डा पर आक्रमण किया जो चौहान राज्य के अधिकार में था। इस सीमावर्ती दुर्ग की रक्षा करने के लिये चौहान राजा पृथ्वीराज ने व्यवस्था नहीं की थी। अत: इस पर मुहम्मद गोरी का सरलता के साथ अधिकार हो गया। इस विजय के बाद वह वापस लौट गया। पृथ्वीराज भटिण्डा की सूचना मिलते ही आया और उसे पुन: प्राप्त करने के लिये उसने भटिण्डा दुर्ग का घेरा डाल दिया।

(2) तराइन का पहला युद्ध—मुहम्मद गौरी पृथ्वीराज के घेरे की सूचना प्राप्त होते ही लौट पड़ा। तराइन के मैदान में दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ (1191 ई०) जिसमें मुहम्मद गौरी पराजित हुआ और वह स्वयं घायल हो गया। एक खिलजी सैनिक ने उसके प्राण बचाए। उसकी सेना तितर बितर हो गई और वह स्वयं गजनी लौट गया। पृथ्वीराज ने गोर सेना के भाग जाने के बाद भटिण्डा किले पर पुन: घेरा डाला और 13 महीने बाद उस पर अधिकार लिया।

(3) तराइन का द्वितीय युद्ध—मुहम्मद गोरी इस युद्ध में हुई पराजय तथा अपमान को भूला नहीं और गजनी लौटने के बाद पृथ्वीराज से प्रतिशोध लेने की तैयारी में ही जुटा रहा। उसने गजनी आने पर अत्यंत सावधानी से युद्ध की तैयारी की और एक लाख बीस हजार चुने हुई अश्वारोही सेना के साथ उसने 1192 ई० में पुन: आक्रमण किया।

तराइन के मैदान में ही उसका पृथ्वीराज से फिर युद्ध हुआ। इस बार पृथ्वीराज पराजित हुआ। **तबकाते-नासिरी** में **मिनहाज** बताता है कि नियोजित रणनीति के अनुसार मुहम्मद गौरी ने युद्ध किया था जिससे उसे सफलता मिली। पृथ्वीराज बंदी बना लिया गया और कुछ समय बाद उसका वध कर दिया गया।

इस विजय से अजमेर और दिल्ली पर तुर्कों का अधिकार हो गया। अपने प्रतिनिधि कुत्बुद्दीन की अधीनता में इन विजित स्थानों को छोड़कर मुहम्मद गोरी स्वदेश लौट गया। कुत्बुद्दीन ने अगले दो वर्षों में अजमेर में विद्रोह का दमन किया। बरन तथा मेरठ को जीता और दिल्ली को तुर्क सत्ता का केंद्र बनाया।

तराइन का द्वितीय युद्ध भारतीय इतिहास की एक निर्णायक जीत साबित हुई। इसने भारतीय इतिहास की दिशा बदल दी और भारतवर्ष में तुर्क शासन की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

(4) कन्नौज की विजय—कन्नौज राज्य के गहड़वालों पर 1194 ई० में मुहम्मद गौरी ने आक्रमण किया। पृथ्वीराज चौहान का जयचंद्र गहड़वाल ने सहयोग नहीं दिया। अत: उसे अकेले ही जूझना पड़ा। जयचन्द्र अत्यधिक वीर था और उसने अपने भयंकर प्रहारों से गौरी के छक्के छुड़ा दिये। सम्भवत: गौरी घुटने टेक ही देता यदि अचानक जयचन्द्र की आंख में तीर न लग जाता और जयचन्द्र हाथी से गिर पड़ा और कन्नौज के निकट चन्दवार के युद्ध में जयचन्द्र पराजित हो गया और युद्ध में मारा गया। पूरब में वाराणसी तक विस्तृत गहड़वाल राज्य पर तुर्कों का आधिपत्य हो गया।

(5) बयाना और ग्वालियर—मुहम्मद गौरी अगले वर्ष 1195 ई० में फिर भारत पहुँचा। अबकर बयाना पर उसने आक्रमण किया। राजपूत राजा कुमारपाल पराजित हुआ और तुर्कों ने थग्गीर के किले अधिकार कर लिया। बहाउद्दीन तुगरिल को मुहम्मद गौरी ने यहां सैनिक अधिकारी नियुक्त कर दिया। पश्चात् मुहम्मद गौरी ने ग्वालियर पर आक्रमण किया किन्तु इस किले को जीतने में वह असफल रहा। तु को ग्वालियर पर कब्जा करने का आदेश देकर वह वापस गजनी चला गया। राजपूत बड़ी वीरतापूर्वक डेढ़ तक लड़ते रहे, परन्तु तुर्कों के द्वारा यातायात मार्गों को काट देने के कारण किले में रसद पहुँचना बन्द हो था। अत: राजपूतों को किला छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। 1197 ई. में तुर्कों का ग्वालियर पर अधिक गया।

(6) बुंदेलखंड विजय—कुत्बुद्दीन ऐबक ने 1197–1203 ई० के मध्य बदायूँ, कन्नौज वाराणसी पर तुर्क शासन की स्थापना की। 1202 ई० में बुंदेलखंड में चंदेल राजा को पराजित करके कालिंजर, महोबा और खुजराहो पर अधिकार कर लिया।

(7) बिहार और बंगाल—तुर्क सेनापति इख्तयारूद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी को बिहार बंगाल को परास्त करने का श्रेय है। वह अवध के प्रशासक का एक साधारण अधिकारी था। उसने बिह उदन्तपुर, नालंदा, विक्रमशिला शिक्षा केंद्रों को लूटा और आग के हवाले कर दिया। 1204–1205 ई उसने सेन की राजधानी नादिया पर आक्रमण किया। सेन राजा लक्ष्मणसेन रक्षा की कोई तैयारी नहीं कर और राजधानी पर आक्रमणकारियों ने सुगमता से अधिकार कर लिया।

मुहम्मद गौरी की मृत्यु—मुहम्मद गौरी की 1206 ई० में मृत्यु हो गई। पंजाब में खोखरो का दमन व जब वह गजनी वापस जा रहा था, मार्ग में खोखरो और शिया विद्रोहियों ने षड्यंत्र रचा और उस का वध दिया। यह नवस्थापित तुर्क साम्राज्य पर भीषण आघात साबित हुआ।

● दास वंश : कुत्बुद्दीन ऐबक (1206–1210 ई०)
(Slave Dynasty : Qutbuddin Aibak 1206–1210 A.D.)

कुत्बुद्दीन ऐबक : परिचय

1192 ई० में तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद उत्तर भारत में तुर्क शासन की स्थापना हो गयी। मुह गौरी ने इस युद्ध में चौहान राजा पृथ्वीराज तृतीय को पराजित कर दिया था। यह युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ इसने तुर्कों द्वारा उत्तर भारत पर विजय पाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। पृथ्वीराज की शक्ति इस पराजय से तरह से नष्ट हो गई थी और इसके उपरान्त वह तुर्कों से लोहा नहीं ले सका। हाँसी, कुहराम तथा सरस्वर्त मुहम्मद गौरी ने अधिकार जमा कर उन्हें तुर्क सैनिक केन्द्र में परिवर्तित कर दिया। संभवत: इस समय चौ राज्य का शासन मुहम्मद गौरी अपने हाथों में लेना नहीं चाहता था, इसलिए उसने अधीनस्थ राजा के रू पृथ्वीराज के एक पुत्र को गद्दी पर बिठा दिया। मुहम्मद गौरी ने तुर्क सेना अपने विश्वासपात्र सेनापति कुत्बुद के नेतृत्व में दिल्ली के पास इंद्रप्रस्थ में नियुक्त कर दी। कुत्बुद्दीन ने कुछ समय बाद दिल्ली और अजमेर भी अधिकार करके तुर्कों का प्रत्यक्ष शासन स्थापित कर दिया। इस प्रकार दिल्ली सल्तनत अस्तित्व में आई।

दास राजवंश—मामलुक सुल्तानों का दिल्ली सल्तनत की स्थापना और संरक्षण में प्रमुख योगदान इसे सुविधा की दृष्टि से दास राजवंश कहा जाता है। यह विचित्र है कि यह कोई वंश नहीं था अपितु इसमें वंश थे जिनके संस्थापक कुत्बुद्दीन, इल्तुतमिश और बलबन थे। 1206 ई० से 1451 ई० की अवधि के शासक तुर्क थे। केवल 1451 ई० से 1526 ई० तक राज्य करने वाला लोदी वंश, अफगान या पठान था।

कुत्बुद्दीन ऐबक का प्रारंभिक जीवन—भारत में तुर्क राज्य का संस्थापक कुत्बुद्दीन ऐबक जाता है जो तुर्किस्तान का निवासी था। बचपन में उसे गुलाम बनाकर निशापुर के काजी फखरूद्दीन को दिया गया था। कुत्बुद्दीन तीक्ष्ण बुद्धि का प्रतिभाशाली बालक था। उसने काजी के पुत्रों के साथ विद्या ग्रहण

तथा घुड़सवारी तथा सैनिक प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। काजी की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्रों ने एक सौदागर के हाथों कुत्बुद्दीन को बेच दिया। इस सौदागर ने गजनी ले जाकर उसे मुहम्मद गौरी को बेच दिया। मुहम्मद गौरी उसकी प्रतिभा तथा कार्यकुशलता और योग्यता से प्रभावित हुआ और उच्च पद पर उसकी नियुक्ति की गई। मुहम्मद गौरी ने उसे घुड़साल का अध्यक्ष (अमीर-ए-आखूर) नियुक्त किया तथा उसे तराइन के द्वितीय युद्ध के पश्चात् अपने भारतीय साम्राज्य का शासक नियुक्त कर दिया। इंद्रप्रस्थ को कुत्बुद्दीन ने अपना सैनिक केंद्र बनाया और तुर्क साम्राज्य के प्रशासन, संरक्षण तथा विस्तार का भार संभाला।

कुत्बुद्दीन ऐबक की उपलब्धियाँ—1192 ई० से 1206 ई० तक मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि की हैसियत से कुत्बुद्दीन ने कार्य किया। इस काल में सल्तनत को सुरक्षित रखना और विस्तार करना उसकी विशेष उपलब्धियाँ थीं। उसने 1206 ई० से 1210 ई० तक दिल्ली पर स्वतंत्र शासक के रूप में शासन किया और गजनी साम्राज्य से दिल्ली सल्तनत को पृथक करके उसकी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की। यही उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में—तराइन के युद्ध में विजय श्री प्राप्त करने पश्चात् मुहम्मद गौरी ने अपने प्रतिनिधि के रूप में कुत्बुद्दीन को भारत में नियुक्त किया। उसने कुत्बुद्दीन को सैनिक और प्रशासनिक अधिकार दिए थे। कुत्बुद्दीन ने 1192 ई० में अजमेर में चौहानों के विद्रोह पर काबू पाया और हाँसी के विद्रोह का भी दमन किया। उसने इसी वर्ष डोर राजपूतों को हराकर बुलन्दशहर (बरन) छीन लिया और इसके उपरान्त मेरठ को भी अधिकार में ले लिया। उसने 1193 ई० में दिल्ली के तोमर राजा को हराकर दिल्ली पर अधिकार स्थापित किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। इसी समय चौहानों का दूसरा विद्रोह अजमेर में हुआ जिसका कुत्बुद्दीन ने सफलतापूर्वक दमन किया। डोर राजपूतों ने इसी समय विद्रोह कर दिया। कुत्बुद्दीन दोआब गया और अलीगढ़ (रामगढ़) पर कब्जा कर लिया।

1194 ई० में कुत्बुद्दीन ने चन्दवार के युद्ध में अपने स्वामी का सहयोग दिया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप पूरब में वाराणसी तक तुर्क राज्य फैल गया। कुत्बुद्दीन ने मुहम्मद गौरी के जाने के बाद रणथम्भौर भी जीत लिया। तीसरी बार अजमेर में चौहानों ने स्वतंत्र होने का प्रयास किया। इस बार अजमेर पर अधिकार करके कुत्बुद्दीन ने अपना प्रतिनिधि प्रशासक नियुक्त कर दिया। 1197–98 में गंगा-यमुना दोआब में कुत्बुद्दीन ने तुर्क आधिपत्य को सुदृढ़ किया और 1202–1203 ई० में चंदेलों को पराजित करके बुंदेलखंड में तुर्क राज्य स्थापित किया। उसके सहयोगी इख्तियारूद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने बिहार और बंगाल के कुछ भागों को जीत लिया। इस प्रकार 1206 ई० में कुत्बुद्दीन के सिंहासन पर बैठने से पूर्व समस्त उत्तर भारत में तुर्क साम्राज्य स्थापित हो चुका था। कुत्बुद्दीन का इस उपलब्धि में महत्वपूर्ण योगदान था।

सिंहासनारोहण—ऐसा प्रतीत होता है कि आकस्मिक मृत्यु के कारण अपने उत्तराधिकारी के विषय में मुहम्मद गौरी कोई निर्णय नहीं ले पाया था। उसके कोई पुत्र नहीं था लेकिन वह दासों पर विश्वास करता था और उसे विश्वास था कि साम्राज्य को उसके दास सुरक्षित रखेंगे और उसके योग्य उत्तराधिकारी होंगे।

कुत्बुद्दीन के राज्यारोहण का आधार निर्वाचन था। मुहम्मद गौरी की मृत्यु का समाचार मिलते ही कुत्बुद्दीन को लाहौर के अधिकारियों तथा नागरिकों ने राज्यारोहण के लिए आमंत्रित किया। वह दिल्ली से लाहौर पहुँचा, जहाँ 24 जून, 1206 ई० वह गद्दी पर बैठा। उसने केवल 'मलिक' तथा 'सिपहसालार' की उपाधियाँ धारण कीं।

कुत्बुद्दीन की मृत्यु—1210 ई० में पोलो खेलते समय घोड़े से गिर जाने के कारण कुत्बुद्दीन की मृत्यु हो गई। उसने चार वर्ष के अल्प शासनकाल में तुर्क साम्राज्य को बुद्धिमत्तापूर्वक सुरक्षित रखा। यद्यपि उसने सिक्के जारी नहीं किए और न खुतबे में उसका नाम पढ़ा गया, किंतु वह दिल्ली सल्तनत का संस्थापक था।

मूल्यांकन—भारत में तुर्क साम्राज्य का प्रथम स्वतंत्र शासक कुत्बुद्दीन ऐबक था। उसे अपने शासन के चार वर्ष के अल्प समय में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा।

महान सेनानायक—कुत्बुद्दीन एक महान सेनानायक था। उसने अपने स्वामी के काल में अनेक विज प्राप्त की थीं तथा तुर्क सल्तनत का विस्तार किया था, किन्तु उसने 1206 ई० के बाद नवीन क्षेत्रों की विज की नीति त्याग दी और सल्तनत की सुरक्षा तथा संगठन पर विशेष ध्यान दिया। यह उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण नीति थी और दिल्ली सल्तनत को इससे सुरक्षा प्राप्त हुई और उसकी उन्नति भी हुई।

उदार एवं दानी—कुत्बुद्दीन ऐबक की योग्यता, वीरता एवं निष्ठापूर्ण सेवाओं के कारण ही भारत मुहम्मद गौरी को सफलता प्राप्त हुई थी। कुत्बुद्दीन ऐबक को दिल्ली सल्तनत की विस्तृत रूपरेखा बनाने तथ उसे संगठित करने का श्रेय जाता है। मिनहाज ऐबक की दानशीलता की प्रशंसा में कहता है कि ऐबक व 'लाखबख्श' कहा जाता था। वह विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके दरबार में फख्र-ए-मुदब्बिर और हस निजामी को संरक्षण प्राप्त था। उन्होंने अपने ग्रंथ ऐबक को समर्पित किए थे। वह कला का भी संरक्षक औ उपासक था। उसने कुव्वत-उल-इस्लाम और अढ़ाई दिन का झोंपड़ा, दो मस्जिदों का निर्माण कराया था

हसन निजामी के अनुसार वह न्यायप्रिय शासक था और उसने जनता को शांति तथा समृद्धि प्रदान क थी। मिनहाज के अनुसार वह स्फूर्तिवान तथा उदार भी था।

प्रशासन व कूटनीति—कहा गया है कि ऐबक में रचनात्मक प्रतिभा तथा प्रशासकीय गुण का अभाव था किन्तु यह सही नहीं है। वह अनवरत युद्धों में संलग्न रहा था और उसे संघर्षपूर्ण अल्पकालिक शासनकाल प्रशासन स्थापित करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिला। एलदौज और कुबाचा के मामलों में उसकी कूटनीतिक सफलता देखने को मिलती है। उसकी सबसे बड़ी सफलता यही थी कि गजनी से उसने संबंध विच्छेद करके व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र दिल्ली सल्तनत की नींव डाली और उसकी रूपरेखा तैयार की।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211–1236 ई०)
(Shamsuddin Iltutmish : 1211–1236 A.D.)

प्रारंभिक जीवन—मध्य एशिया के एक इल्बारी तुर्क परिवार में इल्तुतमिश का जन्म हुआ था। व आकर्षक तथा गुणी बालक था। उसके ईर्ष्यालु भाइयों ने उसे जमालुद्दीन मुहम्मद नाम के एक दास व्यापारी के हाथ बेच दिया। गजनी में कुत्बुद्दीन ने उसे जमालुद्दीन से खरीदा। यहाँ उसने सैनिक शिक्षा प्राप्त की। वह अप गुणों तथा योग्यता से स्वामी का विश्वासपात्र बन गया। 1205 ई० में खोखरों के विरुद्ध युद्ध में उसने असी वीरता तथा साहस का प्रदर्शन किया जिसके कारण उसे मुहम्मद गौरी ने दासता से मुक्त कर दिया। ग्वालिय की विजय के बाद उसे ग्वालियर का किलेदार नियुक्त कर दिया गया। इसके बाद उसे बरन का प्रशास नियुक्त किया गया। कुत्बुद्दीन की मृत्यु के बाद उसे दिल्ली के नागरिकों तथा अधिकारियों ने मुख्य काजी के परामर्श पर दिल्ली आमंत्रित किया और उससे सुल्तान बनने का आग्रह किया। उसने आरामशाह को पराजि करके सुल्तान पद सुरक्षित कर लिया। कुछ विद्वानों ने इल्तुतमिश को एक अपहरणकर्ता कहा है परन्तु डॉ आर० पी० त्रिपाठी ने यह कहा है कि इल्तुतमिश को अपहरण करने लायक कुछ था ही नहीं। दूसरी बात यह कि इस्लामी कानून योग्यतम व्यक्ति को ही सत्ता का वास्तविक अधिकारी मानता है, इसलिये अयोग्य आरामशा को हटाकर इल्तुतमिश का गद्दी पर अधिकार करना सर्वथा चित था।

राज्यारोहण—दिल्ली के नागरिकों ने इल्तुतमिश का निर्वाचन किया था क्योंकि उस समय संकट का में उन्हें एक अनुभवी सैनिक तथा प्रशासक के नेतृत्व की आवश्यकता थी जो उन्हें सुरक्षा प्रदान कर सके। उन निर्बल और अयोग्य आरामशाह के नेतृत्व में विश्वास नहीं था। आरामशाह का निर्वाचन लाहौर के नागरिक द्वारा किया गया था। ऐसी परिस्थिति में युद्ध एकमात्र विकल्प रह गया था। इस युद्ध में इल्तुतमिश को सफलत मिली। इस प्रकार इल्तुतमिश ने अपनी योग्यता से अपने निर्वाचन के औचित्य को प्रमाणित कर दिया।

इल्तुतमिश की प्रारंभिक कठिनाइयाँ तथा समस्याएँ—इल्तुतमिश के समक्ष राज्यारोहण के समय अनेक समस्याएं थीं। कुत्बुद्दीन ऐबक ने केवल तुर्की सल्तनत की आधारशिला ही रक्खी थी एवं सर्वत्र असंगठन एवं अव्यवस्था ही थी। दिल्ली सल्तनत की गद्दी इल्तुतमिश के लिये फूलों की सज्जा न होकर काँटों का ताज थी क्योंकि समस्यायें हर ओर से मुंह बाये खड़ी थीं। उसकी समस्याओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. विभाजित साम्राज्य—इल्तुतमिश को केवल दिल्ली का राज्य प्राप्त हुआ था। तुर्क सल्तनत कुत्बुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् ही चार भागों में विभाजित हो गई थी। सुदूर बंगाल की राजधानी लखनौती में गवर्नर अली मर्दान ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी और मिनहाज के अनुसार उसने 'सुल्तान' की उपाधि धारण करके सिक्के भी जारी कर दिऐ थे। इस अवसर का लाभ उठाकर कुबाचा ने भी मुल्तान पर कब्जा कर लिया था और भटिण्डा, कुहराम और सरस्वती तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया था। एलदौज का पश्चिमी पंजाब पर अधिकार था।

2. राजपूत राजाओं का स्वतंत्र होना—तुर्क सल्तनत कुत्बुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद छिन्न-भिन्न हो गई थी। राजपूत राजाओं ने इस स्थिति का लाभ उठाकर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। उन्होंने दिल्ली को कर देना बंद कर दिया। इनमें जाहौर और रणथम्भौर प्रमुख थे। तुर्कों के विरुद्ध अजमेर, ग्वालियर, बयाना और दोआब के राजपूतों ने भी विद्रोह कर दिया। केवल दिल्ली, बदायूँ, पूरब में वाराणसी तथा उत्तर में शिवालिक पहाड़ियों तक का क्षेत्र इल्तुतमिश के अधिकार में शेष रह गया था।

3. एलदौज का दिल्ली सल्तनत पर दावा—गजनी का शासक एलदौज कुत्बुद्दीन ऐबक के समय से दिल्ली के तुर्क साम्राज्य पर अपना दावा पेश कर रहा था। ऐबक की मृत्यु के उपरान्त इल्तुतमिश के सामने भी यह संकट था और इल्तुतमिश की शक्ति इतनी नहीं थी कि वह एलदौज से संघर्ष कर सकता।

4. कुतुबी अमीर—अनेक कुतुबी अमीर इल्तुतमिश के विरोधी थे। लाहौर के कुतुबी अमीर उससे विशेष रूप से रुष्ट थे। आरामशाह का उन्होंने समर्थन किया था और वे इल्तुतमिश को सुल्तान मानने के लिए तैयार नहीं थे। दिल्ली में भी वे उसके विरूद्ध षड्यंत्र रच रहे थे।

समस्याओं का समाधान—यह सही है कि इल्तुतमिश चारों ओर से समस्याओं से घिरा हुआ था परन्तु वह इससे विचलित नहीं हुआ और उसने अत्यधिक कूटनीति, व्यावहारिकता एवं सूझबूझ से एक-एक समस्या का समाधान करते हुए न केवल अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया वरन् तुर्की साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने में भी सफलता प्राप्त की।

सर्वप्रथम उससे अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये अपने विश्वासपात्र 'चालीस के दल' का संगठन किया और एक-एक करके समस्याओं का समाधान किया।

यल्दूज से संघर्ष—ताजुद्दीन यल्दूज मुहम्मद गौरी के प्रिय दासों में से एक था और स्वयं को अपने स्वामी का सर्वाधिक योग्य उत्तराधिकारी समझता था। उसने कुत्बुद्दीन के समय में भी एक चुनौती प्रस्तुत की थी और उसकी मृत्यु के बाद पुन: समस्त हिन्दुस्तान पर अपने प्रभुत्व का दावा किया। आरामशाह के दल का पूर्ण रूप से दमन करने के पश्चात इल्तुतमिश ने जब गजनी से भागकर लाहौर में शरण ली तो इल्तुतमिश यल्दूज के विरूद्ध बढ़ा। तराइन के युद्ध क्षेत्र में यल्दूज को हराकर एवं बंदी बनाकर इल्तुतमिश ने उसे बदायू के एक दुर्ग में भेज दिया जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। यह इल्तुतमिश की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

मंगोल आक्रमण से छुटकारा—इल्तुतमिश के सामने एक नया संकट तब उत्पन्न हुआ जब मंगोल नेता तेमुजन (जो इतिहास के चंगेज खां के नाम से प्रसिद्ध है) ने 1221 में ख्वारिज्म के शाह पर आक्रमण किया। ख्वारिज्म के युवराज जलालुद्दीन मांगबर्जी ने लाहौर की ओर बढ़कर इल्तुतमिश के पास अपना दूत भेजकर शरण की याचना की। इस दुविधापूर्ण स्थिति में इल्तुतमिश ने बड़ी सूझबूझ के काम लिया। युवराज जलालुद्दीन

फिर भी वे दिल्ली की ओर बढ़ते रहे। इसका कारण यह था कि रजिया के राज्यारोहण को उन्होंने अस्वीकृ कर दिया था। उनके विरोध का आधार यह था कि उनसे स्वीकृति नहीं ली गई थी। वास्तव में सुल्तान का चय करना, तुर्क अमीर अपना एकाधिकार मानते थे।

दिल्ली के कुछ उच्च अधिकारियों का समर्थन रजिया को प्राप्त नहीं था। वजीर निजामुल-मुल्क जुनै इनमें प्रमुख था जो विद्रोही अमीरों से मिलकर षड्यंत्र में शामिल हो गया। रजिया का अधिकार क्षेत्र दिल्ली त आस पास तक ही सीमित था। उसके विरुद्ध प्रांतीय सूबेदारों ने विद्रोह जारी रखा। इस अस्थिरता का ला उठाकर राजपूत राजाओं ने भी विद्रोह कर दिया।

रजिया की मृत्यु—दिल्ली में षड्यंत्रकारी तुर्क अमीरों में षड्यंत्र की सफलता के पश्चात पदों बँटवारा हुआ, उससे अल्तूनिया असंतुष्ट हो गया। अत: उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की दृष्टि से रजि से विवाह कर लिया। रजिया ने भी विवाह करना स्वीकार कर लिया क्योंकि वह शक्ति और स्वतंत्रता चाह थी। दोनों दिल्ली पर अधिकार करने के लिए चल पड़े किन्तु वे दोनों दिल्ली की सेना द्वारा पराजित हुए। कु डाकुओं ने कैथल के पास उन दोनों की हत्या कर दी।

रजिया का मूल्यांकन : असफलता के कारण—मिनहाज के अनुसार रजिया ने तीन वर्ष, पाँच म और छह दिन शासन किया था, वह रजिया के गुणों का प्रशंसक है। वह लिखता है कि, **"सुल्तान रजिया ए महान शासक थी–बुद्धिमान, न्यायप्रिय, उदारचित और प्रजा की शुभचिंतक, समदृष्टा, प्रजापाल और अपनी सेनाओं की नेता, उसमें बादशाही के सभी गुण विद्यमान थे–केवल नारीत्व को छोड़कर अ इसी कारण मर्दों की दृष्टि में उसके सब गुण व्यर्थ थे।"**

इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों में रजिया सबसे योग्य थी। वह कर्मठ थी तथा सैन्य संचालन अ कूटनीति में प्रवीण थी। अमीरों को नियंत्रित करके उसने ताज की शक्ति को निरंकुश बनाने का प्रयत्न किया मिनहाज के अनुसार उसका स्त्री होना उसकी एकमात्र दुर्बलता थी जिसका कोई उपचार नहीं था। अनेक विद्व ने मिनहाज के कथन को स्वीकार किया है लेकिन अधिकांश विद्वानों ने इसे अस्वीकार कर दिया है। अगर तुर्क अमीरों का नियंत्रण स्वीकार करके नाममात्र की सुल्तान बनती तो संभवत: सिंहासन पर बनी रह सकती थी।

पतन का कारण—तुर्क गुलाम अमीरों (चहल-गनी) की महत्त्वाकांक्षा रजिया के पतन का वास्तवि कारण बनी। सभी उच्च पदों पर इल्तुतमिश के शासनकाल में उनका अधिकार हो गया था। अब वे एकाधिकार को बनाये रखने के लिए कृतसंकल्प थे। वे सुल्तान का चयन करने तथा उसे नाममात्र के सिंहासन पर बैठाने का अधिकार पाना चाहते थे। अत: उनका संघर्ष रजिया से अनिवार्य था। वे इस संघर्ष विजयी हुए। बहरामशाह केवल नाममात्र का सुल्तान था। समस्त वास्तविक सत्ता तुर्क अमीरों के हाथ में थी।

बलबन (1265–1287 ई०) (Balban : 1265–1287 A.D.)

प्रारंभिक जीवन— बलबन इल्तुतमिश का गुलाम था। वह चालीस अमीरों के दल का एक कनि सदस्य था। इल्तुतमिश के समान ही वह इल्बारी तुर्क था। उसका पिता दस हजार परिवारों का मुखिया था। बचपन में मंगोल पकड़ ले गए थे और उसे बसरा के ख्वाजा जमालुद्दीन को गुलाम के रूप में बेच दिया 1232 ई० में जमालुद्दीन उसे दिल्ली लाया जहाँ उसने इल्तुतमिश को बेच दिया। बलबन बदसूरत था जमालुद्दीन ने उस पर अनेक प्रकार के अत्याचार किए थे, किन्तु वह सूरत से कुरुप होने के साथ यो लगनशील और अध्यवसायी था। इल्तुतमिश ने उसे अंतरंग सेवकों में नियुक्त किया और इसके बाद उस प्रतिभा से प्रभावित होकर उसको उच्च पद पर नियुक्ति किया। वह चालीस गुलामों के विशिष्ट वर्ग सम्मिलित हो गया। उसने इल्तुतमिश की निष्ठापूर्वक सेवा की। रजिया ने अमीर-ए-शिकार के पद पर उस नियुक्ति की, किन्तु रजिया के विरुद्ध अमीरों के षड्यंत्र में उसने अपने वर्ग का साथ दिया। बहरामशाह के अमीर-ए-अखूर के पद पर वह नियुक्त किया गया और रेवाड़ी तथा हाँसी की जागीरें उसे दी गयी। वास्तव बहरामशाह के राज्यारोहण के समय अमीरों ने पदों तथा जागीरों का जो बटवारा किया था, उसमें बलबन

यह भाग मिला था। अलाउद्दीन मसूदशाह के राज्यारोहण के समय अमीर-ए-हाजिब के पद पर वह नियुक्त किया गया। 1246 ई० में उसने मंगोलों के विरुद्ध युद्ध में अपनी योग्यता प्रदर्शित की। इससे दरबार में उसकी शक्ति बढ़ गई और चालीस अमीरों के दल में भी उसके प्रभाव में वृद्धि हुई। 1248 ई० में उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई कि उसने अलाउद्दीन मसूद को सिंहासन से हटाकर इल्तुतमिश के एक अन्य पुत्र नासिरूद्दीन महमूद को सुल्तान पद दे दिया। इल्तुतमिश की एक विधवा से बलबन ने विवाह करके राजवंश से अपना संबंध बना लिया। 1249 ई० में अपनी पुत्री का विवाह उसने सुल्तान के साथ कर दिया। इसी समय 1249 ई० में सुल्तान नासिरूद्दीन ने नायब-ए-मुमालिकात पद को पुन: निर्मित किया और उस पर बलबन को नियुक्त करके उसे उलूगखाँ की उपाधि दी।

बलबन सुल्तान के रूप में (1265–1287 ई०)—नासिरुद्दीन की मृत्यु होने पर 1265 में बलबन का राज्यारोहण हुआ। बलबन के हाथ में प्रधानमंत्री की हैसियत से प्रशासन की संपूर्ण संचालन शक्ति थी और वह वास्तव में सुल्तान की शक्तियों का ही प्रयोग करता था।

बलबन का राजत्व सिद्धान्त—जिस समय बलबन गद्दी पर बैठा उस समय तक ताज की प्रतिष्ठा में अत्यधिक कमी आ चुकी थी और जनता के हृदय से सुल्तान का भय जाता रहा था। एक लम्बे समय तक सुल्तान के साथ कार्य करने के कारण बलबन यह भली भांति समझ गया था कि अमीरों की शक्ति को नष्ट किये बिना न तो वह सुल्तान के रूप में राजशक्ति का उपयोग ही कर सकता है और न ही अपनी प्रजा का सम्मान पात्र बन सकता है। बलबन ने शीघ्र ही परिस्थितियों को भली भांति समझ कर राजत्व सम्बन्धी एक कठोर सिद्धान्त बनाया जोकि **रक्त एवं लौह की नीति** के नाम से जाना जाता है।

(1) राजा की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त—जनता में राजा की शक्ति और प्रतिष्ठा का आंतक जमाने के दृष्टिकोण से बलबन ने राजा के दैवी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसने स्पष्ट रूप से कहा, "राजा का हृदय ईश्वरीय कृपा का विशेष भंडार होता है और इस दृष्टि से कोई भी मनुष्य उसकी समानता नहीं कर सकता।" सुल्तान के पद की गरिमा में वृद्धि करने के दृष्टिकोण से उसने अपने चारों ओर एक भय और आंतक का वातावरण बनाना प्रारम्भ कर दिया और एक विशेष प्रकार की गम्भीरता धारण कर ली। इस डर से कि कहीं जनता उसे अपने में से ही एक न मानने लगें, बलबन ने स्वयं को पौराणिक तुर्की वीर अफरासियाब का वंशज बताया। उसने साधारण लोगों से बातचीत बन्द कर दी तथा निम्न श्रेणी के अमीरों से मिलना एवं वार्तालाप बंद कर दिया। सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि करने के दृष्टिकोण से ही उसने दरबार में व्यवहार के कुछ नियम बनाये तथा दरबार में हंसने एवं मुस्कराने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। दरबारियों के लिये एक विशेष पोशाक निर्धारित कर दी गई और दरबार की रस्मों को इरानी आदर्श पर ढालने का प्रयत्न किया। इस प्रकार बलबन ने दरबारियों तथा जनता के मन में सुल्तान का खौफ बिठा दिया।

(2) चालीस के दल का नाश—इल्तुतमिश ने अपनी शक्ति में वृद्धि करने के दृष्टिकोण से इस दल का गठन किया था। इल्तुतमिश तो इस दल की महत्वाकांक्षाओं पर नियन्त्रण रखकर इसको अपने काबू में रख पाने में सफल हुआ, परन्तु उसके उत्तराधिकारियों के समय में यह दल अत्यधिक शक्तिशाली हो गया। बलबन स्वयं भी इस दल का सदस्य रह चुका था एवं इसकी वास्तविक शक्ति से परिचित था। इसलिये सिंहासनारूढ़ होते ही बलबन ने इस दल को समूल नष्ट करने का दृढ़ संकल्प किया। सबसे पहले उसने निम्न श्रेणी के तुर्कों को राज्य एवं प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करना प्रारम्भ किया दूसरे इसकी सामाजिक प्रतिष्ठा पर आघात करने के लिये इनको छोटे-छोटे अपराधों पर कठोर दंड देना तथा जनता के समक्ष अपमानित करना प्रारम्भ किया। चालीस के दल के नाश में बलबन को अत्यधिक सफलता मिली तथा इस दल के अधिकांश सदस्य या तो मर गये या महत्वहीन हो गये।

(3) गुप्तचर विभाग का गठन—अपने आदेशों के उचित पालन एवं अपनी निरंकुश सत्ता की स्थापना के लिये बलबन एक सतर्क एवं स्वामिभक्त गुप्तचर विभाग को अत्यधिक आवश्यक मानता था। वह यह जानता

था कि राज्य में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना करने के लिये राज्य में घटने वाली प्रत्येक घटना तथा अमीरों के कार्य-कलापों के सम्बन्ध में सही एवं समय से सूचना मिलना आवश्यक है। इसलिये उसने गुप्तचर विभाग के संगठन में अत्यधिक समय एवं धन लगाया। उसने प्रत्येक सरकारी विभाग, प्रांत एवं जिलों तक में भी संवाददाता (बरीद) नियुक्त किये, जिन्हें उसने अच्छे वेतन दिये और अपने स्वंय के नियन्त्रण में रक्खा। यह गुप्त संवाददाता राज्य में घटने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं का समाचार प्रतिदिन सुल्तान को भेजते थे। विभिन्न सूबेदारों की मनमानियों तथा सरकारी अधिकारियों की आकांक्षाओं के सम्बन्ध में बलबन को समाचार इन्हीं गुप्त संवाददाताओं से प्राप्त होते थे जिनसे बलबन को उन्हें समय से दबा पाने में अत्यधिक सफलता मिली। वास्तव में सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि करने तथा निरंकुश सत्ता की स्थापना की सफलता में बलबन के इस कुशल गुप्तचर विभाग की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण थी।

(4) सेना का पुनर्गठन—बलबन ने सेना के पुनर्गठन की ओर भी ध्यान दिया क्योंकि वह जानता था कि उसकी निरंकुशता एक शक्तिशाली सेना के आधारस्तम्भ पर खड़ी रह सकती थी। बलबन ने जागीरदारी प्रथा को समाप्त करके सेना के अधिकारियों को जागीर के स्थान पर नगद वेतन देने की शुरूआत की। तुर्की सल्तनत की स्थापना के समय से ही तुर्की सिपाहियों को सैनिक सेवा के बदले में नगद वेतन के स्थान पर जागीर देने की प्रथा थी। धीरे-धीरे ये जागीरें पैतृक हो गई और उन व्यक्तियों को उत्तराधिकार में प्राप्त होती रही जो राज्य की सैनिक सेवा नहीं भी करते थे।। ऐसे लोगों से जागीरें वापिस ले ली गई; जो लोग शारीरिक रूप से सक्षम थे उन्हें सेना में भर्ती कर लिया गया, परन्तु केन्द्रीय सरकार उनकी जागीरों में कर वसूली करेगी और उसी में से उन लोगों को भी वेतन प्रदान किया जाएगा। यद्यपि बलबन के समय में सैनिक संगठन में कोई मूलभूत परिवर्तन तो नहीं हुए परन्तु जो भी सुधार हुए उनसे सैनिकों की युद्ध क्षमता में अत्यधिक वृद्धि हुई।

(5) विद्रोहों का दमन—बलबन का अगला कार्य था देश के विभिन्न भागों में होने वाले विद्रोहों का दमन। नासिरूद्दीन महमूद के शासन के उत्तरार्द्ध में ही जीवन एवं सम्पत्ति दोनों असुरक्षित हो गये थे, डाकुओं ने आतंक मचा रक्खा था तथा दिल्ली के निकटवर्ती घने जंगल लूट-मार करने वालों के शरण-स्थल बन गये थे। इन विद्रोहों का दमन करना बलबन के लिये अपनी जनता के कल्याण तथा ताज की प्रतिष्ठा की स्थापना दोनों ही दृष्टिकोण से अत्यधिक आवश्यक था। इन विद्रोहों का दमन करने के लिये बलबन ने नवगठित सेना का प्रयोग किया। वनों को साफ कराया गया और दिल्ली के निकटवर्ती मुख्य मार्गों के डाकुओं का सफाया करने तथा इनके छिपने के स्थान की खत्म करने का कार्य किया गया। दिल्ली के चारों कोनों पर सैनिक चौकियाँ बना दी गई। दिल्ली के बाद दोआब और अवध में सुरक्षा और व्यवस्था की स्थापना की ओर ध्यान दिया गया। विद्रोहियों से निपटने के लिये सम्पूर्ण क्षेत्र को बहुत सारे सैनिक क्षेत्रों में विभाजित कर दिया और प्रत्येक क्षेत्र को एक अधिकारी के नियन्त्रण में सौप दिया। बलबन की इस व्यवस्था से शीघ्र ही बरन, अमरोहा, सम्भल और कटेहर के इक्ता सुरक्षित हो गये और सदा के लिये उपद्रवों से मुक्त हो गये।

(6) आन्तरिक संगठन—ताज की निरंकुश सत्ता की स्थापना के दृष्टिकोण से बलवन अपने साम्राज्य को सुसंगठित करने को भी आवश्यक मानता था। बलबन की प्रशासनिक कार्यों में व्यस्तता का लाभ उठाकर अनेक सूबेदारों ने विद्रोह कर दिया था। लखनौती के सूबेदार तुगरिल ने विद्रोह कर दिया था। काफी संघर्ष के बाद तुगरिल को बंदी बनाया जा सका। तुगरिल का वध कर दिया गया और उसके समर्थको को भी कठोर यातनायें दी गई। विद्रोहियों की लाशें अनेक स्थानों पर टांग दी गई जिससे जनता के हृदय में बलबन की सत्ता का खौफ बैठ गया और सल्तनत के हर कोने में शांति एवं व्यवस्था दिखाई देने लगी।

(7) मंगोल आक्रमणों से सुरक्षा—नवस्थापित दिल्ली सल्तनत को उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर निरन्तर मंगोल आक्रमणों का भय बना रहता था। बलबन ने मंगोल आक्रमण से निपटने के लिये एक सुनियोजित नीति अपनाई। मंगोल आक्रमण से सुरक्षा के दृष्टिकोण से उसने उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त की सुदृढ़ किलाबन्दी की तथा मुल्तान और दीपालपुर के सीमावर्ती क्षेत्रों को लाहौर के साथ मिला दिया। मंगोलो के

आक्रमणों को रोकने के लिये बलबन ने इतने महत्वपूर्ण प्रबन्ध किये कि केवल उसके शासन काल में ही नहीं वरन् आगे आने वाले समय में भी मंगोल आसानी से दिल्ली सल्तनत पर आक्रमण करने का विचार न कर सके।

(8) बलबन का चरित्र एवं मूल्यांकन—बलबन की गणना दिल्ली सल्तनत के शक्तिशाली शासकों में की जाती है। दिल्ली सल्तनत को शक्तिशाली बनाने तथा सुल्तान के पद अथवा ताज की गिरती हुई प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना सम्बन्धी उसके प्रयास सराहनीय हैं। उसने 'लौह एवं रक्त' की नीति पर आधारित एक कठोर राजत्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा सल्तनत एवं सुल्तान की निरंकुशता के मार्ग की सभी चुनौतियों का साहस एवं दृढ़ता से मुकाबला किया। उसने अपने उद्देश्यों की पूर्ति में साधन की अपेक्षा साध्य को अधिक महत्वपूर्ण समझा।

बलबन विद्या तथा शिक्षा का भी पोषक था। उसका दरबार इस्लामी विद्या तथा संस्कृति का केन्द्र था। उसके दरबार में अमीर खुसरो तथा अमीर हसन जैसी साहित्यिक प्रतिभायें रहती थी। उसने अपनी दूरदर्शितापूर्ण नीतियों के माध्यम से सल्तनत में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना की, उसको स्थायित्व प्रदान किया तथा इल्तुतमिश के अधूरे कार्य को पूरा किया।

खिलजी वंश (Khilji Dynasty) (1296–1320 ई०)

दास वंश के अंतिम सुल्तान अल्पवयस्क कैमुर्स का वध कराकर 1290 ई० में जलालुद्दीन ने दिल्ली सल्तनत की गद्दी हस्तगत की एवं एक नये वंश खिल्जी वंश की नींव डाली। जलालुद्दीन जिस समय गद्दी पर बैठा उसकी अवस्था 70 वर्ष की थी जिस कारण उसमें वृद्धावस्था की कुछ दुर्बलतायें विद्यमान थी। वह एक कोमल हृदय व्यक्ति था और किसी भी मुसलमान का रक्त बहाने से डरता था। उसकी इसी उदारता के कारण मलिक छज्जू और सिद्दी मौला के विद्रोह एवं संघर्ष हुए। जलालुद्दीन की दयालुता एवं ढुल-मुल व्यवहार के कारण कुछ अमीर उसे गद्दी के अयोग्य समझकर स्वयं गद्दी हड़पने के लिये षड्यन्त्र रचने लगे और उसकी इन्हीं नीतियों के कारण ही अन्ततः उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन को गद्दी प्राप्त करने में सफलता मिली।

अलाउद्दीन, जलालुद्दीन के भाई शिहाबुद्दीन का पुत्र था। उसका असली नाम अली गुरशप था। राज्यारोहण के समय उसने अलाउद्दीन की उपाधि धारण की। उसका जन्म 1266–67 ई० में हुआ था। जलालुद्दीन ने सिंहासन पर बैठने के बाद अमीर-ए-तुजुक के पद पर उसकी नियुक्ति कर दी थी। मलिक छज्जू द्वारा किये गए विद्रोह में उसने अपनी योग्यता तथा सैनिक प्रतिभा का प्रमाण दिया। सुल्तान जलालुद्दीन ने प्रभावित होकर उसे कड़ा-मानिकपुर का सूबेदार नियुक्त कर दिया। यहाँ के स्वतंत्र और विद्रोहपूर्ण वातावरण में उसे अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी करने का अवसर मिला। मलिक छज्जू के अनुयायी और असंतुष्ट खिलजी सैनिक धन और पद की लालसा से प्रेरित होकर उसे दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे।

सावधानी से कार्य करना अलाउद्दीन की नीति थी ताकि वह अपनी शक्ति में वृद्धि कर सके और सुल्तान को किसी प्रकार का संदेह न हो। दिल्ली दरबार में उसका भाई उसके हितों की रक्षा करता था। उसने 1292 ई० में अलाउद्दीन को मालवा पर आक्रमण करने के लिए सुल्तान की अनुमति दिलवाई। भिलसा की सफलता ने अलाउद्दीन की आकांक्षा को बहुत अधिक बढ़ा दिया और गुप्त रूप से उसने देवगिरि पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

देवगिरि अभियान—देवगिरि अभियान अलाउद्दीन के साहस और कल्पनाशक्ति का प्रमाण है। देवगिरि की अपार संपत्ति के विषय में उसे भिलसा में जानकारी मिली थी और उसने देवगिरि के विरुद्ध अभियान छेड़ने का निश्चय किया। उसने सावधानीपूर्वक सुल्तान से यह तथ्य छिपाकर रखा। एक वर्ष तक तैयारी करने के उपरांत 1294 ई० में 8,000 चुने हुए घुड़सवारों के साथ वह दक्षिण के किये रवाना हुआ। उसने कड़ा के

अधिकारियों को सुल्तान को झूठे समाचार भेजने का आदेश दिया। वह अनजाने और दुष्कर मार्गों से देव की ओर गया और मार्ग में अफवाह फैला दी कि वह दिल्ली का एक असंतुष्ट सरदार है जो दक्षिण में नौ पाने के लिए राजमुंदरी जा रहा है। इससे मार्ग में वह प्रतिरोध से बच गया। जब वह अचानक देवगिरि की गया तब उसका वास्तविक उद्देश्य स्पष्ट हुआ। देवगिरि के यादव राजा रामचंद्रदेव का पुत्र सेना के साथ द गया हुआ था। उसने कुछ सेना एकत्रित कर आक्रमण का सामना किया लेकिन वह पराजित हो गया और उ आक्रमणकारी को धन देकर संधि करना उचित समझा। लेकिन उसका पुत्र शंकरदेव धन देने से पूर्व आ और उसने संधि का विरोध किया। शंकरदेव को भी अलाउद्दीन ने पराजित कर दिया और अब यादव राज उसने कठोर शर्तें रख दी। उसे अपार धन प्राप्त हुआ जो उसने कभी सोचा भी नहीं था।

देवगिरी की विजय से अलाद्दीन की महत्वाकांक्षाओं और हौंसलों में वृद्धि हो गई थी। उसने मन में कि का तख्त हथियाने की योजना बना ली थी। उसने जलालुद्दीन खिल्जी की हत्या की योजना बनाई कि जलालुद्दीन बिल्कुल बेखबर रहा। षड्यन्त्र के माध्यम से अलाउद्दीन ने 20 जुलाई 1296 को जलालुद्दीन हत्या करवा दी और स्वंय सुल्तान बन बैठा।

दिल्ली पर अधिकार--अलाउद्दीन को मालूम था कि जब तक वह दिल्ली पर अधिकार करके विधि राज्याभिषेक नहीं करायेगा, उसकी स्थिति सुरक्षित नहीं रहेगी। दिल्ली पर अधिकार करने में अनेक कठिन थीं—जैसे—

(1) वह अपहरणकर्ता था और उसने सुल्तान की हत्या की थी जिस कारण उसके प्रति व्यापक रू रोष एवं घृणा फैल गई थी।

(2) उसे सुल्तान मानने को दिल्ली के जलाली सरदार सहमत नहीं थे और युद्ध करने को तैया

(3) जलालुद्दीन का पुत्र अर्कली खाँ उसका घोर विरोधी था। वह योग्य सेनापति और राज्य उत्तराधिकारी था और उन दिनों मुल्तान का सूबेदार था। उसके सिंहासन पर आसीन होने की भी सम्भावना

अलाउद्दीन ने धैर्य से कार्य लिया। जलालुद्दीन की विधवा मलिकाजहाँ ने छोटे पुत्र कद्र खाँ को सिंह पर बिठा दिया। इससे अलाउद्दीन का काम आसान हो गया क्योंकि इससे जलाली सरदारों में फूट पैदा हुं और अर्कली खाँ उदासीन होकर मुल्तान में ही रुका रहा। अलाउद्दीन इन बातों से उत्साहित होकर दिल्ल लिए रवाना हो गया। जनता को अपने पक्ष में करने के लिए मार्ग में वह स्वर्ण मुद्राओं को बिखेरता हुआ अलाउद्दीन ने दिल्ली के अनेक जलाली सरदारों को धन देकर अपने साथ मिला लिया। दिल्ली से जो सेन रोकने के लिए भेजी गई थी, वह भी अलाउद्दीन से मिल गई। अर्कली खाँ ऐसे संकट में दिल्ली नहीं आया में अलाउद्दीन की सेना से कद्र खाँ की सेना का युद्ध हुआ जिसमें अलाउद्दीन की जीत हुई। दिल्ली में पूरे के साथ 20 अक्टूबर, 1296 ई० को वह सिंहासन पर आसीन हुआ। जिन जलाली सरदारों ने धन प्राप्त उसको समर्थन दिया था उन विश्वासघातियों को उसने दंड दिया। कुछ सरदारों की संपत्ति भी जब्त क जबकि कुछ सरदारों को प्राण दंड तक दिया गया।

अलाउद्दीन खिलजी का राजत्व सिद्धांत

सैनिक शक्ति से अलाउद्दीन सिंहासन पर बैठा था। राजपद के लिए अमीरों द्वारा उसका निर्वाचन किया गया था। वह राजपद का वैध उत्तराधिकारी भी नहीं था। उलेमा वर्ग ने भी उसके राज्यारोहण में भूमिका नहीं निभाई थी। उसने सिंहासन पर सुल्तान की हत्या करके विद्रोह द्वारा अधिकार प्राप्त किया था। सेना ही उसकी शक्ति का आधार थी। उसने इसी सैनिक शक्ति द्वारा विरोधियों को नष्ट किया और अपना सुरक्षित रखा। अत: उसकी सत्ता शुरु से ही निरंकुश थी, इसका अवलंब सेना थी अत: इसे निरंकुश सैनिक कहा गया है।

सुल्तान पद का मान—सुल्तान पद का मान बलबन की मृत्यु के उपरान्त उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों के समय में नष्ट हो गया था और अनेक अमीर फिर से शक्तिशाली हो गये थे। नाजिमुद्दीन और कच्छन ऐसे ही अमीरों में से थे जो राजसत्ता पर अधिकार करना चाहते थे। अलाउद्दीन ने सुल्तान पद की प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित किया। बलबन की परंपराओं को उसने फिर इस प्रकार स्थापित किया कि सरदारों को आज्ञाकारी और नियंत्रित रखा जा सके।

दैवी सिद्धांत—राजत्व की धारणा के बारे में अलाउद्दीन ने बलबन के विचारों का अनुपालन किया। बलबन के समान वह राजत्व के दैवी सिद्धांत को मानने वाला था। उसका विश्वास था कि राजा सामान्य मानव से अलग उच्च और दैवी शक्ति से संपन्न होता है और राजा का कोई सगा सम्बन्धी नही होता है। अत: राजा की इच्छा ही कानून होती है और उसको मानने के लिए प्रजा बाध्य होती है।

अमीरों पर नियंत्रण—सुल्तान की सत्ता को निरापद बनाने के लिए यह आवश्यक था कि सुल्तान की सत्ता पर अंकुश लगाने वाली बाधाओं को दूर किया जाए। अमीर और उलेमा वर्ग ये बाधाएँ थी। जलाली सरदारों को अलाउद्दीन ने पूरी तरह समाप्त कर दिया था। उसने जिन सरदारों को नियुक्त किया उनको नियंत्रण में रखने के लिए कठोर नियम बनाए और उन नियमों का पालन न करने वालों को कठोर दंड दिए।

उलेमा वर्ग की उपेक्षा—उलेमा वर्ग सुल्तान की निरंकुशता की दूसरा बाधा था, जो दिल्ली के सुल्तानों पर हावी रहा था। उलेमा वर्ग को भी अलाउद्दीन ने इतना दुर्बल और प्रभावहीन कर दिया कि उसकी नीतियों पर वे असर नहीं डाल सकते थे। उसने माफी की जमीनों पर लगान लगा दिया तथा वे सब कर इस वर्ग पर थोप दिए जो सामान्य वर्ग के लोगों पर लगते थे। इससे आर्थिक दृष्टि से यह वर्ग दुर्बल हो गया। इस प्रकार अलाउद्दीन शासन पर धर्म का नियंत्रण समाप्त करने वाला पहला सुल्तान बना।

वंशवाद की उपेक्षा—अलाउद्दीन खिलजी के राजत्व सिद्धांत में वंशवाद का कोई स्थान नहीं था। बलबन की उच्च वंश की धारणा को उसने नकार दिया। बलबन एक गुलाम था, उसके लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह स्वयं को अन्य गुलामों से पृथक रखे। इसलिए उसने काल्पनिक वंशों से अपना संबंध जोड़ा, किन्तु अलाउद्दीन ने ऐसा नहीं किया। उसका राजत्व शक्ति के सिद्धांत पर आधारित था।

खलीफा को निष्प्रभावी करना—अपनी सत्ता को प्रभावी करने के लिए अलाउद्दीन ने खलीफा के नाम का सहारा नहीं लिया। उसने उलेमा वर्ग की सत्ता को जिस प्रकार अस्वीकार कर दिया था, उसी प्रकार खलीफा की सत्ता को भी उसने नकार दिया। खलीफा से अधिकार-पत्र प्राप्त करने के लिए उसने कभी प्रार्थना नहीं की, यद्यपि उसने स्वयं को खलीफा का नायब घोषित किया।

सैनिकवाद—अलाउद्दीन की शक्ति का आधार सेना थी। उसने सेना के बल पर ही राजसत्ता प्राप्त की थी। सेना की शक्ति के कारण वह खलीफा, शरीयत, उलेमा और अमीर सबकी उपेक्षा करने में सफल हुआ था। उसने राज्य की सर्वोच्चता सेना की शक्ति द्वारा ही स्थापित की थी। स्थायी सेना की उसने व्यवस्था की और अमीरों को सेना रखने का अधिकार नहीं दिया। अत: उसके राज्य को सैनिक तंत्र कहा जाता था। उसके राजत्व के मुख्य आधार सैनिकवाद और निरंकुशता थे।

अलाउद्दीन के सैनिक सुधार—अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी एवं सामाज्यवादी सुल्तान था। वह सेना के महत्व को समझता था, इसलिये उसने सेना सम्बन्धी महत्वपूर्ण सुधार किये। वह मध्यकाल का प्रथम सुल्तान था जिसने सेना में सुधारों की आवश्यकता को समझा। इसका प्रमुख कारण था कि मध्यकालीन राजत्व सिद्धान्त आधारित ही शक्ति एवं सेना पर था। दूसरी बात, मंगोलो के सतत् आक्रमणों से बचने के लिये भी एक सुसंगठित सेना की आवश्यकता थी। तीसरी बात, रणथम्भौर एवं चितौड़ में उसकी सेना द्वारा सहे गये कष्टों और पूर्व में मलिक जूना के अभियान की असफलता ने अलाउद्दीन के मस्तिष्क में यह स्पष्ट कर दिया था कि सेना के लिये संगठन एवं सुधारों की अत्यधिक आवश्यकता है। इन्हीं कारणों से अलाउद्दीन ने सुधारों के माध्यम से सैनिक संगठन में आमूल-चूल परिवर्तन किये।

स्थायी सेना का निर्माण—अलाउद्दीन प्रथम सुल्तान था जिसने एक स्थायी सेना का गठन किया सदैव राजधानी से सेवा के लिये तत्पर रहती थी। अब पहले के सुल्तानों के समान न तो केन्द्र को जागीर की सेना पर निर्भर रहना पड़ता था और न ही एक युद्ध की समाप्ति पर सेना को भंग किया जाता था। अलाउ के पास एक विशाल सेना थी जिसमें 4,75,000 अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित घुड़सवार थे।

घोड़ों पर दाग लगाने की प्रथा—अलाउद्दीन ने सेना से सम्बन्धित विभिन्न भ्रष्ट प्रथाओं को भी स किया। उसने घोड़ों पर दाग लगाने तथा सैनिकों के हुलिया लिखे जाने की प्रथा का प्रारम्भ कि दीवान-ए-अर्ज एक रजिस्टर रखता था जिसमें सैनिकों का हुलिया लिखा होता था। समय-समय पर सेन निरीक्षण होता था तथा सैनिकों के घोडो और अस्त्रों की बारीकी से जांच की जाती थी जिससे किसी भी प्र से राज्य को धोखा न दे सके। यह जांच का कार्य कई-कई दिन चलता था और बहुधा यह कार्य f महत्वपूर्ण अभियान में सैनिकों को भेजे जाने के पूर्व होता था।

सेना के विभिन्न अंग—अलाउद्दीन की सेना के प्रमुख निम्न तीन अंग थे—पहली श्रेणी में अ सुल्तान के अंगरक्षक, जिन्हें जादांर कहा जाता था। यह स्थायी सेवा में रहते थे। तथा सुल्तान के सीधे नि में थे। दूसरी श्रेणी में घुडसवार और पैदल सैनिक थे जो राज्य की स्थायी सेना के अंग थे। तीसरी श्रे विशेष रूप से भर्ती किये जाने वाले सैनिक थे, जिनकी भर्ती युद्ध के समय कर ली जाती थी। इसमें हिन्दू मुसलमान दोनों ही होते थे।

अलाउद्दीन की सेना तुर्की पद्धति पर आधारित थी और उसके विभिन्न वर्गीकरण दशमलव पद्धति आधारित थे। 10 घुड़सवारों के ऊपर एक सरखैल, 10 सरखैलों के ऊपर एक सिपहसालार, 10 सिपहस पर एक अमीर, 10 अमीरों पर एक मालिक तथा 10 मालिको पर एक खान होता था।

सैनिकों की सीधी नियुक्ति की जाती थी और उन्हें राजकोष से नकद वेतन प्रदान किया जाता था। सैनिक को 234 टंका प्रतिवर्ष मिलता था, जिसमें उसे एक घोड़ा भी रखना होता था। एक अतिरिक्त घोड़ा वाले सैनिक को 78 टंका और दिया जाता था।

किलों कि व्यवस्था—अलाउद्दीन राज्य की सुरक्षा में किलों के महत्व को भी भली भांति जानत सैन्य अभियानों में किलों की भूमिका महत्वपूर्ण थी तथा सैन्यदलों को एकत्रित करने के लिये किले चौ रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते थे। किले सैनिकों के आवास के रूप में भी इस्तेमा थे। मंगोल आक्रमणों के विरूद्ध सुरक्षा की दृष्टि से भी किलों का अत्यधिक महत्व था। समय-समय प वाले मंगोलों के आक्रमणों से सुरक्षा के लिये दिल्ली के सुल्तान सीमान्त प्रदेशों के किलों के जीर्णो साथ-साथ नये किलों का भी निर्माण कराते थे। अलाउद्दीन से पहले बलवन ने उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्र अनेक किलों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार कराया। 1303 ई० में तुगरिल के आक्रमण के बाद अलाउद्द भी किलों का महत्व समझ में आया। उसने पुराने किलों की मरम्मत तथा सामरिक दृष्टिकोण से मह स्थानों पर नये किलों के निर्माण के आदेश दिये। इन किलों पर अनुभवी सेनापति नियुक्त किये जाते अस्त्र शस्त्रों के साथ-साथ सैनिकों के लिये पर्याप्त भोजन सामग्री भी रक्खी जाती थी।

इस प्रकार अलाउद्दीन ने सैनिक संगठन में विभिन्न महत्वपूर्ण सुधार किये जिनका पालन बाद के वाले मुगल बादशाहों तक ने किया। इस सैनिक सुधारों से अलाउद्दीन की सैन्य क्षमता सुदृढ़ हुई जिसक उसे अपने साम्राजयवादी योजनाओं के कार्यान्वयन में मिला।

खिलजी साम्राज्यवाद (Khilji Imperialism)

उत्तर भारत की विजय—साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल महत्त्व रखता है। उसने उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत में योजनाबद्ध ढंग से अभियान चलाए और विज की। उसकी साम्राज्यवादी नीति राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक आधार पर निर्भर थी। उसने कभी घो

किया कि उसका लक्ष्य इस्लाम का प्रसार करना है। अत: पूर्ववर्ती सुल्तानों से अलाउद्दीन के विजय अभियान किसी हद तक भिन्न हैं।

महत्त्वाकांक्षाएँ—अलाउद्दीन परम महत्त्वाकांक्षी शासक था। शासन के प्रथम तीन वर्षों में उसने अनेक सफलताएँ प्राप्त की, अमीर उसके नियंत्रण में रहे और मंगोलों को उसने भगा दिया था। उसका राजकोष भरा हुआ रहता था। इससे उसकी महत्त्वाकांक्षा में वृद्धि हुई। वह सिकंदर के समान विश्व विजय करने का उत्सुक था और पैगम्बर मुहम्मद के समान नवीन धर्म की स्थापना करना उसकी कामना थी। उसने इन योजनाओं के विषय में दिल्ली के कोतवाल अलाउल्मुल्क से परामर्श किया। कोतवाल ने परामर्श दिया कि पैगम्बरों का काम धर्म स्थापना का है, अत: यह विचार सुल्तान को छोड़ देना चाहिए। जहाँ तक विश्व विजय का प्रश्न है, वह उद्देश्य उचित है। लेकिन हिंदुस्तान के उन प्रदेशों को सुल्तान को पहले जीतना चाहिए जो साम्राज्य में नहीं हैं। इस परामर्श को अलाउद्दीन ने मान लिया; फिर भी उसने मुद्रा में स्वयं को 'सिकंदर द्वितीय' घोषित किया।

गुजरात की विजय—अलाउद्दीन ने अर्कली खाँ की हार के बाद उलूग खाँ को सिंध और मुल्तान का शासक नियुक्त किया था। अब सुल्तान ने गुजरात को जीतने का निर्णय लिया। उसने गुजरात पर आक्रमण करने हेतु नुसरत खाँ के नेतृत्व में सेना भेजी। उलुग खाँ ने भी सिंध की ओर से गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात का राजा कर्ण बघेला तुर्क सेनाओं का मुकाबला नहीं कर सका। उसकी रानी कमलावती को आक्रमणकारियों ने बंदी बना लिया।

रणथम्भौर की विजय—गुजरात विजय के पश्चात राजस्थान तीन ओर से घिर गया था और उस पर विजय पाना सुगम हो गया था। सबसे पहले सुल्तान ने रणथम्भौर को जीतने का निर्णय किया। इसके दो कारण थे-रणथम्भौर दिल्ली सल्तनत का भाग रह चुका था और नव-मुसलमानों (मंगोलों) के विद्रोही नेताओं को वहाँ के चौहान राजा हम्मीर देव ने शरण दी थी। इन नेताओं को सुल्तान दंड देना चाहता था किंतु उन्हें समर्पित करने से हम्मीर देव ने मना कर दिया। उलुग खाँ और नुसरत खाँ को सुल्तान ने रणथम्भौर जीतने के लिए भेजा लेकिन वे पराजित हो गये। नुसरत खाँ घायल हो गया और बाद में मर गया। उलुग खाँ वापस लौट गया। ऐसी स्थिति में सुलतान स्वयं रणथम्भौर पहुँचा, किन्तु एक वर्ष घेरा डाले रहने के पश्चात भी सफल नहीं हुआ। अंत में हम्मीर देव के मंत्री को सुल्तान ने प्रलोभन देकर अपने पक्ष में कर लिया। इस प्रकार सुल्तान ने रणथम्भौर के किले पर विश्वासघात और कपट से अधिकार कर लिया। राजपूत स्त्रियों ने जौहर किया और युद्ध करते हुए हम्मीर देव तथा उसके राजपूत सैनिक मारे गये। सुल्तान ने उलुग खाँ को रणथम्भौर का शासक नियुक्त किया।

मेवाड़ पर विजय—कहा जाता है कि मेवाड़ के शासक राणा रतनसिंह की रानी पद्मिनी को अलाउद्दीन प्राप्त करना चाहता था जिसके अनुपम सौंदर्य की प्रशंसा उसने सुनी थी। सुल्तान 1303 ई० में मेवाड़ की विजय के लिए स्वयं गया और उसने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ के किले पर घेरा डाल दिया। सुल्तान पाँच महीने के घेरे के बाद भी किले पर अधिकार स्थापित नहीं कर सका। राजपूतों ने कड़ा प्रतिरोध किया लेकिन उनका प्रतिरोध सुल्तान की विशाल सेना के सामने असफल रहा। अंत में राजपूत महिलाओं ने जौहर किया और राजा रतनसिंह और उसके राजपूत सैनिक युद्ध करते हुए वीर गति को प्राप्त हो गये। राजपूतों की वीरता से सुल्तान इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने नरसंहार का ऐलान कर दिया। उसने चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रखा और अपने पुत्र खिज्र खाँ को वहाँ का शासक नियुक्त कर दिया। राजपूतों ने इसके बाद भी संघर्ष जारी रखा। 1311 ई० में सुल्तान ने मालदेव को चित्तौड़ का शासक नियुक्त किया लेकिन वह भी राजपूतों पर नियंत्रण करने में असफल रहा। राजपूतों ने सुल्तान की मृत्यु के बाद चित्तौड़ पर पुन: अधिकार कर लिया।

मारवाड़—राजस्थान में अब केवल मारवाड़ पर विजय रह गई थी। सिवाना इस राज्य का सबसे निरापद दुर्ग था। सिवाना की विजय का वर्णन अमीर खुसरो ने खजाइन-उल-फुतूह में नहीं किया है। लेकिन देवलरानी-खिज्र खाँ में उसने माना है कि सिवाना पर विजय पाने के लिए दिल्ली की सेना पाँच-छ: वर्षों तक

घेरा डाले पड़ी रही। सिवाना जोधपुर के पश्चिम में था। यहाँ का राजपूत राजा शक्तिशाली और वीर था। ल समय तक घेरा चलता रहा किन्तु सफलता दूर ही रही। 1309 ई० में सुल्तान स्वयं सिवाना पहुँचा और युद्ध पूरी तैयारी की। युद्ध का उसने स्वयं नेतृत्व किया। अंत में राजा शीतलदेव युद्ध करते हुए मारा गया और सुल ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसने कमालुद्दीन गुर्ग को सिवाना का शासक नियुक्त किया (सितम्बर, 13 ई०)।

जालौर—अलाउद्दीन की अधीनता जालौर के राजपूत राजा कान्हणदेव ने 1305 ई० में स्वीकार कर किन्तु वह स्वयं को इसके बाद भी स्वतंत्र शासक समझता रहा और एक बार दरबार में उसने अलाउद्दीन लिए अपशब्द बोल दिये. सुल्तान उससे खिन्न हो गया और उसके विरुद्ध गुलेबहिस्त नामक खोजा के नेतृत्व सेना भेजी। प्रारंभ में कान्हणेदव को कुछ सफलता मिली लेकिन अंत में वह मारा गया। जालौर को सल्तनत मिला लिया गया। खुसरो और तारीख-ए-मुबारकशाही में कहा गया है कि कमालुद्दीन गुर्ग ने जालौर को ज था।

मालवा-खजाइन उल-फुतूह में अमीर खुसरो के एक उल्लेख से पता चलता है कि अनेक राज राजाओं ने चित्तौड़ के पतन के पश्चात् अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली थी। 1305 ई० में मार जीतने के लिए सुल्तान ने अईन-उल-मल्क मुल्तानी के नेतृत्व में सेना अभियान चलाया। मालवा का र महलकदेव पराजित होकर माण्डू के लिये भाग गया। माण्डू किले को अईन-उल-मुल्क ने घेर लिया। उसने किले पर विश्वासघातियों की सहायता से अधिकार कर लिया। राजा महलकदेव मारा गया। उज्जैन, ध चंदेरी पर भी इस विजय से खिलजियों का अधिकार हो गया। जालौर के कान्हणदेव ने भी आत्मसमर्पण दिया। सुल्तान ने अईन-उल-मुल्क को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया।

दक्षिण भारत की विजय—दक्षिण भारत की विजय की योजना बनाने और उसे सफलतापू क्रियान्वित करने वाला अलाउद्दीन खिलजी पहला सुल्तान था जिसे दक्षिण भारत की भौगोलिक स्थिति स्वयं का अनुभव था। वह देवगिरि तक गया जहाँ उसे अपार धन संपत्ति मिली। साथ ही उसे दक्षिण भारत समृद्धि का भी ज्ञान हो गया। वास्तव में, राज्य के राजनैतिक तथा सैनिक पक्ष के साथ अर्थिक पक्ष के महत्त्व समझने वाला अलाउद्दीन पहला सुल्तान था।

अलाउद्दीन के दक्षिण अभियानों के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

1. वह दक्षिण भारत के अपार धन को प्राप्त करने का इच्छुक था जहाँ तक कोई भी तुर्क सुल्तान अ तक नहीं पहुँचा था और जो सुरक्षित निरापद रूप से एकत्रित होता रहा था।

2. वह ऐसी स्थिति पैदा करना चाहता था कि दक्षिण भारत के शासक उसको सुनिश्चित धन राशि भे रहें। अत: वह स्थानीय राजाओं को राजा बनाये रखने का पक्षधर था।

3. वह दक्षिण भारत को अपने साम्राज्य में मिलाने का पक्षधर नहीं था क्योंकि सुल्तान को इ प्रशासनिक उत्तरदायित्व लेना पड़ता। अलाउद्दीन यह बात भली प्रकार जानता था कि दक्षिण भारत भौगोलि दृष्टि से एक दुर्गम क्षेत्र था और इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कठिन हो सकता था। उसकी नीति यथार्थवादी थ

देवगिरि पर विजय—सुल्तान ने 1303 ई० में मलिक काफूर को देवगिरि के विरुद्ध युद्ध का नेत करने के लिए भेजा क्योंकि तीन वर्षों से देवगिरि के शासक रामचंद्रदेव ने धन नहीं भेजा था। इसके अतिरि गुजरात के शासक कर्ण बघेला को रामचंद्रदेव ने शरण दी थी और कर्ण बघेला ने यादव राजा की सहायत बगलाना क्षेत्र में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। मलिक नायब (काफूर) को सुल्तान ने यह भी आज्ञा कि वह कर्ण बघेला की पुत्री देवलदेवी को दिल्ली भेजे क्योंकि उसकी माँ अपनी पुत्री से मिलना चाहती

रामचंद्रदेव के पुत्र शंकरदेव से देवलदेवी का विवाह निश्चित हो चुका था। सुल्तान ने देवगिरि के विरुद्ध और गुजरात के शासक अल्प खाँ के बगलाना पर आक्रमण करने का काफूर को आदेश दिया। जब काफूर की सहायता के लिए अल्प खाँ जा रहा था, देवलदेवी मार्ग में उसके हाथ पड़ गई। देवलदेवी को उसने दिल्ली भेज दिया जहाँ उसका विवाह सुल्तान ने खिज्र खाँ से करा दिया। रामचंद्रदेव ने मलिक काफूर के देवगिरि पहुँचने पर समर्पण कर दिया। उसे मलिक काफूर दिल्ली ले आया जहाँ सुल्तान को उसने अपार धन भेंट में दिया। सुल्तान ने उसे 'राय-रायन' की उपाधि से विभूषित किया और देवगिरि जाने की अनुमति दे दी।

तेलंगाना विजय—1308 ई० में मलिक काफूर ने तेलंगाना राज्य पर आक्रमण किया। उसने 1303 ई० में तेलंगाना विजय का प्रयत्न किया था किन्तु असफल रहा। उसने 5 वर्ष पश्चात् इसका प्रतिशोध लिया। वारंगल तेलंगाना की राजधानी थी और इस समय यहाँ का शासक प्रतापरुद्रदेव था। 1303 ई० में उसने दिल्ली की सेना को पराजित किया था। खुसरो के खजाइन-उल-फुतूह में इस अभियान का प्रामाणिक वर्णन मिलता है। खुसरो ने लिखा है कि मलिक काफूर सीधे वारंगल गया व वारंगल दुर्ग को घेर लिया। प्रतापरुद्रदेव ने रक्षात्मक युद्ध की नीति अपनायी और छापामार युद्ध आरंभ कर दिया। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि शत्रु धन लेकर वापस चला जायेगा, उसने संधि करना उचित समझा। बरनी ने लिखा है कि सोना, चाँदी, जवाहरात की संपत्ति को एक हजार ऊँटों पर लादकर काफूर दिल्ली लाया था। अलाउद्दीन इस विशाल संपत्ति को प्राप्त करके संतुष्ट हो गया। राजा ने प्रतिवर्ष खिराज देना स्वीकार कर लिया।

होयसल राज्य पर विजय— सुल्तान ने 1310 ई० में तीसरी बार मलिक काफूर को दक्षिण भेजा। देवगिरि के मार्ग से काफूर दक्षिण गया। बरनी ने लिखा है कि रामचंद्रदेव की मृत्यु हो चुकी थी और देवगिरि का राजा शंकर देव था। इसके विपरीत, खुसरो ने लिखा है कि इस समय रामचंद्रदेव जीवित था और दिल्ली की सेना को उसने सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की थीं। होयसल राज्य का राजा वीर बल्लाल इस समय पांड्य राज्य के गृहयुद्ध में वीर पांड्य की सहायता के लिए दक्षिण गया हुआ था। वह शत्रु के आक्रमण की सूचना प्राप्त होते ही द्वारसमुद्र आया जो उसकी राजधानी थी। उसने युद्ध किया किन्तु विजय की संभावना न देखकर उसने संधि कर ली। काफूर ने राजधानी को लूटा और मंदिरों को ध्वस्त कर दिया। होयसल शासक ने विशाल धनराशि दी और सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली।

अलाउद्दीन के राजस्व सुधार एवं आर्थिक नीति—अलाउद्दीन दिल्ली सल्तनत का पहला सुल्तान था जिसने राजस्व सम्बन्धी एवं आर्थिक सुधारों की ओर ध्यान दिया। वह यह भली भांति जानता था कि कोई भी महत्वाकांक्षी सुल्तान अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकाक्षाओं की पूर्ति तब तक नहीं कर सकता जब तक वह राजस्व व्यवस्था को ठोस आधार न प्रदान कर दे। यही कारण है कि अलाउद्दीन ने तत्कालीन राजस्व व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया, उनमें व्याप्त दोषों पर ध्यान दिया और तदनुसार निम्नलिखित सुधार किये—

(1) भूमि अनुदानों की समाप्ति—अलाउद्दीन का सर्वप्रथम कार्य था अमीरों, सरकारी अधिकारियों तथा अन्य व्यक्तियों को समय समय पर इनाम, अनुदान अथवा उपहार के रूप में दी गई भूमि को उनसे वापस लेना। धार्मिक व्यक्तियों, विद्वानों, राजकीय पदाधिकारियों एवं सैनिक अधिकारियों को इनामों, अनुदानों अथवा राजकीय सेवा के बदले धन के स्थान पर पर भूमि प्रदान करने की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है। धीरे-धीरे यह अनुदान पैतृक होते गये और एक ऐसा वर्ग पनपने लगा जो निकम्मा और आलसी होने के साथ-साथ राज्य के विरूद्ध षड्यन्त्रकारी गतिविधियों का भी केन्द्र बनने लगा। अलाउद्दीन ने दंड के रूप में अमीरों और मलिकों को उनकी सम्पत्ति और भूमि से वंचित किया। तत्पश्चात बाकी लोगों से भी इनाम, वक्फ आदि रूपों में दी गई भूमि को जब्त कर लिया तथा खालसा भूमि अथवा राज्य की भूमि के रूप में परिवर्तित कर दिया।

(2) हिन्दू पदाधिकारियों के विशेषाधिकारों की समाप्ति—सुल्तान का अगला कदम था मुकद्दम, खुत आदि पदाधिकारियों के विरूद्ध, जो अधिकांशत: हिन्दू थे। अलाउद्दीन उन हिन्दुओं को भी दबाकर रखना

चाहता था जिनके पास बहुत सम्पदा थी। सुल्तान के सलाहकारों ने यह सुझाव दिया कि इन स विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया जाये और हिन्दुओं के पास इतनी भी सम्पत्ति नहीं छोड़ी जाये कि वे इं पर बैठ सकें अथवा कोई भी शौक कर सकें। इस सलाह के अनुसार अलाउद्दीन ने इन सब हिन्दू पदाधिकारी के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये और हिन्दुओं की सम्पत्ति जब्त कर ली।

(3) कठोर कर प्रणाली का प्रारम्भ—राजस्व के क्षेत्र में अलाउद्दीन ने एक और कार्य किया और था भूमि राजस्व की दर में वृद्धि। भूमि की अपज का 50 प्रतिशत भू राजस्व अथवा राज्य कर निर्धारित किय

अलाउद्दीन ने दूसरा जो कार्य किया वह था गृहकर एवं चरागाह कर नामक दो नये कर लगाना। इ समय से जजिया कर भी लगाया जाता था, जो गैर-मुसलमानों (विशेषकर हिन्दुओं पर लगाया जाने वाला था तथा इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने पर इससे मुक्ति मिल जाती थी)।

अलाउद्दीन का राजस्व सुधारों के क्षेत्रों में तीसरा महत्वपूर्ण कार्य था भूमि की वास्तविक उपज के आ पर भूमि-राजस्व निर्धारित करना। बरनी ने 'बिस्वा' का उल्लेख किया, जिससे पता चलता है कि माप की समान प्रणाली का प्रारम्भ किया गया। इसके अनुसार गरीब और अमीर सभी की भूमि की माप कराई गई 50 प्रतिशत की दर से भूमि राजस्व निर्धारित किया गया।

इस प्रकार अलाउद्दीन ने राजस्व व्यवस्था के सम्बन्ध में विभिन्न सुधार किये तथा साथ ही अपने आदे को क्रियान्वित कराने के लिये उसने योग्य तथा ईमानदार पदाधिकारी भी नियुक्त किये। अलाउद्दीन को पय सफलता मिली और एक ओर राज्य की आय में वृद्धि हुई और दूसरी ओर उसके राज्य से विद्रोहों का न निशान समाप्त हो गया।

बाजार नियन्त्रण नीति—अलाउद्दीन एक साम्राज्यवादी सुल्तान था जिसे अपनी साम्राज्यवा आकांक्षाओं के पूर्ति एवं मंगोल आक्रमणों से सुरक्षा के लिये एक विशाल सेना की आवश्यकता थी। उसने अनुमान लगाया कि यदि सामान्य वेतन पर भी सैनिकों की नियुक्ति की जाए तो भी 5-6 वर्षों के भीतर उस राजकोष समाप्त हो जाएगा। इसी कारण उसने यह विचार किया कि सैनिकों के वेतन कम कर दिये जाये औ साथ ही रोजमर्रा की आवश्यकता की वस्तुओं के मूल्य भी कम कर दिये जायें तो सैनिकों को कोई आर्थि कठिनाई नहीं होगी। इसलिये सैनिकों के वेतन तथा दैनिक उपयोग की सामान्य वस्तुओं की कीमत दोनों में कमी कर दी गई। इसी उद्देश्य से विभिन्न आदेश पारित किये गये जोकि अलाउद्दीन की बाजार नियन्त्र प्रणाली के नाम से जाने जाते हैं।

अपनी बाजार नियन्त्रण प्रणाली में अलाउद्दीन ने दैनिक उपयोग की प्रत्येक वस्तु की सूची बनवाई औ उसके दाम निर्धारित किये। इस व्यवस्था के कार्यान्वयन में आ सकने वाली विभिन्न कठिनाईयों पर विचार कर उनके निराकरण के उपाय भी सोच लिये गये।

अनाज बाजार—अलाउद्दीन ने एक अन्न बाजार एवं राजकीय अन्न भंडारों की स्थापना की जहाँ लोग आवश्यक अन्न समाग्री प्राप्त कर सकते थे। अलाउद्दीन ने अपने आदेश के द्वारा अन्न के जो दाम निर्धारि किये थे उसके अनुसार व्यापारियों का लाभांश सीमित रहा गया। उन्हें नियमित रूप से अन्न लाने तथा निश्चि कीमत पर बेचने के लिये बाध्य किया गया तथा यमुना के निकट के गांव में निवास भी प्रदान किये गये जिस वे भाग न सकें। अलाउद्दीन की इस व्यवस्था के मार्ग में एक चीज और बाधक हो सकती थी और वह मौसम। इसलिये विपरीत मौसम में अन्न उत्पादन न होने पर भी उसकी योजना सही रूप से चलती रही इस लिये सुल्तान के राजकीय अन्न भंडारों की व्यवस्था की।

राशन प्रणाली—अलाउद्दीन को यह मालूम था कि उसकी यह योजना सामान्य परिस्थितियों में सुचारू रूप से चल सकती थी, परन्तु असामान्य परिस्थितियों में नहीं। सामान्य परिस्थितियों में लोग जितना च अन्न राजकीय भंडारों से खरीद सकते थे, परन्तु अकाल एवं दुर्भिक्ष की परिस्थिति में राशन प्रणाली की व्यवस्था की। इतिहासकारों ने अलाउद्दीन की इस राशन प्रणाली की अत्यधिक सराहना की है।

बाजार के अधिकारी—इस विस्तृत व्यवस्था के उचित कार्यान्वयन के लिये पर्याप्त संख्या में एवं कुशल अधिकारियों की नियुक्ति की गई। अन्न बाजार का प्रमुख अधिकारी था शहना-ए-मण्डी, जिसके कार्य एवं अधिकार क्षेत्र विस्तृत थे तथा जिसके अधीन बहुत से अधिकारी काम करते थे। वह इस बात पर नजर रखता था कि सामान सुल्तान द्वारा निर्धारित कीमतों पर बिकता रहे तथा चोर-बाजारी जैसी कोई बात न हो। उसे प्रतिदिन की प्रत्येक बात की सूचना सुल्तान को देनी होती थी। उसके अतिरिक्त बरीद-ए-मण्डी तथा मुन्हियान अन्य अधिकारी थे। सुल्तान इन तीनों अधिकारियों से अलग-अलग सूचनायें प्राप्त करता था और तीनों के विवरण में जरा सा भी अंतर होने पर उन्हें सख्त दण्ड देता था।

कपड़ा तथा अन्य बाजार—विभिन्न श्रेणी के कपड़ों के भी दाम तय किये गये। कपड़ा बाजार का प्रमुख अधिकारी था दीवान-ए-रियासत। अच्छे और बारीक कपड़े से लेकर मोटे कपड़े तक की सूची बनाकर सबके दाम निर्धारित किये गये थे। इसी प्रकार घोड़ा बाजार, दास बजार तथा मवेशियों, मिठाईयों, मसालों, हथियारों एवं जूतों के लिये भी अलग-अलग बाजार थे।

आदेशों का कियान्वयन—अलाउद्दीन की योजना जितनी सरल थी उसका क्रियान्वयन उतना ही कठिन। इसलिये अलाउद्दीन ने बड़ी कठोरता से इसको लागू किया। अधिक मूल्य लेने वाले व्यापारी को दंड दिया जाता था। दुकानदार बेईमानी तो नहीं कर रहे हैं। यह सुनिश्चित करने के लिये छोटे-छोटे बच्चों को पैसे देकर सामान खरीदने के लिये भेजा जाता था और यदि दुकानदार ने कम सामान दिया है तो कम तोले गये माल के बराबर मांस उसकी कमर से काट लिया जाता था और उसे धक्के देकर दुकान से बाहर निकाल दिया जाता था।

बाजार नियन्त्रण प्रणाली का मूल्यांकन—अलाउद्दीन ने यह योजना अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये बनाई थी और उसके पीछे जनकल्याण की कोई भावना नहीं थी। इस योजना से सम्बन्धित किसी भी वर्ग को इसका कोई लाभ नहीं हुआ, यदि लाभ हुआ तो केवल राज्य को। परन्तु इस योजना के सम्बन्ध में दो बातें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पहली तो है अलाउद्दीन के मस्तिष्क में इस योजना का आना तथा दूसरी इस योजना को सख्ती से लागू करना। दोनों ही दृष्टिकोण से अलाउद्दीन की सराहना की जा सकती थी।

अलाउद्दीन खिलजी का मूल्यांकन—अलाउद्दीन की गणना दिल्ली सल्तनत के सर्वाधिक शक्तिशाली, योग्यतम एंव सफलतम् सुल्तानों में की जाती है। वह एक महत्वाकांक्षी सुल्तान था जिसने अपनी शक्ति, योग्यता एवं सूझबूझ के बल पर एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। वह दिल्ली सल्तनत का प्रथम सुल्तान था जिसने दक्षिण भारत पर भी विजय प्राप्त की। उसने अपनी विजयों के द्वारा एक अत्यधिक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की और दिल्ली सल्तनत की महानता की नींव रक्खी। उसकी प्रसिद्धी उसकी विजयों के कारण ही नहीं अपितु उसके द्वारा राजस्व एवं सेना के सम्बन्ध में किये गये सुधारों के लिये भी है। उसकी बाजार नियन्त्रण व्यवस्था उसकी योग्यता की परिचायक है। उस युग में किसी सुल्तान के मस्तिष्क में इस प्रकार की योजना का आ पाना स्वंय में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सेना के क्षेत्र में उसने जो सुधार किये वह न केवल उसके आगे आने वाले दिल्ली के सुल्तानों के लिये ही महत्वपूर्ण रहे वरन् मुगल बादशाहों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। वही सही मायनों में दिल्ली सल्तनत का योग्यतम् शासक था।

तुगलक वंश (Tuglaq Dynasty) (1320-1414 ई०)

सुल्तान मुहम्मद तुगलक (1325–1351 ई०)
[Sultan Muhammad Tughlaq : (1325–1351 A.D.)]

सितम्बर 1320 ई० में खिल्जी वंश के अंतिम सुल्तान नासिरूद्दीन खुसरो शाह की हत्या करके गाजी मलिक ने तुगलक वंश की नींव डाली और वह गियासुद्दीन तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य

व्यक्ति था जिसमें शासकोचित सभी गुण विद्यामान थे। उसने अपनी योग्यता के बल पर न केवल गद्दी ही प्र की वरन् अपने साम्राज्य में वृद्धि भी की तथा शांति एवं व्यवस्था की स्थापना भी की। उसने अलाउद्दीन खिल के समान ही साम्राज्यवादी नीति का पालन किया तथा साम्राज्य का विस्तार किया। उसने सैनिक संगठन ओर भी विशेष ध्यान दिया और अलाउद्दीन के सेना सम्बन्धी सुधारों को पूर्ववत कायम रक्खा।

गियासुद्दीन ने कृषकों की स्थिति सुधारने के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण कार्य किये। उसने कृषि क्षेत्र में द एवं राजस्व विभाग के अधिकारियों की मनमानी को रोकने के सम्बन्ध में प्रयास किये, क्योंकि उसका विश्व था कि राज्य की समृद्धि कृषकों की भलाई पर निर्भर करती है।

गियासुद्दीन विद्या का भी संरक्षक था और उसने अनेक कवियों एवं विद्वानों को अपने दरबार में आ दिया था। उसे इमारते बनावाने का भी बहुत शौक था। उसने तुगलकावाद नामक नगर बसाया जहाँ उसने सुनहरी ईंटों का महल भी बनवाया।

1325 में उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जूना खां मुहम्मद तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठ

प्रारंभिक जीवन तथा राज्यारोहण—गियासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र जूना 'अल मुजाहिद मुहम्मद इब्न तुगलक' मुहम्मद तुगलकशाह के नाम से 1325 ई० में दिल्ली के सिंहासन आसीन हुआ। बचपन से ही उसको उत्तम शिक्षा मिली थी। उसका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा एक सैनि के समान हुई थी। वह कुशाग्र बुद्धि वाला असाधारण बालक था। वह तुर्की भाषा से भी परिचित था। बौद्धिक प्रकृति का व्यक्ति था और धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त विविध क्षेत्रों में उसको विस्तृत ज्ञान था। खुसरोश ने उसे घुड़साल का अध्यक्ष नियुक्त किया। यह उसकी प्रथम महत्त्वपूर्ण नियुक्ति थी। खुसरोशाह के वि उसने अमीरों को संगठित किया था और सुल्तान पद पर अधिकार करने की सम्भावना के कारण वह अ पिता के पास गया था। संभवत: उसी की योजना के अनुसार गियासुद्दीन ने कार्य किया था। गियासुद्दीन राज्यारोहण के पश्चात् उसे उलुग खाँ की उपाधि से विभूषित किया और उसे अपना युवराज घोषित कि वारंगल के विरुद्ध उसने दो बार अभियान चलाया। उसने गियासुद्दीन की मृत्यु के बाद चालीस दिन होने शोक मनाया। इसके बाद उसने दिल्ली में प्रवेश किया और उसका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ।

राजत्व का सिद्धांत—मुहम्मद तुगलक दिल्ली के सिंहासन पर आसीन होने वाले सभी सुल्तानों में स अधिक शिक्षित और ज्ञान के प्रति जिज्ञासु तथा अनेक विधाओं में दक्ष था। धर्मशास्त्र का भी उसने अध्य किया था। अत: सुल्तान पद तथा राज्य के प्रति उसके विचारों का जानना आवश्यक था। उसका दृष्टिक व्यापक और तर्कवाद पर आधारित था। अपनी योग्यता में भी उसे विश्वास था। उसके राजत्व संबंधी वि बलबन के विचारों से मेल खाते थे और बलबन के समान वह भी मानता था कि सुल्तान ईश्वर की प्रतिच्छ होती है। अपने सिक्कों पर उसने इस विचार को अंकित कराया (अल सुल्तान जिल्ले अल्लाह)। उसने राज के इस दैवी सिद्धांत के साथ सुल्तान की सत्ता को निरंकुश बनाया। सुल्तान की सत्ता पर दो अंकुश होते थे अमीर और उलेमा। उसने इन दोनों बाधाओं को हटाने के लिए अलाउद्दीन या बलबन से हटकर उपाय कि उच्चवंशीय अहंकारी अमीर वर्ग को प्रभावहीन बनाने के लिए उसने एक नवीन अमीर वर्ग का गठन किया निम्न और साधारण वर्गों के व्यक्तियों से निर्मित किया गया था। उच्चवंशीय अमीरों को इस नवीन वर्ग प्रभावहीन कर दिया। मुहम्मद तुगलक ने उलेमा वर्ग के विषय में अलाउद्दीन के समान उपेक्षा की नीति अपन और उनका हस्तक्षेप राजकार्यों में बंद कर दिया। परन्तु उसकी नीति व्यावहारिक रूप से अलाउद्दीन की न की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील थी। उसने तर्क को धर्माचरण के लिए आधार बनाया और दूसरी ओर उलेमा को साधारण व्यक्तियों के समान माना और उनके विशेषाधिकारों को न्याय तथा प्रशासकीय मामलों में मान नहीं दी।

मुहम्मद तुगलक की सुधार योजनाएँ तथा उनकी असफलता

मुहम्मद तुगलक का शासनकाल महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक सुधारों तथा योजनाओं के लिए जाना जाता है। प्रशासकीय कौशल तथा साम्राज्य का संगठन व विस्तार करना सुल्तान का प्रमुख उद्देश्य था। वह मौलिक कल्पना वाला व्यक्ति था। उसकी योजनाएँ अनेक कारणों से असफल हो गईं और उसे अनेक संकटों का सामना भी करना पड़ा। सुल्तान की पाँच योजनाओं का बरनी विशेष रूप से बखान करता है—(i) दोआब में कर वृद्धि, (ii) देवगिरि को राजधानी बनाना।, (iii). सांकेतिक मुद्रा जारी करना। (iv) खुरासान पर आक्रमण।, (v) कराजल अभियान (1337-1338 ई०)।

(1) दोआब में कर वृद्धि (1325 ई०)—सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने शासन के आरंभ में दोआब में कर में वृद्धि की। इस वृद्धि की तत्कालीन इतिहासकारों ने कटु आलोचना की है लेकिन किसी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि इस वृद्धि का कारण क्या था और कितनी वृद्धि की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्व में वृद्धि करना सुल्तान का उद्देश्य था। संभव है राज्यारोहण के पश्चात सुल्तान द्वारा उदारतापूर्वक अपने समर्थकों में धन बाँटने के कारण राजकोष रिक्त हो गया हो। अत: इस वृद्धि के संभवत: कारण थे- (i) दोआब के लोगों को दंडित करना क्योंकि सुल्तान को संदेह था कि मंगोलों को दोआब के हिंदुओं ने आमंत्रित किया था, (ii) रिक्त राजकोष को भरना, (ii) उपजाऊ प्रदेशों पर अधिक कर लगाना और (iv) कम उपज वाले प्रदेशों के कर भार को कम करना।

वृद्धि दर— गंगा और यमुना का दोआब उपजाऊ क्षेत्र था और सुल्तान कर वृद्धि का प्रयोग करना चाहता था। अत: प्रयोग के लिए यह उपयुक्त क्षेत्र था। किन्तु कितनी कर वृद्धि सुल्तान ने की थी, यह स्पष्ट नहीं है। संभवत: सुल्तान भूमि कर में 1/10 या 1/20 की वृद्धि करना उचित समझता था। अलाउद्दीन ने कर को 1/3 से बढ़ाकर 1/2 कर दिया था। बरनी ने इसकी आलोचना नहीं की है। गियासुद्दीन तुगलक 1/10 या 1/20 की वृद्धि करना चाहता था और वह वृद्धि इतनी अधिक भी नहीं थी कि उससे जनता की कमर टूट जाती। तारीखे मुबारकशाही से ज्ञात होता है कि अतिरिक्त अबवाब लगाकर यह वृद्धि की गई थी। लेकिन इस प्रकार के अबवाबों का उल्लेख बरनी नहीं करता। तारीखे मुबारकशाही के अनुसार सुल्तान ने गृहकर और चराई कर लगाया था जिसके लिए पशुओं पर दाग लगाए गए थे। तारीखे मुबारकशाही के अनुसार इन करों को कठोरता से वसूल करना संकट का कारण बना।

इस वृद्धि को तर्कसंगत बनाने के लिए बदायूँनी का मानना है कि कर को दोगुना कर दिया गया था। फरिश्ता के अनुसार कर को तीन या चार गुना बढ़ाया गया था।

असफलता—कर नीति को अपनाने के समय दोआब में अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ गया। किसानों की दशा दयनीय हो गयी और वह कर देने में असमर्थ हो गए। राजस्व अधिकारियों ने कठोरता से कर वसूला जिससे किसानों ने कृषि कार्य छोड़ दिया और लूटमार में लग गए। सुल्तान ने कठोरता से कृषकों का दमन किया जिससे स्थिति और खराब हो गई। अनेक स्थानों पर हिंसा व्याप्त हो गयी। बरन, डलमऊ और कन्नौज में स्थिति भयावह हो गयी। सुल्तान ने विद्रोहियों का दमन करने के लिए स्वयं सैनिक अभियान शुरु किया। जब उसे वस्तुस्थिति ज्ञात हुई और वह किसानों की असमर्थता तथा दयनीय स्थिति जान गया तो राजस्व संग्रह रोक दिया और अकाल पीड़ितों को राहत सामग्री प्रदान की गयी। किसानों को तकावी ऋण दिए गए, सिंचाई के लिए कुएँ खुदवाए गए जिससे किसान फिर से खेती कर सकें। अन्न वितरण की व्यवस्था भी सुल्तान ने करायी। लेकिन दोआब उजड़ गया था, लाखों व्यक्ति भूख से मर गए थे और कृषि की दशा वर्षों तक खराब रही।

(2) राजधानी परिवर्तन—सुल्तान की दूसरी महत्वपूर्ण योजना थी दिल्ली से देवगिरी (जिसका नाम बदल कर दौलताबाद रक्खा गया) राजधानी परिवर्तित करना। इसके भिन्न-भिन्न कारण बताये जाते हैं। बर्नी के

अनुसार देवगिरि सल्तनत के केन्द्र में स्थित था और सभी प्रदेश यहाँ से समान दूरी पर थे। कुछ विद्वानों अनुसार देवगिरि का सामरिक दृष्टिकोण से भी महत्व था क्योंकि यह उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त से होने व मंगोल आक्रमणों से सुरक्षित थी जबकि उत्तरी-पश्चिमी सीमांत के अधिक निकट होने के कारण दिल्ली स से मंगोल आक्रमणों का शिकार होता रहा था। कुछ विद्वानों का विचार है कि दक्षिण की अतुलित सम्पदा ने मुहम्मद तुगलक को आकर्षित किया होगा। कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि दक्षिण में इस्लाम प्रसार भी सुल्तान की इस योजना के पीछे एक कारण था।

इब्नबतूता ने सुल्तान की इस योजना का एक विचित्र ही कारण बताया है। उसने लिखा है कि दिल्ली नागरिकों ने गुमनाम पत्र लिखकर उसमें सुल्तान को खूब गालियां दी थी जिनसे तंग आकर उन्हें दंड देने उद्देश्य से सुल्तान ने राजधानी परिवर्तन की योजना बनाई। परन्तु आधुनिक इतिहासकारों ने इब्नबतूता की कहानी को असंगत और मनगढ़ंत बताया है।

योजना बनाने के बाद सुल्तान ने दिल्ली के सभी नागरिकों को सामान सहित दौलताबाद चलने आदेश दिया। इच्छा न होते हुए भी नागरिकों को दिल्ली छोड़ना पड़ा। इब्नबतूता ने तो यह भी लिखा है लोगो को जबर्दस्ती घसीट कर दौलताबाद ले जाया गया, यद्यपि यह सत्य नहीं है।

सुल्तान ने जनता की सुविधा के लिये दिल्ली से दौलताबाद तक के मार्ग में विभिन्न इन्तजाम कराये। में जल, मुफ्त भोजन तथा अस्थायी झोपड़ियों का प्रबन्ध किया गया और छायादार वृक्ष भी लगाये गये। प इस सबके बावजूद भी लोगों को अत्यधिक कष्ट हुआ और बहुत बड़ी संख्या में लोग मार्ग में मर गये। सुल्त ने अपनी योजना को असफल होता देखकर दिल्ली वापिस चलने का आदेश दिया। बर्नी ने लिखा है कि क लोग लौटते समय मर गये।

योजना का औचित्य—मुहम्मद तुगलक की यह योजना किसी भी प्रकार अवांछनीय अथवा मूर्खता नहीं थी क्योंकि इससे पहले और बाद में भी राजधानी परिवर्तन के बहुत सारे उदाहरण मिलते हैं। उदाहरण अकबर ने दिल्ली के स्थान पर फतेहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बनाया था तथा अंग्रेजों ने कलकत्त दिल्ली राजधानी स्थानन्तरित की थी। सुल्तान की इस योजना में कमी यह रही कि उसने समस्त जनता को साथ दौलताबाद चलने के आदेश दे दिये। अधिक उचित यह था कि वह अपनी योजना को विभिन्न चरण कार्यान्वित करता। सुल्तान यह भी समझने में असमर्थ रहा कि लोग अनिवार्य परिस्थितियों को छोड़कर कभी अपना स्थायी निवास छोड़ने के लिये तैयार नहीं होते हैं। इन कारणों से सुल्तान की यह योजना भी असफल और दौलताबाद उसकी 'मूर्खता का स्मारक' बन गया।

(3) सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन—भारतीय मुद्रा के इतिहास में मुहम्मद तुगलक का महत्वपूर्ण र है। उसने न केवल सम्पूर्ण मुद्रा प्रणाली में सुधार ही किये वरन् सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन करके एक प्रयोग भी किया। उसने सोने और चांदी के सिक्कों के स्थान पर पीतल और चांदी के सिक्के भी चल

मुहम्मद तुगलक के इस प्रयोग के अनेक कारण थे। पहला कारण तो यह था कि विभिन्न युद्धों दुर्भिक्ष आदि के कारण राजकोष में बहुमूल्य धातुओं की कमी हो गई थी। दूसरा उसे चीनी और ईरानी शा से प्रेरणा मिली थी जिन्होंने 13वी शताब्दी में अपने देशों में सांकेतिक मुद्रा जारी की थी। तीसरे इतिहासकारों का विचार हैं कि नये प्रयोगों का शौक होने के कारण सुल्तान ने यह योजना चलाई।

एक अध्यादेश के द्वारा सुल्तान ने पीतल और तांबे के सिक्कों को 'कानूनी मुद्रा' घोषित कर दिया जि अनुसार इस नवीन मुद्रा को सोने और चांदी के समकक्ष मान्यता दी गई। इन सिक्कों पर कोई 'राजकीय चि न होने के कारण कारीगरो ने घर पर सिक्के बनाना शुरू कर दिया। कुशल कारीगरों के द्वारा बनाये गये सि और राजकीय टकसाल के सिक्कों में कोई अंतर नहीं था। लोगों ने इन घर पर बने हुए सिक्कों का अधिका प्रयोग करना शुरू कर दिया तथा देते समय तो पीतल ओर तांबे के सिक्के देते थे और लेते समय इनके र पर केवल सोने और चांदी के सिक्कों को ही स्वीकार करते थे। परिणामस्वरूप व्यापार चौपट हो गया

सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई। बाध्य होकर सुल्तान को अपनी यह योजना भी वापिस लेनी पड़ी और यह आज्ञा भी निकालनी पड़ी कि लोग इन सिक्कों के बदले राजकोष से सोने और चांदी के सिक्के ले जायें। इस योजना का भी राज्य की आर्थिक स्थिति पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा।

योजना का औचित्य—सुल्तान की यह योजना किसी भी प्रकार मूर्खतापूर्ण नहीं कहीं जा सकती क्योंकि चीन और ईरान में इस प्रकार का प्रयोग सफल हुआ था और आधुनिक समय में सम्पूर्ण देशी और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा पद्धति का आधार सांकेतिक मुद्रा ही है। फिर भी यह योजना असफल हुई, जिसके दो कारण थे। इसका एक महत्वपूर्ण कारण तो यह था कि सुल्तान इस सिक्कों की नकल को रोकने के लिये इन पर ऐसी कोई राजकीय मुद्रा या चिन्ह बनाने की सावधानी न बरत सका जिससे कुशल कारीगर इन सिक्कों की नकल न कर सकें। इस योजना की असफलता का दूसरा महत्वपूर्ण कारण था जनता का पिछड़ापन तथा सुल्तान की नीतियों में अविश्वास। 14 वीं शताब्दी की जनता के लिये पीतल और तांबा कभी भी सोने के बराबर नहीं हो सकते थे। इसलिये उन्होंने प्रारम्भ से ही इस योजना को संदेह की दृष्टि से देखा। जनता के सहयोग के बिना इस योजना का सफल हो पाना सम्भव नहीं था।

(4) खुरासान विजय की योजना—आन्तरिक क्षेत्र के प्रयोगों के अतिरिक्त मुहम्मद तुगलक ने विदेश नीति के क्षेत्र में भी कुछ योजनायें बनाई। उसके मन में भी अलाउद्दीन के ही समान विभिन्न प्रदेशों की विजय की आकांक्षा जागृत हुई। उसके दरबार में आये हुए कुछ खुरासानी अमीरों ने सुल्तान को खुरासान की खराब राजनीतिक स्थिति के विषय में बताकर वहाँ की विजय के लिये उकसाया। सुल्तान ने खुरासान, ईराक और ट्रांसआक्सियाना को जीतने की योजना बना ली। उसने जल्दबाजी में एक विशाल सेना एकत्रित कर ली और उसे एक वर्ष का अग्रिम वेतन भी प्रदान कर दिया। परन्तु शीघ्र ही सुल्तान को अपनी इस योजना की अव्यावहारिकता समझ में आ गई। पहली बात तो यह थी कि खुरासान भारत से बहुत दूर था और बीच का सारा मार्ग बर्फ से ढका हुआ था। दूसरा, इस बीच खुरासन की राजनीतिक स्थिति भी सुधर गई थी। तीसरे, राज्य की आर्थिक स्थिति पहले से ही बिगड़ी हुई थी जो इस योजना के कारण और अधिक बिगड़ जाएगी। इसलिये सुल्तान ने इस योजना का परित्याग करना ही अधिक उचित समझा। आर्थिक दृष्टि से इस योजना के परिणाम भी राज्य के लिये घातक ही सिद्ध हुए।

(5) काराजल पर चढ़ाई—मुहम्मद तुगलक के मन में हिमालय के राज्यों को परास्त कर उनके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छा जागृत हुई। इसलिये उसने कुमायूं की पहाड़ी में स्थित काराजल राज्य पर आक्रमण किया। इस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों को समझे बिना मुहम्मद तुगलक की विशाल सेना ने इस क्षेत्र पर धावा बोल तो दिया परन्तु यह सम्पूर्ण क्षेत्र पर्वतीय था। वर्षा की अधिकता ने स्थिति को और भी कष्टदायक बना दिया। अत्यधिक क्षति उठाने के बाद सुल्तान के पास लौटने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। उसकी यह योजना भी असफल रही।

मुहम्मद तुगलक का चरित्र चित्रण एवं मूल्यांकन—मुहम्मद तुगलक मध्यकालीन इतिहास का सर्वाधिक विवादास्पद चरित्र है। इसका कारण है तत्कालीन इतिहासकारों जैसे बर्नी एवं इब्नबतूता के द्वारा उसके सम्बन्ध में किये गये विरोधी वर्णन। उसकी योजनाओं की असफलता ने उसे और अधिक विवादस्पद बना दिया। इब्नबतूता के द्वारा दिये गये विभिन्न वर्णनों के आधार पर यूरोपीय विद्वानों ने उसे पागल, झक्की, सनकी एवं विचित्रताओं का मिश्रण कहा है। परन्तु यह सब दोषारोपण उसके ऊपर केवल इसलिये किये जाते हैं क्योंकि इतिहासकारों ने उसके चरित्र के एक-एक पहलू के आधार पर उसका मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। यदि समग्रता में देखा जाय तो वास्तविकता कुछ और दिखाई पड़ेगी। यह सही है कि उसकी योजनायें असफल रहीं, परन्तु उसकी योजनाओं में कोई कमी नहीं थी, यद्यपि उनके क्रियान्वयन में कुछ दोष अवश्य था। जनता के असहयोग ने उसकी योजनाओं को असफल कर दिया। शासक के रूप में मुहम्मद तुगलक की योजनाओं की असफलता का प्रमुख कारण था जनता का पिछड़ापन। वस्तुत: उसकी योजनाओं को न तो जनता समझ पाई और न उस पर विश्वास कर पाई। वस्तुत उसकी सफलता पर प्रमुख कारण था उसमें अव्यावहारिकता का अभाव।

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (1351–1388 ई०)
(Sultan Firozshah Tughlaq : 1351–1388 A.D.)

राज्यारोहण—सैनिक अभियान के समय सुल्तान मुहम्मद तुगलक की मृत्यु से शाही सेना में संकट स्थिति उत्पन्न हो गई। मंगोल सैनिकों ने नेताविहीन सेना में अराजकता की स्थिति का लाभ उठाया और लूटमार करने लगे। सुल्तान मुहम्मद ने इन मंगोल सैनिकों को अपनी सेना में स्थान दिया था। शाही सेना प हटती गयी। सेना के पृष्ठ भाग पर सिंधी विद्रोहियों और पार्श्व भाग पर मंगोलों के आक्रमणों से स्थिति भया हो गयी। दो दिनों तक यह स्थिति बनी रही। अंत में शिविर में उपस्थित अमीरों तथा उलेमाओं ने फिरोज सुल्तान बनने की प्रार्थना की। एकान्तप्रिय तथा धार्मिक प्रवृत्ति का होने के कारण फिरोज ने यह उत्तरदायि अस्वीकार कर दिया। लेकिन फिरोज को अमीरों तथा उलेमाओं के दबाव के कारण अंतत: सुल्तान बन स्वीकार करना पड़ा। 22 मई, 1351 ई० को शाही शिविर में उसका राज्याभिषेक हुआ।

फिरोज तुगलक सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक के भाई रज्जब का पुत्र था। उसकी माँ बीबी नैला अबोह के राजपूत राजा राय रनमल की पुत्री थी जिसका विवाह गियासुद्दीन ने रज्जब के साथ बलपूर्वक कराया थ सुल्तान मुहम्मद तुगलक के गद्दी पर बैठने के समय फिरोज 18 वर्ष का नवयुवक था। प्रशासन के उच्च पद पर महुम्मद तुगलक ने उसकी नियुक्ति की और उसे प्रशासन का प्रशिक्षण दिया। वह अपनी धार्मिक प्रवृत्ति तथ विनयशीलता के कारण उलेमाओं में विशेष रूप से लोकप्रिय था। किसी सैनिक अभियान या युद्ध में फिरोज ने भाग नहीं लिया लेकिन उसकी आज्ञाकारिता के कारण मुहम्मद तुगलक उससे विशेषरूप से प्रसन्न रहता था कहा जाता है कि जब मुहम्मद तुगलक मृत्यु-शैय्या पर था उसने फिरोज को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किय था।

राज्यारोहण पर विवाद—फिरोज ने राज्यारोहण के पश्चात् सेना को व्यवस्थित किया और दिल्ली वापस जाने का आदेश दिया। सुल्तान को मार्ग में ही ख्वाजा-ए-जहाँ का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि उसने सुल्तान मुहम्मद के पुत्र को सिंहासन पर बिठा दिया है और फिरोज उसका संरक्षक बनकर राज्य का संचालन करे। सुल्तान मुहम्मद ने ख्वाजा-ए-जहाँ को अपनी अनुपस्थिति में दिल्ली में नायब नियुक्त किया था। अमीरों तथा उलेमाओं से फिरोज ने परामर्श किया। अमीरों का कहना था कि वे नहीं जानते कि स्वर्गीय सुल्तान का कोई पुत्र था। उलेमाओं ने निर्णय दिया कि वह बालक अल्पवयस्क होने के कारण सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं था। वंशानुगत अधिकार को इस्लाम स्वीकृति नहीं देता और फिरोज का निर्वाचन नियमानुसार हुआ था और उसे निरस्त करने की कोई शर्त नहीं थी, अत: फिरोज का सुल्तान पद वैध था। फिरोज ने इस निर्णय के बाद दिल्ली की ओर बढ़ना जारी रखा। फिरोज के पक्ष में दिल्ली के समस्त मंत्री, अधिकारी एकत्रित हो गये। ख्वाजा-ए-जहाँ ने भी इस स्थिति में आत्मसमर्पण कर दिया और क्षमा माँगी। फिरोज ने उसकी पूर्व सेवाओं को ध्यान में रखकर क्षमा कर दिया और उसे समाना की जागीर भेंट कर दी। समाना जाते हुए मार्ग में उसकी मृत्यु हो गई। संभवत: मार्ग में असंतुष्ट अमीरों ने उसका वध कर दिया था।

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक की गृह-नीति

विकट परिस्थिति में फिरोजशाह तुगलक का राज्यारोहण हुआ था। सुल्तान ने राज्यारोहण के उपरान्त तार्गी के विरुद्ध युद्ध बन्द करके दिल्ली वापस जाने का निर्णय लिया। यद्यपि वापसी में शाही सेना को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा लेकिन वह सुल्तान के नेतृत्व में सुरक्षित दिल्ली पहुँच गई। दिल्ली में भी उसका स्वागत हुआ और उसे सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त हुआ। इस प्रकार सुल्तान फिरोज ने शांति और सहयोग की नीति अपनाकर अपना शासन आरंभ किया। 37 वर्षों तक उसने शासन किया जो सल्तनत काल में

सबसे लंबा शासनकाल था। अनेक दोषों के होते हुए भी सुल्तान फिरोज का शासनकाल शांति और समृद्धि का काल था और हिंदू और मुसलमान सभी वर्गों को इस समृद्धि का लाभ समान रूप से प्राप्त हुआ था।

राजत्व का सिद्धांत— इस्लाम धर्म के राजत्व सिद्धांत के विकास के परिपेक्ष्य में भी फिरोज तुगलक का शासनकाल बहुत महत्त्वपूर्ण है। सुल्तान धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था और धार्मिक व्यक्तियों तथा विद्वानों का सत्संग पसंद करता था। उसका जिन परिस्थितियों में सुल्तान के रूप में निर्वाचन हुआ और धर्माचार्यों से जो उसका संबंध था, इससे सुल्तान ने महसूस किया कि वह सल्तनत का ट्रस्टी मात्र है। उसने स्वयं को खलीफा का नायब घोषित किया और खलीफा के नाम पर शासन करना दिखाया। उसने खलीफा के नाम के अतिरिक्त दिल्ली के अन्य सुल्तानों के नामों को खुतबा में शामिल किया। संवैधानिक स्थिति को सुल्तान ने स्थापित किया जिससे सुल्तान तथा खलीफा के मध्य संबंध स्पष्ट रहे। सुल्तान फिरोज को 1356 ई० में जब खलीफा ने अधिकार-पत्र भेजा, तब सुल्तान को खलीफा ने एक पत्र भी भेजा था जिसमें बहमनी राज्य की स्वतंत्रता स्वीकार की गई थी। इस आधार पर दक्षिण के विद्रोही राज्यों को फिर से जीतने के उत्तरदायित्व से सुल्तान फिरोज मुक्त हो गया। इससे उसे अपनी सैनिक अयोग्यता तथा दुर्बलता को छिपाने का भी अवसर मिल गया।

उलेमा वर्ग का सुल्तान फिरोज के शासनकाल में प्रभाव पूर्णतय: स्थापित हो गया। इस वर्ग का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी और सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने प्रशासन में हस्तक्षेप रोक दिया था। लेकिन इस वर्ग को संतुष्ट रखने का फिरोज ने भरपूर प्रयास किया। शरीयत के अनुसार राज्य चलाना सुल्तान फिरोज का उद्देश्य था, अत: वह निष्ठापूर्वक उलेमा की व्यवस्था को स्वीकार करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य पूर्णरूप से धर्मतंत्र बन गया। सुल्तान स्वयं को केवल मुसलमानों का शासक समझता था और उनके कल्याण के लिए ही कार्य करता था। वह इस्लाम का प्रचार करना अपना कर्तव्य और धर्म समझता था और उसने राज्य के साधनों का उपयोग धर्म प्रचार के लिए खुलकर किया। सुल्तान ने अपनी आत्मकथा फतूहात-ए-फिरोजशाही में लिखा है कि उसने इस्लाम स्वीकार करने के लिए हिंदुओं को प्रोत्साहित किया तथा उसने धन, पद, सम्मान भी इसके लिए प्रदान किए।

मंत्रियों तथा अधिकारियों में सुल्तान ने पूर्ण विश्वास व्यक्त किया और उन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता दी। वह मंत्रियों तथा उलेमा की सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में राय लेता था। इस प्रकार उसकी इस नीति से संवैधानिक राजतंत्र के विकास की सम्भावनायें उत्पन्न हो गई जिसका आधार प्रजा की राजभक्ति होती है। यह भी उल्लेखनीय है कि सैनिक या प्रशासनिक योग्यता का सुल्तान फिरोज में नितान्त अभाव था जो उस काल में सुल्तान के लिए अनिवार्य योग्यता मानी जाती थी। केवल जनमत उसके दीर्घ शासनकाल की सफलता का कारण बना। उसे अमीर वर्ग, उलेमा तथा सामान्य मुस्लिम जनता ने अपना भरपूर समर्थन दिया। समृद्धि तथा शान्ति के कारण अधिकांश हिन्दू जनता में भी संतोष था तथा इसे वह सुल्तान की नीतियों का परिणाम मानकर संतुष्ट थी।

तुगलक वंश का पतन—फिरोज तुगलक के उत्तराधिकारी अयोग्य हुए। मुहम्मद तुगलक के समय से ही तुगलक वंश के पतन की प्रक्रियां प्रारम्भ हो गई थी। उसकी योजनाओं के कारण राज्य की अर्थव्यवस्था को गहरा आघात पहुँचा था जिसे संभाल पाने में परवर्ती तुगलक सुल्तान असमर्थ रहे। उत्तर एवं दक्षिण के विभिन्न राज्यों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना करना प्रारम्भ कर दिया। तैमूर के आक्रमण ने पहले से ही अव्यवास्थिक दशा एवं सर्वत्र व्याप्त आराजकता में और भी वृद्धि कर दी। इसका लाभ उठाकर अमीरों ने षड्यन्त्र रचने शुरू कर दिये जिनके परिणामस्वरूप तुगलक वंश का अंत हो गया।

तुगलक वंश के पश्चात् सैय्यद और लोदी वंश के सुल्तानों के शासन किया। सैय्यद वंश के समय में तो कोई उपलब्धि महत्तवूर्ण नहीं थी। दिल्ली सल्तनत का अंतिम वंश था लोदी वंश, जिसका अन्तिम शासक था इब्राहीन लोदी। उसके समय में बाबर ने आक्रमण करके दिल्ली सल्तनत को समाप्त करके मुगल वंश की नींव डाली।

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन—भारत में इस्लामी शासन की स्थापना के बाद दोनों सम्प्रदायों के परस्पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ। इस्लाम और हिन्दू धर्म के बीच की जो खाई थी उसको पाटने प्रयास भक्ति आन्दोलन ने किया। इसका कारण यह है कि तैमूर के आक्रमण के बाद मुसलमान यह भली भ समझ गये थे कि भारत को इस्लामी देश में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही साथ हिन्दुओं दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ क्योंकि वे अब तक मुसलमानों को भी भारत में प्राचीन काल से अपने व अन्य आक्रमणकारियों के समान एक नया उपवर्ण ही समझते आये थे। अब हिन्दुओं को अपनी भूल अहसास हुआ और इस्लाम को एक स्थापित धर्म के रूप में स्वीकार करना प्रारम्भ किया।

भक्ति आंदोलन के संतों ने मोक्ष प्राप्ति के लिये भक्ति की महत्ता पर बल दिया और धार्मिक कर्मकांडों निन्दा करते हुए ईश्वर की सच्ची भक्ति पर बल दिया। भक्ति आंदोलन के संत व्यक्ति एवं ईश्वर के बीच कि धार्मिक आडम्बर की आवश्यकता नहीं मानते थे। वह तो केवल ईश्वर में विश्वास रखते थे, चाहे उसका न राम हो, कृष्ण हो अथवा अल्लाह।

भक्ति आन्दोलन के संत—भक्ति आन्दोलन के सर्वप्रथम प्रचारक थे रामानुज, जिन्होने मोक्ष प्राप्ति लिये ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा ईश्वर की भक्ति को अधिक महत्वपूर्ण बताया। रामानुज के ब महत्वपूर्ण विचारक थे रामानन्द, जिन्हें उत्तरी भारत का प्रथम भक्ति संत कहा जाता है। उन्होंने विशिष्ट अद्वै दर्शन का प्रचार किया और समस्त जातियों के लोगों को अपना शिष्य बनाया। उनके 12 शिष्य थे जिनमें से नामक नाई, धना नामक जाट और रैदास नामक चमार थे। उनके सर्वाधिक प्रसिद्ध शिष्य थे कबीर।

भक्ति सम्प्रदाय के अत्यधिक महत्वपूर्ण संत थे **कबीर**। कबीर ने जाति-पाति का भेदभाव भुलाकर जन की भाषा में उपेदश दिये और मानव मात्र की मूलभूत एकता पर जोर दिया। वह एक निराकार ईश्वर में विश्वा रखते थे, वेद और कुरान दोनों को ही अस्वीकार करते थे तथा ब्रह्मण एवं मौलवी दोनों में से किसी की स इन्हें मान्य नहीं थी। कबीर ने एक ओर हिन्दू धर्म में आई हुई कुरीतियों यथा मूर्ति पूजा, माला फेरना एवं के कटाना आदि की भर्त्सना की एंव दूसरी ओर मुसलमानों की नमाज एवं अजान को निरर्थक बताते हुए सच्च भक्ति पर जोर दिया। उनके उपदेशों के दो लक्ष्य माने जाते हैं—एक तो बाह्य आडम्बरों का विरोध करके आध्यात्मिक विकास पर बल देना ओर दूसरा समाज के दो प्रमुख वर्गों हिन्दू और मुसलमानों के बीच सद्भाव स्थापित करना। यद्यपि पहले उद्देश्य में तो उन्हें पर्याप्त सफलता मिली परन्तु दूसरे उद्देश्य में वह असफल रहे।

कबीर के समान ही एक अन्य महत्वपूर्ण संत थे **गुरू नानक**। इनके भी प्रमुख उद्देश्य थे हिन्दू धर्म में सुधार करना तथा हिन्दू एवं मुसलमानों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना। यह भी ब्राह्मण एवं मौलवियों के वर्चस्व, जाति-पाति एवं मूर्ति पूजा के घोर विरोधी थे तथा इन्होंने भी सभी जाति के लोगों को अपना शिष्य बनाया। इन्होंने अपने उपदेशों में नैतिकता, नम्रता, दान, सत्य आदि को प्रमुख स्थान दिया तथा ईश्वर के समक्ष निष्कपट रूप से आत्मसमर्पण को मोक्ष प्राप्ति का सरलतम मार्ग बताया।

मध्यकालीन भक्त संतों में **मीराबाई** का भी एक महत्तपूर्ण स्थान है। मीराबाई बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति की थी और कृष्ण की अनन्य भक्त थी। तरूणावस्था में विधवा हो जाने के बाद यह पूर्णत: धार्मिक कार्यों के प्रति समर्पित हो गई। इन्होंने घर-परिवार छोड़कर अपना शेष जीवन भक्ति में ही व्यतीत कर दिया। 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' भजन ही उन्हें कृष्ण की अन्नय भक्ति के रूप में अमर कर देने के लिये पर्याप्त है।

भक्ति संतों में **चैतन्य महाप्रभु** का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है, जो बंगाल के एक संत थे। यह कृष्ण के परम भक्त थे तथा इन्होंने भजन, कीर्तन एवं नृत्य द्वारा भाव-विभोर होकर ईश्वर भक्ति में लीन होने का मार्ग बताया। कृष्ण भक्ति के आवेश में यह कभी मूर्छित भी हो जाते थे। इन्होंने सभी जातियों की समानता पर जोर दिया और ईश्वर की दृष्टि में सबको समान माना।

उत्तरी भारत में अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन दक्षिणी भारत में भी समान रूप से लोकप्रिय हुआ। महाराष्ट्र में ामदेव और तुकाराम जैसे भक्ति संत हुए। इन्होंने भी भक्ति को ही सर्वाधिक महत्व दिया तथा धार्मिक ाडम्बरों, जाति पाति एवं सामाजिक भेद-भावों का विरोध किया।

भक्ति आन्दोलन का प्रभाव— इस प्रकार भक्ति आन्दोलन काफी विस्तृत क्षेत्र में फैला और इसने एक न आन्दोलन का रूप लिया तथा जनमानस को गहराई से प्रभावित किया। भक्ति आन्दोलन के समस्त संतों के चारों में बहुत सारी समानतायें थी जैसे कि सीधे-सादे विचार, जाति-पाति के भेद को न मानना, भाषा की रलता, आडम्बरों पर प्रहार, मन की निर्मलता एवं अनन्य भक्ति पर बल। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप िन्दू धर्म में सुधार हुआ जिसके माध्यम से जाति-प्रथा के बंधन समाप्त होते दिखाई पड़े एवं कर्म-कांडो का हत्व कम हो गया। यद्यपि यह आदोलन हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के अपने उद्देश्य में तो असफल हा, परन्तु भक्ति संतों के प्रचार के परिणामस्वरूप दोनों धर्मों के अनुयायियों ने एक-दूसरे को समझने का योस किया, जिसके कारण कटुता में कमी आई। संतों के द्वारा जनता की भाषा में विभिन्न प्रान्तीय गाथाओं जैसे ंगाली, मराठी, मैथिली, गुजराती एवं हिन्दी का विकास हुआ और ये भाषायें सम्पन्न हुई। इस प्रकार भक्ति ान्दोलन ने विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला।

सूफीवाद—भारत के इस्लाम से सम्पर्क का एक महत्वपूर्ण परिणाम था सूफीवाद का उदय। सूफीवाद ौर कुछ नहीं, इस्लामी रहस्यवाद का ही एक रूप था। सूफी संतों ने इस्लाम की कट्टरताओं एवं उलेमा के र्चस्व तथा उनके द्वारा की गई धर्म की उन गलत व्याख्याओं का विरोध किया जिनके माध्यम से इन लोगों ने च्चे धर्म का रूप ही बिगाड़ दिया था। प्रकार सूफी संतों ने इस्लाम के मौलिक विश्वास को सही आधार पर ाने की चेष्टा की।

सूफी विचारधारा—यद्यपि विभिन्न सूफी सम्प्रदायों की शिक्षाओं में कुछ अन्तर है, परन्तु मूल सिद्धान्त भी के एक से हैं। सूफी साधक ईश्वर के सिवाय कुछ नहीं मानते और ईश्वर के अतिरिक्त किसी का भी स्तित्व स्वीकार नहीं करते। सभी सूफी सम्प्रदाय ईश्वर को एकमात्र वास्तविकता मानते हुए उससे सीधा म्पर्क स्थापित करने और उसी को प्राप्त करने के प्रयत्न में लीन रहते हैं। सूफी दर्शन के अनुसार आत्मा आशिक) परमात्मा (माशूक) से मिलन के लिये सदैव बैचेन रहती है। परमात्मा में लीन होने का प्रयत्न एक म्बी यात्रा के समान है जिसके १० पड़ाव अथवा अवस्थायें हैं। एक साधक को इन समस्त अवस्थाओं से ोकर गुजरना होता है और सच्चा साधक वही है जो इन समस्त अवस्थाओं के दौरान कष्टो को सहता हुआ ंतिम अवस्था तक पहुँचता है।

सूफी साधक अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भौतिक जीवन का स्वेच्छापूर्वक परित्याग कर देता है और जकीय पदों एवं राज्याधिकारियों के सम्पर्क से दूर रहता है। सूफी साहित्य से पता चलता है कि सूफी लोग ादा जीवन व्यतीत करते थे एवं खानकाहों में रहते थे, जो प्राचीन ऋषि-मुनियों के आश्रमों के समान थे। कुछ ूफी संत ठाट-बाट का जीवन भी व्यतीत करते थे और एक आम गृहस्थ की तरह रहते थे।

प्रमुख सूफी सम्प्रदाय—सूफी सम्प्रदायों की संख्या तो अधिक थी, परन्तु भारत में इनमें से 6 का धिकार प्रचार हुआ-चिश्ती, सुहरावर्दी, फिरदौसी, कादिरी एवं नक्शबन्दी। इनमें भी केवल तीन ही अधिक ोकप्रिय हुए—चिश्ती, सुहरावर्दी एवं फिरदौसी।

सूफीवाद का प्रभाव—सूफी सम्प्रदाय पर यद्यपि स्वयं काफी सारे धर्मों का प्रभाव था, जिसमें हिन्दू र्म का प्रभाव सर्वाधिक था, परन्तु साथ ही साथ सूफी आन्दोलन ने कालान्तर में हिन्दू धार्मिक रीतिरिवाजों पर पना प्रभाव भी छोड़ा। विभिन्न वर्णनों से पता चलता है कि बहुत सारे हिन्दू उच्च वर्गीय सुशिक्षित एवं द्धिजीवी लोग सूफियों के खानकाहों में जाते थे और उनसे सम्पर्क के कारण इन्होंने सूफी आचार-विचार, ति-रिवाजों एवं सूफी विचारों को भी अपना लिया था। सूफीवाद को अमर बनाने में मलिक मुहम्मद जायसी मक सूफी कवि और उनके काव्य पद्मावत की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

इकाई (Unit)

3

मुगल साम्राज्य (1526–1707 ई०)

[Mughal Empire (1526–1707 A.D.)]

संरचना

- उद्देश्य (Objectives)
- विषय प्रवेश (Introduction)
- अकबर (1556–1605 ई०) [Akbar (1556–1605 A.D.)]
- अकबर: साम्राज्य–विस्तार (Akbar: Expansion of Empire)
- जहाँगीर (1605–1627 ई०) [Jahangir (1605–1627 A.D.)]
- जहाँगीर: साम्राज्य-विस्तार (Jahangir: Expansion of Empire)
- शाहजहाँ (1627–1658 ई०) [Shahjahan (1627–1658 A.D.)]
- शाहजहाँ: साम्राज्य-विस्तार (Shahjahan: Expansion of Empire)
- क्या शाहजहाँ का काल मुगल-काल का स्वर्ण-काल था? (Was Shahjahan's Period The Golden Era of Mughal Dynasty?)
- औरंगजेब (1658–1707 ई०) [Aurangzeb (1658–1707 A.D.)]
- औरंगजेब: साम्राज्य विस्तार (Aurangzeb: Expansion of Empire)
- मुगल साम्राज्य के पतन के कारण (Reasons for the downfall of Mughal Empire)
- मराठा शक्ति के उत्कर्ष के कारण (Reasons for the rise of Maratha Power)
- छत्रपति शिवाजी (1627-1680) (Chhatrapati Shivaji) (1627-1680 A.D.)
- सारांश (Summary)
- अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
- संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

● उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक समर्थ होंगे—

- अकबर तथा उसके साम्राज्य-विस्तार को जानने में।
- जहाँगीर तथा उसके साम्राज्य-विस्तार को जानने में।
- शाहजहाँ तथा औरंगजेब के चरित्र एवं व्यक्तित्व को जानने में।
- मुगल साम्राज्य के पतन के कारण जानने में।
- मराठा शक्ति के उत्कर्ष के कारण जानने में।
- छत्रपति शिवाजी के जीवन और कार्यों तथा प्रशासनिक व्यवस्था को जानने में।
- मुगल शासकों के समय में साहित्य और कलाओं की प्रगति को जानने में।
- मुगर कालीन समाज एवं अर्थव्यवस्था को जानने में।

मुगल वंश की स्थाना–

बाबर—बाबर ने भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की स्थापना 21 अप्रैल 1526 को पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त करके की। पानीपत का प्रथम युद्ध इतिहास के कुछ प्रमुख निर्णायक युद्धों में से है जिसके माध्यम से हिन्दुस्तान की सर्वोच्च सत्ता अगली लगभग 2 शताब्दियों तक मुगलों के हाथों में आ गई। इस विजय के बाद बाबर आगरा और दिल्ली का स्वामी तो बन गया परन्तु अभी वह भारत में पूर्ण सत्ता का स्वामी होने का दावा नहीं कर सकता था क्योंकि उसे अभी राजपूतों और अफगानों से निबटना था।

बाबर का अगला संघर्ष राजपूत शासक राणा सांगा से हुआ क्योंकि राजपूत एक लम्बे समय तक भारत के शासक रहे थे और बिना एक निर्णायक युद्ध में परास्त हुए भारत में शासन करने के अधिकार को छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे। 16 मार्च 1527 को मुगल एवं भारतीय सेनाओं का खानवा के मैदान में संघर्ष हुआ जिसमें राजपूतों की पराजय हुई। खानवा की विजय के बाद बाबर का भारत पर अधिकार का दावा और अधिक पुष्ट हो गया। इसके बाद चन्देरी के युद्ध में बचे-खुचे राजपूतों और घाघरा के युद्ध में अफगानों को परास्त करके बाबर ने पूरी तरह भारत में मुगल सत्ता की स्थापना कर दी। वह इस साम्राज्य को सुशासन प्रदान कर पाता इससे पहले ही 1530 में उसकी मृत्यु हो गई।

हुमायूँ—बाबर की मृत्यु के पश्चात् दिसम्बर 1530 में उसका ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा। वह जिस समय सिंहासन पर बैठा चारों ओर से कठिनाईयों से घिरा हुआ था। तैमूर के वंशज, जो मिर्जा कहलाते थे, बाबर की मृत्यु के बाद गद्दी प्राप्त करने के लिये सक्रिय हो गये। उसके तीनों भाई भी उसको समर्थन देने के स्थान पर उसके मार्ग में कुछ न कुछ कठिनाईयाँ उपस्थित करते रहे। बाबर ने यद्यपि विजयों के माध्यम से एक साम्राज्य की स्थापना तो कर ली थी परन्तु वह साम्राज्य असंगठित था और राजकोष रिक्त था। इसके अतिरिक्त अफगान भी उसके लिये खतरा बने हुए थे क्योंकि बाबर के द्वारा पराजित किये जाने के बाद भी मन से दिल्ली सल्तनत पर अपने दावे को छोड़ नहीं पाये थे। उन्हें शेर खाँ के रूप में एक योग्य नेता भी मिल गया था। गुजरात का बहादुरशाह भी हुमायूँ के लिये एक संकट बना हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में एक सैनिक प्रतिभा, कूटनीतिक चातुर्य एवं राजनीतिक सूझबूझ से सम्पन्न व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इन सब समस्याओं का समाधान ढूँढ पाता, परन्तु हुमायूँ में न केवल इन गुणों का अभाव था वरन् उसमें कुछ व्यक्तिगत कमजोरियाँ भी थीं जिन्होंने स्थिति को और अधिक गम्भीर बना दिया। उसमें निर्णय शक्ति का अभाव था तथा अफीम के सेवन ने उसकी मानसिक क्षमताओं को और अधिक कमजोर बना दिया था। दूसरी ओर उसका प्रबल शत्रु शेरखाँ अत्यधिक योग्य और वीर था तथा अफगानों की सत्ता की पुनर्स्थापना के लिये कटिबद्ध था। पहले जून 1539 के चौसा के युद्ध तथा बाद में मई 1540 के कन्नौज अथवा बिलग्राम के युद्ध में शेरखाँ से परास्त होकर हुमायूँ शासन से बेदखल होकर अगले 15 वर्ष तक एक भगोड़े का जीवन व्यतीत करता रहा। 1555 में वह शेरशाह के कमजोर उत्तराधिकारियों से सत्ता छीन पाने में सफल रहा, परन्तु अगले ही वर्ष 1556 ई० में उसकी मृत्यु हो गई। मुगलों की सुदृढ़ सत्ता की स्थापना का कार्य किया उसके योग्य पुत्र अकबर ने।

केवल मुगल शासकों में ही नहीं बल्कि संपूर्ण मध्य युग के समस्त भारतीय शासकों में अकबर को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। मुगल साम्राज्य विस्तार करने और उसे स्थायित्व देने का श्रेय अकबर को ही जाता है। इतना ही नहीं, राजस्व वसूली और शासन में जिन नये और उदार सिद्धांतों को उसने अपनाया वह उसे मात्र भारत ही नहीं बल्कि विश्व भर के महानतम शासकों में स्थान देते है। भारत में लगभग 350 वर्ष का मुसलमानों का शासन अकबर के समय तक भारत में अस्थिर था और एक भी मुसलमान शासक न तो अपने राजवंश को स्थिरता दे सका था और न ही शासन के उन सिद्धांतों को ला सका था जिनके आधार पर कोई विदेशी सत्ता और भिन्न धर्म के मानने वाले किसी अन्य देश में स्थायी रुप से निवास करने या शासन करने में समर्थ हो पाते। अकबर से पहले केवल शेरशाह ने, वास्तव में प्रजा की भलाई के आधार पर शासन-सत्ता

स्थापित करने का प्रयास किया था किन्तु शेरशाह को बहुत थोड़ा समय मिला था। उसकी नीति पूरी तरह भी नहीं हो पायी थी और उसके प्रभाव के परिणामों को समझने का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ था कि मृत्यु हो गई। अकबर को अपनी नीतियाँ कार्यान्वित करने एवं उनके प्रभाव को देखने के लिए पर्याप्त मिला। इसके अलावा, वह निश्चय ही शेरशाह की अपेक्षा अधिक उदार, अधिक दृढ़, अधिक बड़ा नीति अधिक व्यापक दृष्टिकोण वाला शासक सिद्ध हुआ। नि:संदेह, अकबर ने अपने राजवंश को स्थायित्व और शासन के उन सिद्धांतों का प्रयोग किया जिनके आधार पर मुगल वंश और इस्लाम के समर्थक शासन पृथक धर्म के मतावलंबियों पर शासन करने का नैतिक अधिकार मिल सका। **यही अकबर की महानता** **लेनपूल** ने लिखा है—"**वह भारतीय बादशाहों में सबसे महान था।**" डॉ० ईश्वरीप्रसाद लि हैं—"अकबर भारतीय इतिहास का ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व के इतिहास में एक महान शासक था अकबर की मौलिक योग्यता और सफलताओं की तुलना तत्कालीन यूरोपीय शासकों से करने से उसकी श्रे सरलता से स्थापित हो जाती है।"

● अकबर (1556–1605 ई०) [Akbar (1556–1605 A.D.)]

अमरकोट के राजा वीरपाल के राज्य में 15 अक्टूबर, 1542 ई० को हमीदा बानू बेगम ने अकबर जन्म दिया। यह वह समय था जब जन्म लेने वाले इस बालक का पिता हुमायूँ, शेरशाह से परास्त होकर सिं इधर-उधर भटक रहा था। जिस समय हुमायूँ भारत से भागकर पर्शिया के शाह के यहाँ शरण के लिए प उस समय वह अपने बेटे अकबर को कंधार के निकट छोड़कर भागा था। अस्करी ने अकबर को अपने संर में ले लिया। 3 वर्ष की आयु में अकबर का प्रथम सम्पर्क अपने पिता से उस समय हुआ जब हुमायूँ ने कं और काबुल पर अधिकार कर लिया था। यहीं उसका नाम 'जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर' रखा गया। परंतु ए बार फिर अकबर को अपने पिता से बिछुड़ना पड़ा। एक युद्ध के दौरान कामरान ने बालक अकबर को कंध के किले की दीवार पर लटका दिया जबकि हुमायूँ की तोपें किले पर गोले दाग रहीं थीं। भाग्य से ही अक बच पाया। पांच वर्ष की आयु से अकबर पिता के साथ ही रहा और उसकी शिक्षा का प्रबंध भी किया गय अकबर ने साहित्यिक शिक्षा में कोई रुचि नहीं दिखायी यद्यपि घुड़सवारी और अस्त्र-शस्त्र चलाने में वह माहि हो गया। उसने गजनी और लाहौर के सूबेदार के रुप में कार्य किया और हुमायूँ की मृत्यु के समय वह पंजाब सिकंदर सूर को परास्त करने के प्रयास मे संलिप्त था। उस अवसर पर वह बैराम खाँ के संरक्षण में कार्य क रहा था। हुमायूँ की मृत्यु का समाचार मिलने पर पंजाब में गुरुदासपुर के निकट कालानौर नामक स्थान पर 1 फरवरी, 1556 ई० को अकबर को मुगल बादशाह घोषित किया गया। उसका राज्याभिषेक बैराम खाँ के सरंक्षण में मिर्जा अबुल कासिम ने किया। उस समय अकबर 14 वर्ष की आयु भी पूरी नहीं कर पाया था।

अकबर को अपने पिता से विरासत में काँटों का ताज प्राप्त हुआ था। भारत से बाहर मुगल साम्राज्य के अंग काबुल, बदख्शां और कंधार थे। काबुल में अकबर का सौतेला भाई मिर्जा हकीम मुनीमखाँ के संरक्षण में शासन कर रहा था। हुमायूँ की मृत्यु का समाचार पाते ही बदख्शां के सूबेदार मिर्जा सुलेमान ने अपने आप को केवल स्वतंत्र ही घोषित नहीं किया बल्कि वह मिर्जा हकीम और अकबर को अपने अधीन करने के लिए तैयार हो गया। उसने इस लक्ष्य से काबुल पर आक्रमण किया। कंधार पर, जो बैरम खाँ की जागीर में था, पर्शिया के आक्रमण का भय बना रहता था। ऐसी स्थिति में अकबर को अफगानिस्तान से कोई सहायता मिलने की आशा न थी बल्कि वहाँ कभी भी सहायता की आवश्यकता हो सकती थी। भारत में दिल्ली, आगरा और इनके निकट के भागो के अतिरिक्त मुगलों के हाथ में कुछ नहीं था। पंजाब मुगलों के अधिकार में होते हुए भी सिकंदर सूर की उपस्थिति के कारण सुरक्षित नहीं था। इस मुगल प्रदेश को अपने अधिकार में बनाए रखने के लिए मुगल सरदार और सेना विभिन्न स्थानों पर इधर-उधर तैनात थी। ग्वालियर, मालवा, बिहार, बंगाल, गुजरात आदि विभिन्न प्रदेशों में अफगान स्वतंत्र हो गए थे और उत्तर भारत का अधिकतर भाग विद्रोही अफगान सरदारों के अधिकार में चला गया था। सूर वंश के उत्तराधिकारी सिकंदरशाह सूर, इब्राहीम सूर और मुहम्मद आदिल सूर

अभी तक सक्रिय थे, और विभिन्न प्रदेशों पर अधिकार जमाए हुए थे और दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। राजस्थान में जोधपुर (मारवाड़) का शासक मालदेव भी जीवित था और उसके अतिरिक्त मेवाड़, आमेर, जैसलमेर आदि के शासकों ने अपनी शक्ति को फिर संगठित कर लिया था। मुगल सरदारों की एकता और स्वामिभक्ति पर निर्भर रहना दिवास्वप्न था। शाह अब्दुल माली, जिसे हुमायुँ 'फर्जंद' (पुत्र) कह कर सम्बोधित करता था, अकबर के राज्याभिषेक में सम्मिलित नहीं हुआ था। आर्थिक दृष्टि से अकबर की स्थिति बहुत दुर्बल थी। हुमायूँ के खजाने में धन नहीं बचा था, अधीनस्थ प्रदेशों से तलवार के बल पर ही लगान या अन्य कर वसूल किए जा सकते थे और दिल्ली एवं आगरा के निकटवर्ती क्षेत्रों में भयंकर दुर्भिक्ष व्याप्त था। इस प्रकार 13 वर्षीय बालक अकबर को सभी विकट परिस्थितियाँ घेरे खड़ी थी। अकबर के लिए पहला संकट मुहम्मद आदिलशाह सूर ने खड़ा किया जिसके आधीन सम्भल से बिहार तक का क्षेत्र था। स्वयं आदिलशाह तो योग्य नहीं था किन्तु उसका वजीर तथा सेनापति हेमू नि:संदेह योग्य था और आदिलशाह के आदेश से उसने आगरा और दिल्ली पर अधिकार जमाने के लिए आगे बढ़ना शुरु कर दिया था।

बैराम खाँ के संरक्षण का समय (1556–1560 ई०)
[Period of Patronage by Bairam Khan (1556–1560 A.D.)]

अकबर ने अपने संरक्षक बैराम खाँ जो, कराकुईलू तुर्क था, को अपना 'वकील' (वजीर) नियुक्त किया और उसे 'खान-ए-खाना- की उपाधि से विभूषित किया। आगामी चार वर्ष वास्तविक रुप से अकबर की नहीं अपितु बैराम खाँ की सत्ता के थे। अकबर की प्रारंभिक कठिनाइयों को दूर करने और भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना करने का श्रेय बैराम खाँ को जाता है। बैराम खाँ मूलत: पर्शिया का रहने वाला था। उसके पिता सैफ अलीबेग ने बाबर के यहाँ नौकरी की थी और स्वयं बैराम खाँ 16 वर्ष की आयु से हुमायूँ की सेवा में आ गया था। वह अत्यंत सुसंस्कृत, शिक्षित, वफादार, साहसी, बहादुर तथा योग्य सैनिक और सेनापति सिद्ध हुआ। उसने हुमायूँ की तरफ से कन्नौज के युद्ध में भाग लिया और उस समय जबकि हुमायूँ कंधार भागने की योजना बना रहा था, वह उससे जाकर मिल गया। उसके पश्चात् वह निरंतर हुमायूँ के साथ रहा और पर्शिया, कंधार, काबुल तथा हुमायूँ की भारत की पुनर्विजय के अवसर पर उसने हुमायूँ की हर प्रकार से सेवा की। हुमायूँ ने उसके इन्हीं गुणों से प्रसन्न होकर 'अमीर' का पद उसको दिया। उसने हुमायूँ की भारत की पुनर्विजय में ही नहीं अपितु अकबर की प्रारंभिक कठिनाइयों को समाप्त करने में भी महत्वपूर्ण सहयोग दिया। कालांतर में बैराम खाँ की विश्वसनीयता बढ़ने के साथ ही उसको संरक्षक खानखाना या खफादार आदि की उपाधि भी मिली। वास्तव में आरंभ में अकबर की स्थिति को दृढ़ करने में सबसे बड़ा हाथ उसी का था। वह फारस के शिया संप्रदाय का सदस्य था।

तथाकथित पर्दा-शासन (1560–1564 ई०)
[The So-called Harem Rule (1560–1564 A.D.)]

बैराम खाँ के पतन में अकबर के संबंधियों और हरम की स्त्रियों का बड़ा हाथ था। कुछ वर्षों तक अकबर ने अपने संबंधियों को शासन में कुछ हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया। इस कारण कुछ इतिहासकारों ने उस समय को पर्दा-शासन अथवा 'पेटीकोट-सरकार' का काल नाम दिया। यह कहना तो गलत होगा कि इस समय में अकबर पूर्णतया हरम की स्त्रियों के प्रभाव में था। यदि ऐसा होता तो अकबर की उदार और साम्राज्यवादी नीति का आरंभ इस काल में नहीं हुआ होता। इसी समय अकबर ने 1562 ई० में 'दास-प्रथा' (युद्धबंदियों को दास बनाना) को समाप्त किया था, 1563 ई० में 'तीर्थयात्रा-कर' (हिंदुओं के तीर्थस्थानों पर लिया जाने वाला यात्री-कर) और 1564 ई० में 'जजिया-कर' समाप्त किया था। इन उदार सुधारों का किया जाना हरम की स्त्रियों के प्रभाव के कारण हो, यह सोचना भूल होगी। इसी प्रकार अकबर की विस्तारवादी नीति भी इसी काल में आरंभ की गई थी। मालवा, चुनार, मेड़ता और गोंडवाना पर अधिकार किया गया था और आमेर (जयपुर) के राजपूत वंश से विवाह-सबंध स्थापित किए गए। नि:संदेह, इस विस्तारवादी नीति का श्रेय अकबर को ही दिया जा सकता है। इस कारण यह कहना उचित नहीं होगा कि अकबर चार वर्षों

(1560–1564 ई०) तक हरम की स्त्रियों के प्रभाव में रहा। हाँ, यह माना जा सकता है कि चार व उसकी नीति पर हरम की स्त्रियों और उसके संबंधियों का कुछ प्रभाव अवश्य रहा और अकबर अपने स्व प्रभाव को अवसर के अनुकूल प्रयोग में ला सका। उसमें भी प्रथम दो वर्षों को ही शामिल करना उचि शम्सुद्दीन का कत्ल, आदमखाँ को मृत्युदंड (1562 ई०) और महिम अनगा की मृत्यु (1562 ई०) के ब अकबर ने अपने आपको अपने निकटस्थ संबंधियों के प्रभाव से मुक्त कर लिया था। 1564 ई० में ख मुअज्जम को दिए गए मृत्युदंड ने इस अध्याय को पूर्ण विराम दे दिया।

● अकबर : साम्राज्य-विस्तार (Akbar : Expansion of Empire)

अकबर महत्त्वाकांक्षी था। उसकी विजय और साम्राज्य-विस्तार की बहुत लालसा थी। मुगल शासक अकबर पहला शासक था जिसने संपूर्ण भारत में मुगल वंश का साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसे राज्य की प्रगति और सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता था। उसका विश्वास था कि "यदि पड़ौसी रा के साथ युद्ध न किया तो वे उसके विरुद्ध आगे बढ़कर युद्ध करेंगे।" अत: जीवनपर्यंत अकबर साम्राज्य विस्तार में लगा रहा। इस कार्य के लिए उसे समय भी मिला और समय के साथ सफलता भी। उसने अ अभियान में काबुल से लेकर बंगाल तक और कश्मीर से लेकर विंध्याचल पर्वत तक के क्षेत्र को अ साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। दक्षिण भारत की ओर भी अकबर ने अपना कदम बढ़ाया था और कु सफलता भी उसे मिली थी, किंतु तभी उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार अकबर ने भारत के बहुत बड़े भाग मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

(1) मालवा— मालवा में बाजबहादुर अधिपति था। वह संगीत और कला का प्रेमी था। अपनी प्रेयस और पत्नी रुपमती के साथ वह संगीत और नृत्य में लीन रहता था। शासन में न उसकी रुचि थी और न उस ओ उसका ध्यान था। 1561 ई० में अकबर ने आदमखाँ को मालवा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। जब मुगल सेना उसकी राजधानी सारंगपुर से केवल 20 मील रह गई तब बाजबहादुर उसका मुकाबला करने के लि निकला। सारंगपुर से कुछ दूर तक युद्ध हुआ, जिसमें बाजबहादुर पराजित हुआ और भाग गया। इस प्रका 29 मार्च, 1561 ई० को मालवा की राजधानी 'सारंगपुर' पर मुगल सेना ने अधिकार कर लिया। आदमखाँ ने उसकी संपूर्ण संपत्ति और हरम पर अधिकार कर लिया। रानी रुपमती ने जहर खाकर अपने सतीत्व की रक्ष की। बाजबहादुर और रुपमती की समाधि उज्जैन में स्थित है। आदमखाँ ने लूटी हुई संपत्ति का अधिकांश भाग अपने पास रख लिया जिससे अकबर क्रुद्ध हो गया और स्वयं सारंगपुर पहुँचा। आदमखाँ के याचना करने पर अकबर ने उसे क्षमा कर दिया और उसी को मालवा का सूबेदार बनाकर वापस आ गया।

1562 ई० में मालवा का सूबेदार मुल्ला पीर मुहम्मद था। उसने वहाँ की प्रजा पर अनेक अत्याचार किए। दक्षिण भारत के शासकों की सहायता पा कर बाजबहादुर ने मालवा पर आक्रमण किया। पीर मुहम्मद उसका मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा, परंतु उसे हारकर भागना पड़ा। नर्मदा नदी को पार करते समय उसका घोड़ा गिर गया और पीर मुहम्मद नदी में डूबकर मर गया। मालवा पर पुन: बाजबहादुर का अधिकार हो गया। परंतु अकबर ने अब्दुल्लाखाँ उजबेग के नेतृत्व में एक मुगल सेना मालवा भेजी जिस बाजबहादुर को परास्त करके मालवा को अपने अधीन कर लिया। बाजबहादुर बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकता रहा, परंतु अंत में उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली और उसे मुगल मनसबदार बना दिया गया।

(2) चुनार—1561 ई० में अकबर ने आसफखाँ को चुनार का किला जीतने का भार सौंपा और उसी वर्ष उस पर अधिकार कर लिया।

(3) गोंडवाना—गोंडवाना का हिंदू राज्य आधुनिक मध्य प्रदेश के उत्तरी जिलों से लेकर दक्षिण भारत की सीमा तक फैला हुआ था। वीरनारायण वहाँ का शासक था, किन्तु उसके वयस्क हो जाने के पश्चात् भी उसकी मां दुर्गावती संरक्षक के रुप में शासन को चला रही थी। दुर्गावती परम साहसी और योग्य शासक थी।

अपनी योग्यता के कारण ही वह मालवा और दक्षिण भारत के मुसलमान शासकों से अपने राज्य की स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ हो सकी थी। अकबर ने आसफखाँ को गोंडवाना विजय के लिए नियुक्त किया। चौरागढ़ के निकट रानी दुर्गावती ने मुगलों की विशाल सेना से मोरचा लिया। वीरनारायण को घायल हो जाने के कारण युद्ध से हटना पड़ा। रानी दुर्गावती भी तीरों से घायल हो गई और वहीं पर अपनी छाती में कटार घोंपकर उसने आत्महत्या कर ली। आसफखाँ ने राजधानी चौरागढ़ पर आक्रमण किया। राजपूत स्त्रियों ने जौहर कर लिया, वीरनारायण और अनेक राजपूत युद्ध मे काम आए। 1564 ई० में किले पर मुगलों का अधिकार हो गया बहुत-सा धन, हाथी और सामान आसफखाँ के हाथ लगा। आसफखाँ ने लूट का बहुत थोड़ा भाग अकबर के पास भेजा और अधिकांश स्वयं अपने पास रख लिया।

रानी दुर्गावती के साहस, योग्यता और बहादुरी की सभी इतिहासकारों ने भूरी-भूरी प्रशंसा की है। महोबा के चंदेल वंश से संबंधित इस रानी की प्रजा भी उसके शासन से पूर्ण संतुष्ट और प्रसन्न थी। अकबर का साम्राज्य-विस्तार की लालसा के अतिरिक्त इस राज्य पर आक्रमण करने का कोई अन्य कारण नहीं था।

(4) राजस्थान—राजस्थान को अधीनता में लाना भी अकबर की विस्तारवादी नीति का ही एक अंश था। राजपूत शासकों के प्रति अकबर की नीति अन्य शासकों से अलग थी। राजस्थान में राज्य-विस्तार के विषय में उसकी नीति की कुछ विशेषताएँ थीं जो इस प्रकार थीं—(i) महत्त्वपूर्ण दुर्गों पर अधिकार (ii) स्वेच्छापूर्वक अधीनता स्वीकार करने वाले अथवा विवाह-संबंधों में बंधने वाले राजपूत राजाओं को अपनी अधीनता में लेना और उनको मुगल सेवा में लेकर उनके राज्य उन्हीं को वापस कर देना तथा (iii) विरोधी राजाओं से युद्ध करके उन्हें अपनी अधीनता में लाना। इस नीति का पालन करते हुए अकबर ने राजस्थान में अपार सफलता प्राप्त की। राजस्थान के सभी महत्त्वपूर्ण दुर्ग मुगलों के अधिकार में चले गए और मेवाड़ को छोड़कर लगभग सभी राजपूत राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। इनमें प्रमुख राज्य निम्न प्रकार थे।

(i) आमेर (जयपुर)—आमेर का शासक भारमल (बिहारीमल) पहला राजपूत राजा था जिसने स्वेच्छा से अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। 1562 ई में जब अकबर अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की यात्रा पर गया तो मार्ग में राजा भारमल ने उससे भेंट की और अपनी पुत्री का विवाह अकबर से करने की इच्छा व्यक्त की। अकबर ने इसे स्वीकार कर किया। इसी राजपूत पत्नी से अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर का जन्म हुआ। अकबर ने भारमल के पुत्र भगवानदास और पोते मानसिंह को मुगल-सेवा में स्थान दिया और उन्हें उच्च मनसबदार बनाया।

(ii) मेड़ता—मेड़ता मेवाड़ के राजा उदयसिंह के अधीन जागीरदार जयमल के अधिकार में था। जब मुगल अधिकारी सर्फुउद्दीन ने उस पर आक्रमण किया तो जयमल किले को छोड़कर भाग गया। देवदास ने मुगलों का सामना किया परंतु उसे उसके 200 साथियों के साथ समाप्त कर दिया गया और मेड़ता का किला 1562 ई० में मुगलों के अधिकार में चला गया।

(iii) मेवाड़—मेवाड़ के शासकों ने निरंतर मुगल-सत्ता का विरोध किया। राणा साँगा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ के सम्मान में कुछ कमी आई थी किन्तु धीरे-धीरे उसने पुन: अपनी शक्ति और सम्मान पा लिये थे। मेवाड़ के सिसोदिया वंश को उस समय भी राजस्थान में सम्मान प्राप्त था। तत्कालीन शासक उदयसिंह ने भी उसकी शक्ति के विकास में सहयोग दिया था। उसने अकबर का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। वह आमेर के कछवाह राजवंश को हेय दृष्टि से देखता था क्योंकि उस वंश ने अकबर से वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिए थे। राणा ने अकबर के शत्रु बाजबहादुर को शरण दी थी और विद्रोही मिर्जाओं को भी उसका संरक्षण प्राप्त था। गुजरात और उत्तर भारत के मार्ग पर मेवाड़ स्थित था। गुजरात की विजय के लिए मेवाड़ पर अधिकार करना आवश्यक था। सबसे प्रमुख बात यह भी थी कि मेवाड़ की सत्ता और सम्मान को समाप्त किए बिना राजस्थान और उत्तर भारत की विजय पूर्ण नहीं हो सकती थी। इस कारण 1567 ई० में अकबर ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। अपने सरदारों के परामर्श को मानकर राणा उदयसिंह चित्तौड़ के किले से निकलकर

जंगलों में चला गया और जयमल को किले की रक्षा का भार दिया गया। लगभग पाँच महीने तक किले क
पड़ा रहा परंतु मुगलों से सफलता दूर ही रही। एक रात जब जयमल किले की टूटी हुई दीवार की मरम्मत
रहा था तभी अकबर ने अपनी बंदूक से निशाना लगाया जिससे जयमल घायल हो गया और उसकी मृत्
गई। रात को राजपूत स्त्रियों ने 'जौहर' किया और प्रात:काल फतहसिंह (फत्ता), उसकी माँ और पत्नी के
में राजपूतों ने मुगलों पर धावा बोल दिया और अंत तक लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गए। अकबर ने कि
प्रवेश करके कत्ले आम का आदेश दिया जिसमें हजारों राजपूत मारे गए। यह अकबर के नाम पर एक
धब्बा है, यद्यपि बाद में उसने आगरा के किले के द्वार पर जयमल और फतहसिंह की हाथी पर बैठी हुई मू
स्थापित की थीं। आसफखाँ को किले का अधिकारी बनाकर अकबर आगरा चला गया।

(iv) रणथम्भौर—रणथम्भौर का किला राजा सुरजनराय के आधिपत्य में था जो मेवाड़ के अधीन
1569 ई० में मुगलों ने उस पर आक्रमण किया। डेढ़ महीने के घेरे के पश्चात् किला मुगलों को सौंप
गया। इस प्रकार 18 मार्च, 1569 ई० को इस दुर्ग को भी अकबर ने अपने अधिकार में ले लिया।

(v) कालिंजर—उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में स्थित यह किला अभेद्य माना जाता था। यह रीवां के
रामचंद्र के अधिकार में थ। 1569 ई० में कालिंजर के अभेद्य किले पर अकबर का अधिकार हो गया। अ
ने मजनूखाँ को किले पर आक्रमण करने के लिए भेजा था किन्तु किले के स्वामी राजा रामचंद्र ने चित्तौड़
रणथम्भौर के किलों के पतन से सबक ले लिया था। अत: बिना किसी विरोध एवं बिना रक्त पात के
किले को मुगलों के हवाले कर दिया।

(vi) मारवाड़—1570 ई० में मारवाड़ ने स्वेच्छा से बिना किसी प्रकार के विरोध के अकबर
आधिपत्य स्वीकार कर लिया। अकबर के दृढ़ निश्चय, उसकी सफलता, कूटनीति, चितौड़ एवं रणथम्भौ
किलों के पतन ने राजपूत शासकों की विरोध करने की शक्ति समाप्त कर दी थी। यही नहीं, राजपूत शासक
प्रति अकबर की उदारता की नीति और धर्म सहिष्णुता भी विभिन्न राजपूत राजाओं के आत्मसमर्पण के
उचित मानी जा सकती है। जोधपुर के शासक मालदेव स्वर्गवासी हो चुके थे। उनके पुत्र और तत्कालीन शा
राजा चंद्रसेन ने (उसके पश्चात् उदयसिंह ने) अकबर से भेंट की और उसकी अधीनता स्वीकार कर
बीकानेर के शासक राय कल्याणमल और जैसलमेर के शासक हरराय ने भी अकबर से भेंट की और न के
उसकी अधीनता स्वीकार की अपितु उसके साथ विवाह-संबंध भी स्थापित किया।

इस प्रकार, 1570 ई० तक मेवाड़ के अधीन कुछ किलों और अधीन प्रदेशों को छोड़कर राजस्थान
सभी शासक मुगल शासन के अधीन हो गए। अकबर पहला मुसलमान शासक था जिसने राजस्थान में इ
अधिक सफलता प्राप्त की। राजपूत शासकों ने अकबर की अधीनता ही स्वीकार नहीं की थी बल्कि वे उस
सेवा में जाना भी अपना सौभाग्य मानते थे। अकबर ने राजस्थान के कुछ महत्त्वपूर्ण किलों पर ही मु
आधिपत्य स्थापित किया था। प्राय: सभी राजपूत शासकों के राज्य उनको वापस कर दिए थे। उनकी वि
नीति अकबर ने अवश्य अपने हाथों में रखी और उन सभी को या उनके संबंधियों को मुगल मनसबदार
दिया। **कर्नल टॉड** ने लिखा है—"वास्तव में मुगल साम्राज्य का संस्थापक अकबर था। वह राजपूत स्वतं
का प्रथम सफल विजेता था।"

(5) हल्दीघाटी का युद्ध (18 जून, 1576 ई०)—उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ का शा
महाराणा प्रताप हुआ। अकबर ने अप्रैल, 1576 ई० में आमेर के राजा मानसिंह तथा आसफ खाँ के नेतृत्व
मेवाड़ को पूर्णरुप से जीतने के लिए मुगल सेना को भेजा। दोनों ओर की सेनाओं में गोलकुंडा के नि
अरावली पहाड़ी की 'हल्दी घाटी' में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राणा प्रताप पराजित हुए। उनकी जान झाला
नायक की नि:स्वार्थ भक्ति के कारण बच सकी क्योंकि उसने अपने को राजा घोषित कर शाही दल
आक्रमण को अपने ऊपर ले लिया था। राणा ने चेतक पर सवार होकर पहाड़ियों की ओर भागकर जान बच
यह अभियान मेवाड़ पर पूर्ण अधिकार के बिना समाप्त हो गया।

1599 ई० में राणा प्रताप की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अमरसिंह उत्तराधिकारी हुआ। उसके शासनकाल में 1599 ई० में मानसिंह के नेतृत्व में एक बार फिर मुगल सेना ने आक्रमण किया। अमरसिंह की पराजय के बाद मेवाड़ अभियान अधूरा रहा जिसे बाद में जहाँगीर ने पूरा किया।

(6) काबुल—अकबर का सौतेला भाई हकीम मिर्जा काबुल का शासक था। 1566–67 ई० उसने पंजाब पर आक्रमण किया परंतु उसे विफल कर दिया गया। 1581 ई० में उसने भारत पर पुनः आक्रमण किया। उस समय बंगाल और बिहार में विद्रोह हो रहा था और विद्रोही सरदार अकबर के स्थान पर हकीम मिर्जा को दिल्ली के सिंहासन पर बैठाने के लिए उत्सुक थे। अकबर की धार्मिक नीति से असंतुष्ट होकर कुछ मुल्ला-मौलवियों ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह करना अपना धार्मिक कर्तव्य बना लिया था। अकबर के कुछ प्रतिष्ठित सरदार भी अकबर के विरुद्ध हकीम मिर्जा से सम्पर्क कर रहे थे। ऐसी स्थिति में हकीम मिर्जा को लाभ प्राप्त होने की आशा थी। परंतु जब वह सिंधु नदी पार करके लाहौर की तरफ बढ़ा तभी अपनी आशा के विपरीत उसने देखा कि पंजाब में उसे कोई सहायता नहीं मिल रही थी। इस बीच अकबर स्वयं उसका मुकाबला करने के लिये आगे बढ़ा। हकीम मिर्जा ने जब यह देखा कि भारत में अकबर की स्थिति सुदृढ़ है और यहाँ उसे कोई सहायता नहीं मिल सकेगी तब वह काबुल वापस लौट गया। अकबर ने राजा मानसिंह को काबुल पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ाया और स्वयं भी धीरे-धीरे उधर बढ़ा। राजा मानसिंह ने काबुल पर अधिकार कर लिया और हकीम मिर्जा बिना लड़े भाग गया। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार करने का संदेश भेजा परंतु अकबर ने उससे व्यक्तिगत रुप में उपस्थित होने की माँग की जिसे उसने स्वीकार नहीं किया। अकबर उसकी बहन बख्तुन्निसा बेगम को काबुल का सूबेदार बनाकर वापस लौट आया।

अकबर के वापस चले जाने पर हकीम मिर्जा काबुल पहुँचा और स्वयं शासन की देखभाल करने लगा यद्यपि नाम उसकी बहन का ही रहा। परंतु उसी वर्ष जुलाई 1581 ई० में उसकी मृत्यु हो गई। अकबर ने काबुल को मुगल साम्राज्य में मिला लिया (1581 ई०)। राजा मानसिंह को वहाँ का सूबेदार बना दिया।

अफगानिस्तान और भारत के मध्य उत्तर–पश्चिम सीमा पर विभिन्न कबाइली जातियाँ रहती थीं। ये जातियाँ स्वतंत्र प्रकृति की थीं और इनकी जीविका का मुख्य साधन मार्ग पर जाते हुए व्यापारिक काफिलों को लूटना अथवा मैदानी भागों पर अचानक आक्रमण करके लूटमार करना था। अकबर ने इन्हें अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। 1600 ई० में रोशनिया कबीले के सरदार जलालखाँ को गजनी के निकट मौत के घाट उतार दिया। यूसुफजई भी मुगलों को बहुत परेशान कर रहे थे। अकबर ने एक विशाल सेना राजा बीरबल और जैनखाँ के नेतृत्व में यूसुफजई कबीले का दमन करने के लिए भेजी। उस सेना पर धोखे से आक्रमण किया गया। उस लड़ाई में राजा बीरबल मारा गया। उसके पश्चात् अकबर ने राजा टोडरमल और शाहजादा मुराद के नेतृत्व में और सेना भेजी जिसने यूसुफजइयों को बुरी तरह से परास्त किया। परंतु तब भी उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में लूटमार और उपद्रव बन्द नहीं हुए।

(7) यूरोप-निवासी—अकबर के शासनकाल में यूरोप के देशों यथा पुर्तगाली, अंग्रेज और हालैंड निवासी भारत में पहुँच गए थे। परंतु 16 वीं शताब्दी में भारतीय समुद्र तट पर पुर्तगाली ही प्रभावी थे। अंग्रेजों और हालैंड निवासियों को इस शताब्दी में कोई व्यापारिक लाभ प्राप्त नहीं हुआ। पुर्तगालियों ने गोवा, चौल, बंबई तथा निकट के समुद्र तट पर अपना प्रभाव अवश्य स्थापित कर लिया था, किन्तु प्रभुत्व नहीं। अकबर के दरबार में उन्होंने समय-समय पर ईसाई पादरी भेजे, चर्च स्थापित करने की अनुमति ली और अकबर को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का प्रयास भी किया। परंतु मधुर संबंध के अतिरिक्त पुर्तगाली अन्य कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सके।

(8) दक्षिण भारत (अहमदनगर और खानदेश)—दक्षिण भारत को अपनी अधीनता में लाने के लिए अकबर बहुत उत्सुक था। तदर्थ 1591 ई० में उसने दक्षिण भारत के खानदेश, बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुंडा के शासकों के पास संदेश भेजा कि वे उसकी अधीनता स्वीकार कर लें। खानदेश का राज्य मुगलों

की सीमा के सबसे निकट था और वास्तव में दक्षिण भारत के लिए प्रवेश-द्वार था। उसके शासक अलीख आधिपत्य स्वीकार कर लिया और वार्षिक कर देने के लिए राजी हो गया। शेष तीनों राज्यों ने अकबर प्रस्ताव विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। 1593 ई० में शाहजादा मुराद और अब्दुर्रहीम खानखाना अहमदनगर पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। 1594 ई० में अहमदनगर के शासक बुरहान-उल-मु की मृत्यु हो जाने पर राज्य में आंतरिक कलह आरंभ हो गयी और राज्य के एक दल ने मुराद को अ सहायता के लिए आमंत्रित भी कर दिया। परंतु मुगलों के वहाँ पहुँचने से पहले ही वजीर मिंदान मंजू ने वि को दबा दिया, स्वयं बीजापुर की सीमा पर पहुँचकर किले की सुरक्षा का दायित्व चाँदबीबी को सौंप दि चाँदबीबी ने इब्राहीम के अल्पायु पुत्र बहादुरशाह को सुल्तान घोषित कर दिया तथा स्वयं उसकी संरक्षिका गई। 1595 ई० में मुगलों ने अहमदनगर का घेरा डाला। कई महीने तक चाँदबीबी ने बड़ी योग्यता से किले रक्षा की। 1596 ई० में पारस्परिक मतभेद, रसद की कमी और बीजापुर एवं गोलकुंडा से अहमदनगर के कि सहायता आ जाने की संभावना के कारण मुगलों ने संधि करना उचित समझा। चाँदबीबी संधि के लिए तैयार गयी। संधि के अंतर्गत बुरहान-उल-मुल्क के पौत्र बहादुरशाह को अहमदनगर का शासक स्वीकार कर लि गया। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तथा बरार का प्रदेश और अन्य बहुत-सी भेंट मुगलों को परंतु यह संधि अधिक समय न चल सकी। चाँदबीबी ने अपने आप को शासन से पृथक कर लिया और अ सरदारों ने संधि को ठुकराकर बरार को मुगलों से छीनने का प्रयास किया। अकबर ने खानखाना और मुराद अहमदनगर पर पुन: आक्रमण करने का आदेश दिया, परंतु दोनों में मतभेद देखकर खानखाना के बजाय अबु फजल को मुहिम पर भेजा गया। 1597 ई० में शाहजादा मुराद की मृत्यु हो गई। तब खानखाना को शाहजा दानियाल के साथ भेजा गया। स्वयं अकबर भी दक्षिण की ओर चला। 1599 ई० में दौलताबाद पर मुगलों आधिपत्य हो गया और 1600 ई० में अहमदनगर के किले को मुगलों ने जीत लिया। इससे पहले ही चाँदबी को, जिसने मुगलों से संधि करने का प्रस्ताव रखा था, या तो उसी के सरदारों ने मार दिया अथवा उसने स्व आत्महत्या कर ली कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। बालक निजामशाह को ग्वालियर के दुर्ग में बंदी बनाक भेज दिया गया। इस प्रकार, लम्बे संघर्ष के उपरान्त बरार, दौलताबाद और अहमदनगर के किले मुगलों अधीन हो गए। परंतु इससे अहमदनगर का राज्य समाप्त नहीं हुआ। अहमदनगर के सरदार एक अन बालक-शासक के नाम से मुगलों से संघर्ष करते रहे और अहमदनगर राज्य का अधिकांश भाग मुगल सत्ता बाहर ही रहा।

खानदेश का शासक राजा अलीखाँ मुगलों के प्रति वफादार रहा और अहमदनगर के युद्ध में लड़ता हुआ काम आया। उसके पुत्र मीरन बहादुरशाह ने मुगल आधिपत्य को स्वीकार करने से मना कर दिया और अपने पिता से की गई मुगलों की संधि को भी नकार दिया। अहमदनगर से युद्ध चल ही रहा था कि खानदेश ने अपने आप को स्वतंत्रत घोषित कर दिया। 1599 ई० में स्वयं अकबर ने खानदेश की राजधानी बुरहानपुर पर आक्रमण करके उसे जीत लिया। परंतु मीरन बहादुरशाह ने अपनी सुरक्षा का प्रबंध असीरगढ़ के किले में कर लिया। अकबर ने असीरगढ़ दुर्ग का घेरा डाल दिया और उसके दरवाजे को 'सोने की चाभी' से खोला अर्थात् अकबर ने खुले दिल से खानदेश के अधिकारियों तथा जनता में धन बाँटा और उन्हें कपट से अपनी ओर मिला लिया। 21 दिसंबर, 1600 ई० को मीरन बहादुर ने आत्मसमर्पण कर दिया। परन्तु अकबर ने अंतिम रुप से इस दुर्ग को अपने अधिकार में 6 जनवरी, 1601 ई० को लिया। असीरगढ़ दुर्ग की विजय अकबर की अंतिम विजय थी। मीरन बहादुर को ग्वालियर के किले में बंदी बनाकर भेज दिया गया और 4,000 अशर्फियाँ वार्षिक उसके निर्वाह के लिए निश्चित कर दी गई।

इस प्रकार, 1600 ई० तक मुगलों ने खानदेश के स्वतंत्र राज्य को समाप्त कर दिया और अहमदनगर से बरार तथा कुछ अन्य भू-प्रदेश झपट लिए। बुरहानपुर, असीरगढ़, दौलताबाद और अहमदनगर के नगर और दुर्गों पर भी अधिकार कर लिया गया।

इस प्रकार अकबर ने अपने शासन काल में न केवल मुगल साम्राज्य को उत्तर भारत में स्थायी बनाया बल्कि उसका भरपूर विस्तार भी किया। अपनी विजयों में अकबर ने कंधार और काबुल से लेकर बंगाल तक

और कश्मीर से लेकर बरार तक का भू-क्षेत्र मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया। उसके समय में मुगल साम्राज्य भारत में सर्वाधिक विस्तृत और शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। मुगलों के विरोधी अफगान पूरी तरह समाप्त कर दिए गए। अब वे केवल पराधीन जागीरदार भर रह गए थे और स्वतंत्र राज्य की इच्छा भी उनकी नियति के बाहर की बात हो गई थी। राजपूत शासक (मेवाड़ को छोड़कर) मुगलों के विरोधी न होकर सहायक तथा समर्थक बन गए थे और मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अकबर संपूर्ण भारत को तो विजय न कर सका, परन्तु उत्तर भारत पूर्णतया उसके अधीन हो गया तथा दक्षिण भारत में भी वह प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार उसने अपने उत्तराधिकारियों के लिए संपूर्ण भारत पर विजय पाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

अकबर की राजपूत नीति—इतिहास में अकबर की प्रसिद्धि के बहुत सारे कारणों में एक महत्वपूर्ण कारण था उसका राजपूतों के प्रति व्यवहार अथवा उनके सम्बन्ध में अपनाई गई नीति। अकबर का प्रारम्भ से ही ऐसे मुसलमानों से सम्पर्क पड़ा जिन्होंने उसका तरह-तरह से विरोध किया अथवा अपनी स्वार्थ सिद्धी में ही लीन रहे। उनके व्यवहार ने अकबर को यह पूरा विश्वास दिला दिया कि उसके मुसलमान कर्मचारी एवं अनुयायी, यहाँ तक कि उसके सगे-सम्बन्धी भी, किसी भी प्रकार से विश्वास के योग्य नहीं है। इसके विपरीत अकबर को राजपूतों के इतिहास, परम्पराओं, वीरता एवं पराक्रम तथा वफादारी इन सबका भी पूरा पता था। उस आधार पर अकबर ने यह निष्कर्ष निकाला कि राजपूत पूर्णरूप से विश्वास के योग्य हैं और न केवल उसकी स्थिति को मजबूत करने में सहायक होंगे वरन् वे उसके शासन का एक प्रबल आधार-स्तम्भ भी बन सकते हैं।

राजपूतों से विवाह सम्बन्ध—अकबर ने राजपूतों के साथ जिस नीति का पालन किया वह थी उनके साथ विवाह सम्बन्धों द्वारा मैत्री स्थापित करना। अकबर के साथ वैवाहिक सम्बन्धों में बँधने वाला पहला राजपूत राज्य था आमेर (जयपुर), जिसके शासक भारमल ने 1562 ई० में अकबर के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। इसके बाद एक-एक करके राजपूताना के अन्य बहुत सारे राज्यों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तथा अपनी पुत्रियों का विवाह उसके साथ कर दिया। परन्तु कुछ राज्य ऐसे थे जिन्होंने अकबर की अधीनता को स्वीकार नहीं किया और सतत् संघर्षशील रहे। इन राज्यों में मेवाड़ प्रमुख था।

अकबर की राजपूत नीति के परिणाम—अकबर ने जिन राजपूत राज्यों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किये उनके शासकों तथा उनके सम्बन्धियों को उच्च मनसब प्रदान किये तथा दरबार में सम्माननीय स्थिति में प्रतिष्ठित किया। ये सभी राजपूत आजीवन अकबर के प्रति स्वामिभक्त बने रहे तथा विभिन्न विजय अभियानों में भी उसका महत्वपूर्ण सहयोग किया। अकबर के द्वारा राजपूतों के प्रति मित्रतापूर्ण व्यवहार के परिणाम अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण हुए। पहली बात तो यह कि अकबर की इस नीति के कारण राजपूतों को धीरे-धीरे इस बात को स्वीकार कर लेने में आसानी हुई कि भारत से उनकी सत्ता वास्तव में समाप्त हो गई है। इस प्रकार कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकांश राजपूत राज्यों ने मुगल साम्राज्य की स्थापना को स्वीकृति प्रदान कर दी और विरोध करना बंद कर दिया। दूसरी बात, इन राजपूत राज्यों ने मुगल शासन का स्वामिभक्त बनकर साम्राज्य के संगठन एवं विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तीसरी बात, इन राज्यों ने देश के सांस्कृतिक विकास में अपना योगदान दिया। इस प्रकार देश की राजनीतिक-सांस्कृतिक एकता तथा आर्थिक विकास में देश के एक बड़े वर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जो उससे अलग रहा था। इस प्रकार सही अर्थों में अकबर का साम्राज्य हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों पर आधारित 'राष्ट्रीय राज्य' बन गया।

अकबर की धार्मिक नीति का विकास—अकबर की गणना विश्व के कुछ महानतम शासकों में की जाती है। उसकी महानता का कारण उसकी धार्मिक उदारता एवं विभिन्न विरोधी वर्गों के बीच समन्वय था। एक ओर तो उसने बाल-हत्या एवं सती जैसी सदियों से प्रचलित कुरीतियों को दूर किया तथा दूसरी ओर तीर्थ यात्रीकर एवं जजिया जैसे घृणित करों को हटाकर हिन्दुओं को समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया।

अकबर को विरासत में ही उदार विचार प्राप्त हुए थे और उसका प्रारम्भिक सम्पर्क भी उदारवा व्यक्तियों से ही हुआ था। अबुल फजल और फैजी ने अकबर की वैचारिक उदारता को दृढ़ करने में महत्वप भूमिका निभायी और उसके शिक्षक अब्दुल लतीफ ने उसे 'सुलह कुल' (सबके साथ शांति) का पाठ पढ़ा राजपूत स्त्रियों के सम्पर्क ने उसको और भी अधिक उदार बनाया। उसके प्रारम्भिक कार्यों जैसे युद्ध में पक गये सैनिको को बंदी बनाकर मुसलमान बनाये जाने के घृणित नियमों को बंद करना, हिन्दुओं की तीर्थयात्रि पर लगाये जाने वाले तीर्थयात्री कर को समाप्त करना एवं घृणित जजिया कर को समाप्त करने आदि में उसक उदारता स्पष्ट रूप से झांकती है।

इबादतखाने का निर्माण—1575 ई० में अकबर ने फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना अथ पूजागृह बनवाया जहाँ पर दार्शनिक एवं धार्मिक विषयों पर विचार विमर्श होता था। इस इबादतखाने में इस्ला धर्म के ज्ञाताओं के ज्ञान के अधूरेपन और व्यवहार की असहिष्णुता से अकबर अत्यधिक निराश एवं क्रोधित ह हुआ और सत्य की खोज के लिये दूसरे धर्मों की और आकर्षित भी हुआ। विभिन्न धर्मावलम्बियों के विचार का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा।

मजहर—1579 में अकबर ने एक प्रपत्र पेश किया, जो इतिहास में मजहर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके द्वारा अकबर को समस्त देश में इस्लाम सम्बन्धी विवादों में 'पंच निर्णय' का अधिकार मिल गया। इस घोषणा के पीछे अकबर का उद्देश्य इस्लाम की रूढ़िवादिता और विभिन्न धर्मों के बीच अनावश्यक विवादों को समाप्त करना था।

दीन-ए-इलाही—अकबर के धार्मिक विचारों के विकास की सर्वाधिक परिपक्व अभिव्यक्ति दीन-ए-इलाही में परिलक्षित होती है। प्रारम्भ से लेकर अंत तक अकबर की जो धार्मिक मान्यतायें बनी थी, दीन-ए-इलाही उनका निचोड़ था। 1582 ई० में अकबर ने दीन-ए-इलाही की घोषणा की। यद्यपि विद्वानों ने दीन-ए-इलाही को एक नवीन धर्म कहकर इसकी आलोचना की है परन्तु वस्तुत: दीन-ए-इलाही कोई नया धर्म नहीं था वरन् यह तो आदर्श जीवन-यापन का एक तरीका था। तत्कालीन समाज में विरोधी वि बीच सामंजस्य स्थापित करने का यह एक प्रयत्न था। न तो इसकी कोई धार्मिक पुस्तक थी और न ही कोई धर्म गुरु। यह अकबर की धार्मिक सहिष्णुता तथा विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण था।

अकबर की मृत्यु (Demise of Akbar)

3 अक्टूबर, 1605 ई० को अकबर अस्वस्थ हो गया। उसे पेचिश का रोग अथवा इसी प्रकार की कोई अन्य बीमारी थी। उसके रोग का ठीक प्रकार निदान न हो सका और 25 अक्टूबर, 1605 ई० को उसने अंतिम सांस की। अकबर को बौद्ध प्रभाव से प्रभावित सिकंदरा (आगरा) के मकबरे में दफनाया गया। सलीम के अतिरिक्त अकबर के सभी पुत्र पहले ही काल कवलित हो चुके थे, अत: अकबर की मृत्यु के समय उसका एकमात्र जीवित पुत्र सलीम उसका उत्तराधिकारी था।

अकबर का चरित्र : मूल्यांकन तथा इतिहास में स्थान [Akbar's Character : Assessment and Historical Importance of Akbar]

अकबर मुगल शासकों में सर्वश्रेष्ठ, भारतीय शासकों में महान और विश्व के शासकों में श्रेष्ठ और सम्मानित पद पर आसीन है। सभी समकालीन और आधुनिक इतिहासकारों ने अकबर की एकमत से प्रशंसा की है। लेनपूल ने उसे "**भारत के बादशाहों में सर्वश्रेष्ठ बादशाह**" और "**साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक एवं व्यवस्थापक**" कहा है। इतिहासकार स्मिथ, जो अनेक प्रकार से अकबर की कटु आलोचना करता है, इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि, "**वह मनुष्यों का जन्मजात बादशाह था। इतिहास के सर्वशक्तिशाली बादशाहों में से एक होने का उसका न्यायपूर्ण अधिकार है। निस्संदेह, उसके इस अधिकार का आधार उसके प्रकृतिदत्त असाधारण गुण, उसके मौलिक विचार और उसकी सफलताएँ थी।**"

इस प्रकार, इतिहास में अकबर को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। अकबर का व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली था। वह आज्ञाकारी पुत्र, आदर्श पति और आदरणीय पिता था। वह अपने समस्त संबंधियों, मित्रों तथा अनुयायियों से प्रेम और आदर का व्यवहार करता था। वह अबुल फजल की मृत्यु पर बहुत रोया था और दो दिन तक उसने भोजन भी ग्रहण नहीं किया था। वह मानवीय गुणों से भी ओत-प्रोत था जिसके कारण वह अपनी प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों को समझता था और जनसाधारण तथा निर्धनों के प्रति अत्यधिक प्रेम, उदारता तथा सहिष्णुता का व्यवहार करता था। वह स्वस्थ और शक्तिमान था। वह शिक्षित न था, परंतु उसने विद्वानों को सम्मान और आश्रय प्रदान दिया। उसने एक पुस्तकालय की व्यवस्था की जिसमें 24,000 ग्रंथ थे जिनका मूल्य लगभग 65 लाख रुपये था। उसे खेलकूद और शिकार का भी शौक था। हथियार चलाने, बंदूक का निशाना लगाने तथा घुड़सवारी में वह लासानी था। कठोर परिश्रम करने तथा कठिनाइयों को सहन करना उसका स्वभाव था। वह साहस और धैर्य का जीता-जागता उदाहरण था। उसने अनेक अवसरों पर युद्ध में अपने स्वयं के जीवन को संकट में डाला था। ईश्वर में उसका अटूट विश्वास था, किन्तु सभी धर्मों के प्रति उसका व्यवहार उदार था। वह धार्मिक दृष्टि से अपने युग का प्रवर्तक था। अकबर शिक्षित न था परंतु विभिन्न विद्वानों के निकट संपर्क में आकर उसने दर्शन, धर्म, साहित्य, इतिहास आदि विभिन्न विधाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसके व्यावहारिक ज्ञान की गहनता इससे प्रकट होती है कि उसने धर्म, राजनीति, समाज-सुधार और सैनिक तथा असैनिक शासन में मौलिक नीतियों, विचारों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया और उनका सफल व्यावहारिक प्रयोग भी किया। उसकी स्मरण-शक्ति बहुत अद्‌भुत थी। वह सुनकर अनेक बातों को विस्तृत रुप से स्मरण कर लेता था। अकबर शराब, अफीम आदि मादक-द्रव्यों का सेवन करता था परंतु वह इनमें से किसी भी व्यसन का आदी नहीं था और जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती गई वह संयमी होता चला गया, यहाँ तक कि उसने अपने जीवन के संध्या काल में मांस का प्रयोग भी कम कर दिया था अथवा समाप्त ही कर दिया। अकबर ने समकालीन अन्य शासकों की भाँति अनेक विवाह किए थे। उसके हरम में लगभग 5,000 स्त्रियाँ थीं और उनमें रखैलों की संख्या भी पर्याप्त रही होगी। परंतु जैसा कि प्रति सप्ताह मीना बाजार लगाकर सुंदर स्त्रियों को खोजना और बीकानेर के पृथ्वीराज राठौर की पत्नी का शील भंग करने की चेष्टा, आदि दंत कथाएं अकबर के चरित्र के साथ जोड़ी जाती हैं, वे उचित प्रतीत नहीं होतीं। संभवत: युवावस्था में उसका चरित्र उच्छृंखल रहा हो परंतु जैसे-जैसे अकबर की आयु बढ़ती गई, वह गंभीर और संयमी होता गया। उसके प्रारंभिक जीवन की ऐसी घटनाएँ भी ज्ञात होती हैं जब उसने उत्तेजना और क्रोधवश कार्य किए थे, परंतु उसके बाद के जीवन में ऐसी घटनाएँ नहीं सुनी जाती।

अकबर एक कुशल सैनिक और योग्य सेनापति था। उसने अनेक युद्धों का साहस और वीरता से संचालन किया। उसने सेनापति के रुप में अनेक सैनिक अभियानों में सफलता प्राप्त की। उसके समय में मुगल सेना अत्यंत द्रुतगामी थी। गुजरात के विद्रोह को दबाने के लिए वह जिस गति से गया था वह एक 'ऐतिहासिक सैनिक-अभियान' माना गया है। उसने सेना का श्रेष्ठ संगठन किया। उसके समय में मुगल सेना अजेय बन गई थी। संगठन और युद्ध-नीति दोनों ही इसके लिए उत्तरदायी थे और अकबर का इसमें बहुत बड़ा सहयोग होता था। अकबर के शासनकाल का इतिहास निरंतर सफल और विजयी युद्धों और राज्य-विस्तार का रहा।

शासन-प्रबंध की दृष्टि से अकबर में मौलिकता एवं व्यावहारिकता दोनों ही थीं। मुगल शासन-व्यवस्था को स्थापित करने का श्रेय अकबर को है। उसकी केंद्रीय शासन-व्यवस्था तथा शासक के पद और अधिकारों एवं कर्तव्यों की व्याख्या, उसका प्रांतीय शासन, उसकी लगान-व्यवस्था, उसकी मुद्रा-व्यवस्था, उसकी सैनिक-शासन की मनसबदारी व्यवस्था आदि सभी को उसके समय अपार सफलता मिली और वह उसके उत्तराधिकारियों के लिए आधार तथा सुदृढ़ नींव बनी। बाद में आने वाले मुगल शासक उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव न कर सके अथवा उससे उत्तम शासन-व्यवस्था के लिए विचार भी नहीं कर सके। अकबर के शासन की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि उसने साम्राज्य के समस्त शासन-सूत्र को एक धागे में

पिरो दिया था जिससे मुगल साम्राज्य राजनीतिक स्थायित्व प्राप्त कर सका और समस्त प्रजा को समान रूप शासन की सुविधा प्राप्त हो सकी।

● जहाँगीर (1605–1627) [Jahangir (1605–1627 A.D.)]

अनेक साधु संतों एवं फकीरों की मिन्नतों और फतेहपुरी सीकरी के शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद अकबर की पत्नी और जयपुर की राजकुमारी मरियम उज्जमानी (जोधाबाई) ने 30 अगस्त, 1569 ई० को एक रत्न को जन्म दिया जिसका नाम सलीम रखा गया। अकबर सलीम को प्यार से 'शेखूबाबा' पुकारता था। सलीम की शिक्षा का समुचित प्रबंध किया गया। उसके विभिन्न शिक्षकों में से सबसे प्रमुख अपने समय का प्रमुख विद्वान अब्दुर्रहीम खानखाना था। विभिन्न भाषाओं और शास्त्रों के ज्ञान के अतिरिक्त सलीम को सैनिक शिक्षा भी दी गयी। यद्यपि तत्कालीन बादशाहों की परंपराओं के अनुसार सलीम (बादशाह जहाँगीर) ने अनेक विवाह किए परंतु उसका पहला विवाह आमेर (जयपुर) के राजा भगवानदास की पुत्री और राजा मानसिंह की बहन मानबाई से 13 फरवरी, 1585 ई० को हुआ। सलीम का सबसे बड़ा पुत्र खुसरो इसी बेगम की संतान था। मानबाई को सलीम (जहाँगीर) ने 'शाह बेगम' की उपाधि प्रदान की थी। मानबाई ने जहाँगीर की शराब की आदतों से दुखी होकर आत्महत्या कर ली थी। अत: कालांतर में –1586 ई० में उसका दूसरा महत्त्वपूर्ण विवाह राजा उदयसिंह की पुत्री जगतगोसाई (जोधाबाई) से हुआ जिसकी संतान शाहजादा खुर्रम (बादशाह शाहजहाँ) था। जहाँगीर के तीसरे पुत्र परवेज का जन्म उसकी बेगम 'साहिब-ए-जमाल' से और चौथे पुत्र शहरयार का जन्म एक रखैल से हुआ था।

सलीम को बहुत लाड़-प्यार से पाला गया। इस कारण वह आरंभ से ही ऐशो-आराम और शराब का शौकीन हो गया। अपने पिता के अंतिम दिनों में उसने उसकी अवज्ञा की और अपने को स्वतंत्र शासक बनाने का प्रयत्न किया। अंत में बाप-बेटे में समझौता हो गया। अकबर के दो अन्य पुत्रों-दानियाल और मुराद—की मृत्यु पहले ही हो चुकी थीं। अपनी मृत्यु के अवसर पर अकबर ने सलीम को 21 अक्टूबर, 1605 ई० को अपनी पगड़ी एवं कटार समर्पित कर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया और वही उसकी मृत्यु के उपरान्त जहाँगीर के नाम से गद्दीनशीन हुआ।

अकबर की मृत्यु के आठवें दिन, 3 नवंबर, 1605 ई० को आगरा के किले में जहाँगीर का राज्याभिषेक हुआ और उसने 'नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी' की उपाधि धारण की। जहाँगीर ने अपने पक्ष के सरदारों को उच्च पद प्रदान किए जिनमें से एक अबुल फजल का हत्यारा राजा वीरसिंह बुंदेला भी था। अकबर की परंपरा को स्थापित रखते हुए जहाँगीर ने अपना शासन उदारता से आरंभ किया और गद्दीनशीन होते ही उसने विभिन्न लोकहितकारी आदेश पारित किए, जैसे-जागीरदार और सरकारी अधिकारी गाँवों और सड़कों के निकट कुएँ और सराय बनवाएँ, व्यापारियों के सामान की बिना उनकी इच्छा के तलाशी न ली जाए, किसी के घर पर जबर्दस्ती अधिकार न किया जाए, अपराध के दंड-स्वरुप किसी के नाक-कान न काटे जाएँ, किसानों की भूमि पर कोई भी बला पूर्वक अधिकार न करे, राज्य के खर्चे से बड़े नगरों में अस्पताल खोले जाएँ और वहाँ चिकित्सकों की नियुक्ति की जाए आदि।

इस प्रकार, जहाँगीर ने अपने शासन का प्रारंभ उदारता और जनहित की भावना से किया। उसने आगरा के किले के शाह-बुर्ज से बाहर यमुना नदी के तट पर एक सोने की जंजीर डलवा दी। जंजीर को खींचने पर एक घण्टा बजता था जिसको सुनकर बादशाह के सम्मुख प्रार्थी को उपस्थित किया जाता था। इसे खींचकर कोई भी व्यक्ति बादशाह से न्याय की माँग कर सकता था।

खुसरो का विद्रोह (1606 ई०) [Rebellion by Khusro (1606 A.D.)]

खुसरो जहाँगीर का सबसे बड़ा पुत्र, राजा मानसिंह की बहन का पुत्र और मिर्जा अजीज कोका का दामाद था। वह सुशिक्षित, सुंदर, उदार और चरित्रवान था। अकबर के अंतिम दिनों में राजा मानसिंह और मिर्जा

अजीज कोका ने सलीम के दुर्बल चरित्र को ध्यान में रखते हुए खुसरो को गद्दी पर बैठाना चाहा। परन्तु अन्य सरदार इसके लिए तैयार नहीं हुए और यह प्रयास छोड़ दिया गया। अजीज कोका ने जहाँगीर से क्षमा याचना की और उसे बादशाह बना दिया। राजा मानसिंह ने खुसरो के साथ बंगाल भागने की तैयारी की, परन्तु जहाँगीर के आश्वासन पर वह लौट आया और खुसरो को जहाँगीर के सुपुर्द कर दिया। जहाँगीर ने उन दोनों को माफ कर दिया, लेकिन खुसरो को नजरबंद रखा और कुछ समय पश्चात् राजा मानसिंह को बंगाल की सूबेदारी से अलग कर दिया।

खुसरो 17 वर्ष का नवयुवक था। वह सिंहासन पर बैठने के सपने देखने लगा। 6 अप्रैल, 1606 ई० को वह आगरा के किले से भाग निकला। दिल्ली होता हुआ वह लाहौर की तरफ गया। उस समय तक उसके समर्थकों की संख्या लगभग 12,000 हो गई थी। उसने सिख गुरु अर्जुन सिंह का आशीर्वाद लिया। परंतु लाहौर के किलेदार ने उसके लिए किले के फाटक नहीं खोले। खुसरो के भागने का समाचार जहाँगीर को कुछ घंटों में ही मिल गया। उसने शाहजादे का पीछा करने के लिए सेना भेजी और स्वयं भी लाहौर की तरफ प्रस्थान किया। खुसरो ने भैरावल के मैदान में जहाँगीर से युद्ध किया परंतु उसकी हार हुई और वह भाग निकला। चिनाब नदी को पार करते हुए वह अपने साथियों के साथ पकड़ा गया। इस अवसर पर खुसरो को बन्दी बना लिया गया। इस प्रकार एक महीने में ही खुसरो का विद्रोह काबू कर लिया गया।

1607 ई० में जब जहाँगीर काबुल से लाहौर वापस लौट रहा था, तभी रास्ते में उसकी हत्या का षड्यंत्र रचा गया। खुसरो के अतिरिक्त राज्य के अन्य सरदार भी षड्यंत्र में शमिल थे। परंतु शाहजादा खुर्रम को इसकी भनक लग गई और उसने जहाँगीर को यह सूचना दे दी। जहाँगीर ने इसके विषय में विस्तृत जानकारी ली और जब सभी षड्यंत्रकारियों के विषय में उसे ठीक जानकारी मिल गयी तब उसने उनको कठोर दंड दिए और खुसरो को अंधा करा दिया गया। बाद में शाहजादे पर दया करके उसकी आँखों का इलाज कराया गया परंतु उसकी एक ही आँख में थोड़ी रोशनी आई। उसके पश्चात् खुसरो नजरबंद ही रहा। अंत में दक्षिण युद्ध के अवसर पर शाहजादा खुर्रम ने बादशाह से उसे अपने साथ ले चलने की प्रार्थना की। बादशाह मान गया और खुर्रम ने, जिसे शाहजहाँ की उपाधि से विभूषित किया जा चुका था, गला घोंटकर खुसरो की 1621 ई० में हत्या करवा दी।

खुसरो के विद्रोह के कारण कुछ अन्य छोटे-छोटे विद्रोह भी हुए, जैसे बीकानेर के राजा जयसिंह का, बिहार में संग्राम का और बिहार में ही कुतुब का जिसने स्वयं को खुसरो घोषित कर दिया। इन सभी विद्रोहों पर काबू पा लिया गया। परंतु खुसरो के विद्रोह के परिणामस्वरुप मुगलों और सिखों के संबंध खराब हो गए क्योंकि जहाँगीर ने सिखों के गुरु अर्जुन पर खुसरो को सहायता देने के अपराध में दो लाख रुपया जुर्माना लगा दिया और जब गुरु अर्जुन ने उस जुर्माने को देने से इंकार किया तब उन्हें मृत्युदंड दे दिया गया। इसे सिखों ने अपने धर्म पर अत्याचार माना।

जहाँगीर : साम्राज्य-विस्तार (Jahangir : Expansion of Empire)

अकबर ने जिस साम्राज्य-विस्तार की परंपरा स्थापित की थी, जहाँगीर ने उसके अनुरुप चलने का प्रयास किया। उत्तर भारत की विजय छोटे-छोटे कुछ राज्यों को छोड़कर लगभग पूरी हो चुकी थी। अकेला मेवाड़ ही एक ऐसा राज्य था जिसने उस समय तक मुगलों की सत्ता को स्वीकार नहीं किया था। दक्षिण भारत में राज्य-विस्तार की संभावना बची थी जहाँ उस समय तक अहमदनगर के राज्य को भी काबू नहीं किया जा सका था। जहाँगीर के समय में इन्हीं राज्यों को जीतने का प्रयास किया गया।

1. मेवाड़ से युद्ध और संधि—अकबर ने मेवाड़ को जीतने की लगातार कोशिश की थी, किन्तु महाराणा प्रताप के प्रबल विरोध और संघर्ष के कारण मेवाड़ पर मुगल अधिकार न जमा सके। मृत्यु के पहले

राणा प्रताप ने चित्तौड़ को छोड़कर मेवाड़ के प्राय: सभी भू-क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। उसकी मृत्यु उपरान्त उसका पुत्र अमरसिंह राजा बना। जहाँगीर के शासनकाल में वही मेवाड़ का शासक था।

गद्दी पर बैठने के तुरंत बाद 1605 ई० में जहाँगीर ने शाहजादा परवेज को एक बड़ी सेना ले मेवाड़-विजय के लिए भेजा। राणा अमरसिंह ने आधिपत्य स्वीकार करने के स्थान पर युद्ध करने का नि लिया। देवार के दर्रे में युद्ध हुआ जिसमें कोई निर्णय न हो सका और युद्ध चलता रहा। खुसरो द्वारा विद्रोह द पर शाहजादा परवेज को आसफखाँ सहित वापस बुला लिया। इस प्रकार 1606 ई० में युद्ध लगभग समाप्त गया, परंतु 1608 ई० में महाबतखाँ को पुन: इसी मुहिम पर भेजा गया। उसने राणा को जंगलों में भाग जाने लिए मजबूर किया। वह इससे अधिक सफलता प्राप्त न कर सका। 1609 ई० में उसके स्थान पर अब्दुल्ला को भेजा गया। अब्दुल्लाखाँ 1611 ई० में रानपुर के दर्रे में परास्त हुआ। थोड़े समय पश्चात् उसने राजकुमार करन को युद्ध में हरा कर अपने सम्मान को पुन: पा लिया। परंतु वह अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर स उसके पश्चात् राजा बसु और उसके असफल होने पर मिर्जा अजीज कोका को यह कार्य सौंपा गया। 1613 में स्वयं जहाँगीर ने अजमेर जा कर शाहजादा खुर्रम को मेवाड़ को जीतने के लिए भेजा। कुछ समय ब अजीज कोका को वापस बुला लिया गया और शाहजादा खुर्रम को इस कार्य के लिए संपूर्ण अधिकार दिए ग खुर्रम ने राणा पर हर तरह से दबाव डाला। खेती बर्बाद कर दी गई, रसद के मार्ग बंद कर दिए ग स्थान-स्थान पर राजा का पीछा किया गया और उसकी सूचना प्राप्त करने के लिए चौकियाँ बना दी गई। वि राजपूत निरंतर साहसपूर्वक युद्ध करते रहे। अन्त में परिस्थितियाँ लगभग वही हो गई जो राणा प्रताप के समय हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् हो गई थीं। अंत में, राजकुमार करन और अन्य 'राजपूत सरदारों' ने राणा मुगलों से संधि करने के लिए सुझाव दिया। राणा ने इसे मान लिया और अपना एक दूत शाहजादा खुर्रम पास भेजा। खुर्रम ने उसका स्वागत किया और उसे जहाँगीर के पास भेज दिया। जहाँगीर ने प्रसन्नता से राजा संधि-प्रस्ताव को मान लिया और 1615 ई० में मेवाड़ और मुगलों के बीच इन शर्तों पर संधि हो गई—

(1) राणा ने मुगल-आधिपत्य मान लिया।

(2) राणा से मुगल वंश से विवाह-संबंधों के लिए नहीं कहा गया। राणा ने अपने स्थान पर अपने ए करन को दरबार में भेजने का अनुरोध किया जिसे जहाँगीर ने मान लिया।

(3) जहाँगीर ने मेवाड़ का संपूर्ण भू-भाग और चित्तौड़ का किला राणा को दे दिया। शर्त सिर्फ यह र कि चित्तौड़ के किले को सुदृढ़ नहीं किया जाएगा।

इस प्रकार, मेवाड़ और मुगलों के बीच लम्बे समय से चल रहे संघर्ष का अन्त हुआ। मेवाड़ के राणाओ ने इस संधि का उस समय तक पालन किया जब तक कि औरंगजेब की नीतियों के कारण राणा राजसिंह द मुगलों का विरोध करने के लिए विवश न होना पड़ा। मेवाड़ और मुगलों का संघर्ष राजस्थान के इतिहास द सबसे गौरवपूर्ण अध्याय है। शक्तिशाली मुगल साम्राज्य से लोहा लेने में राजपूतों का मुख्य साधन उनक दृढ़निश्चय और सम्मान-रक्षा की भावना ही थी। मेवाड़ के सिसोदिया वंश ने राणा कुंभा और राणा सांगा ने गौरव पर राणा प्रताप और राणा अमरसिंह ने दाग नहीं लगने दिया। यही उनकी महानता और मेवाड़ का गौर था।

2. दक्षिण भारत—दक्षिण भारत में जहाँगीर ने अपने पिता द्वारा आरंभ किए गए कार्य को पूरा कर का प्रयास किया। अकबर ने खानदेश और अहमदनगर राज्य के कुछ भाग को जीत लिया था, परंतु अहमदनग का राज्य समाप्त नहीं हुआ था और बीजापुर और गोलकुंडा पूरी तरह स्वतंत्र थे। जहाँगीर के शासन काल उनको जीतने का कार्य फिर शुरु किया गया।

उन दिनों मुगलों द्वारा दक्षिण भारत की विजय में सबसे बड़ी समस्या अहमदनगर के योग्य वजीर मलिक अम्बर ने प्रस्तुत की। मलिक अम्बर अपने समय के योग्यतम राजनीतिज्ञों में से था। अबीसीनिया के मलिक अम्बर को कासिम ख्वाजा नामक एक व्यक्ति ने बगदाद के बाजार से खरीदा था जिसने उसे अहमदनगर के

मुर्तजा निजामशाह प्रथम के मंत्री मीरक दबरी चंगेजखाँ के हाथों बेच दिया। जब बरार और खानदेश पर मुगलों का अधिकार हो गया तब मलिक अम्बर ने बीजापुर राज्य में जाकर नौकरी कर ली। परंतु वह पुन: अहमदनगर वापस आ गया और आनगखाँ की सेवा में 150 घुड़सवारों के मनसबदार के पद पर नियुक्त हो गया। जब अकबर के समय में शाहजादा दानियाल ने अहमदनगर राज्य पर आक्रमण किया तब मलिक अम्बर और मलिक राजू को मुगलों पर आक्रमण करने तथा उनको परेशान करने का भार सौंपा गया। उसने यह कार्य सफलतापूर्वक किया। उसने अपने सैनिकों की संख्या में वृद्धि की और अहमदनगर राज्य के उन प्रदेशों को, जो मुगल-आधिपत्य में चले गए थे, मुगलों से छीनने में सहायता की। 1601–1602 ई० में मलिक अम्बर ने भंडेर में पहली बार मुगलों का प्रत्यक्ष रुप से कड़ा मुकाबला किया जिसमें वह बुरी तरह से घायल हुआ परंतु जीवित बच गया। अपने साथी सरदार मलिक राजू से मलिक अम्बर की नहीं पटी क्योंकि दोनों ही अहमदनगर राज्य में अपना प्रभाव चाहते थे। मलिक राजू की प्रतिद्वन्द्विता के कारण मलिक अम्बर ने दो बार अहमदनगर राज्य का साथ छोड़ा और मुगलों की सेवा में गया। परंतु मुगलों की अधीनता में मलिक अम्बर का भविष्य आशाजनक नहीं था। 1607 ई० में निजामशाह ने राजू को बन्दी बना लिया और मलिक अम्बर का साथ देने की माँग रखी। राजू के हटते ही मलिक अम्बर का मार्ग प्रशस्त हो गया और वह निजामशाह की सेवा में लग गया।

जहाँगीर की मृत्यु (Death of Jahangir)

1620 ई० से जहाँगीर का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था। कश्मीर की लगातार यात्राएँ और वहाँ की स्वास्थ्यवर्धक जलवायु भी उसके स्वास्थ्य को ठीक न कर सकी। मार्च 1627 ई० में जहाँगीर फिर कश्मीर गया। उसका स्वास्थ्य बहुत खराब हो चुका था। कश्मीर की जलवायु से भी उसके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ और वह लाहौर के लिये वापस चल दिया। मार्ग में 7 नवंबर, 1627 ई० को भीमवार नामक स्थान पर जहाँगीर ने अंतिम सांस ली। लाहौर के निकट एक बाग में उसको दफना दिया गया जहाँ नूरजहाँ ने एक सुंदर स्मारक बनवाया।

शाहजहाँ (1627–1658 ई०) [Shahjahan (1627–1658 A.D.)]

लगभग तीस वर्ष की लम्बी अवधि का शाहजहाँ का शासनकाल मुगल साम्राज्य के वैभव और शक्ति की पराकाष्ठा का काल था। उसे मुगल काल का स्वर्ण काल कहा जाता है। अकबर द्वारा स्थापित की गयी मुगलों की श्रेष्ठता शाहजहाँ के शासन काल में न केवल स्थापित रही बल्कि विकसित भी हुई। निस्संदेह, औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य का विस्तार किया किन्तु वह मुगलों की शक्ति को संचित और संगठित नहीं रख सका। उसके शासनकाल के विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य की एकता और शक्ति में छेद कर दिए थे। शाहजहाँ के समय तक ऐसा संभव नहीं हो सका था। शाहजहाँ के शासनकाल के सभी विद्रोह आसानी से दबा दिए गए और मुगल साम्राज्य की सीमाएँ शांत और आसानी से सुरक्षित बनी रहीं। जब तक शाहजहाँ बीमार नहीं हुआ और उसके पुत्रों में राजसिंहासन के लिए युद्ध नहीं हुआ तब तक मुगल साम्राज्य की एकता दृढ़ बनी रही और शाहजहाँ की शक्ति का सामना सरलता से भारत में कोई योद्धा नहीं कर सका। शांति, सुरक्षा और संपन्नता की दृष्टि से भारत में उसके समय में कोई कमी नही थी।

किन्तु दूसरी ओर शाहजहाँ का शासनकाल दुर्बलताओं के आने का भी समय था, यद्यपि वे स्पष्ट रुप से उसके जीवन काल में नहीं आई। रक्तपात द्वारा सिंहासन पर अधिकार, कंधार और मध्य एशिया में मुगलों की असफलता, युद्ध, शान-बान और भवनों पर बहाया गया धन तथा धार्मिक असहिष्णुता का प्रारंभ ऐसी बातें थीं जिन्होंने भविष्य को प्रभावित किया और जो प्रभाव उनका पड़ा वह मुगल-साम्राज्य के हित में नहीं था।

5 जनवरी, 1592 ई० को लाहौर में शाहजादा खुर्रम का जन्म हुआ था। उसकी माता मारवाड़ के शासक उदयसिंह की पुत्री जगतगोसाई (जोधाबाई और भानुमती के नामों से भी पुकारी गयी है) थी। खुर्रम अपने दादा अकबर का लाड़ला पोता था। खुसरो के विद्रोह करने पर खुर्रम को राजधानी की देखभाल के लिए नियुक्त

किया गया था। 1606 ई० में उसे 8,000 जात और 5,000 सवार का पद दिया गया। 1612 आसफखाँ की पुत्री अर्जुमन्दबानू बेगम से उसका विवाह हुआ जो बाद में इतिहास में 'मुमताजमहल' के प्रख्यात हुई। खुसरो के विद्रोह के पश्चात् खुर्रम को गद्दी का उत्तराधिकारी समझा जाने लगा। उसने योग्यता से उसे सिद्ध भी कर दिया। मेवाड़, काँगड़ा और दक्षिण के अभियानों में जो सफलता मिली उसकी योग्यता प्रकट हुई। वह नूरजहाँ के गुट का सदस्य भी रहा और 1622 ई० तक निरंतर राज्य में स और पद प्राप्त करता रहा। उसे 'शाहजहाँ' की उपाधि से विभूषित किया गया और बड़ी से बड़ी जागी प्राप्त हुई। परंतु उसके पश्चात् उसकी कठिनाइयाँ शुरु हो गईं। नूरजहाँ ने शाहजहाँ के पक्ष को छोड़कर शह का पक्ष लेना शुरु कर दिया। कंधार की रक्षा के लिए मुगल सेना को भेजने के प्रश्न पर शाहजहाँ जहाँगी मन से उतर गया। 1623 ई० में उसने विद्रोह किया किन्तु वह असफल रहा और 1626 ई० में उसने बा की शर्तों को मान लिया।

1627 ई० में जहाँगीर की मृत्यु के समय शाहजहाँ दक्षिण भारत में था। वहां उसकी सहायता उ श्वसुर और राज्य के 'वकील' आसफखाँ ने की। राज्य का दीवान ख्वाजा अबुल हसन भी उसका पक्षधर इन व्यक्तियों ने मिलकर शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह, शुजा और औरंगजेब को नूरजहाँ के आधिपत्य से करा लिया और खुसरो के पुत्र दाबरबक्स को बादशाह घोषित कर दिया ताकि सिंहासन खाली न आसफखाँ ने शाहजहाँ को शीघ्र राजधानी पहुँचने का समाचार भेजा। नूरजहाँ उस समय कुछ न कर सकी आसफखाँ के विरुद्ध कोई कार्यवाही न कर सकी। उसी समय शहरयार ने अपने आप को लाहौर में बाद घोषित कर दिया और लाहौर के खजाने को सरदारों एवं सैनिकों में बाँटकर अपने पक्ष को मजबूती देने प्रयास किया। परंतु वह अयोग्य था। आसफखाँ ने उस पर आक्रमण कर दिया, उसे परास्त करके बंदी लिया तथा उसकी आँखें फोड़ दीं। शाहजहाँ तीव्रगति से आगरा की ओर बढ़ रहा था और जब उसे इस सफ का समाचार मिला, उसने शहरयार, दाबरबक्स और शाही परिवार के सभी जीवित राजकुमारों को अपने से हटा देने का आदेश आसफखाँ को दिए। आसफखाँ ने ऐसा ही किया और शाहजहाँ के आगरा पहुँचने पहले ही सिंहासन के सभी उत्तराधिकारी समाप्त कर दिए गए। इस प्रकार, अपने संबंधी राजकुमारों का करके 24 फरवरी, 1628 ई० को शाहजहाँ 'अबुल मुजफ्फर शहाबुद्दीन मुहम्मद साहिब किरन-ए-सानी' उपाधि लेकर गद्दी पर आसीन हुआ। आगरा में उसका राजतिलक हुआ। आसफखाँ को 7,000 जात 7,000 सवार तथा राज्य के वजीर का पद मिला। महाबतखाँ को 7,000 जात और 7,000 सवार का पद खानखाना की उपाधि मिली। बेगम नूरजहाँ को 2 लाख रुपए प्रतिवर्ष की पेंशन दी गई। नूरजहाँ ने अपने जी का संध्याकाल शांतिपूर्वक लाहौर में व्यतीत किया और वहीं 1645 ई० में उसका शरीर पूरा हुआ।

शाहजहाँ के समय के विद्रोह (Rebellions during Reign of Shahjahan)

शाहजहाँ के शासन काल में पुर्तगालियों और सिखों से हुए संघर्षों के अलावा दो बड़े विद्रोह हुए। उ से एक बुंदेलखंड के शासक जूझरसिंह ने किया और दूसरा दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ लोदी द्वारा हु

1. बुंदेलखंड का विद्रोह (1628–1635 ई०)— वीरसिंह बुंदेला पर जहाँगीर की कृपादृष्टि अकबर के शासन में इसी ने शाहजादा सलीम (जहाँगीर) के इशारे पर अबुल फजल का काम तमाम किया जहाँगीर ने अपने समय में इसे उच्च पद और सम्मान दिया था। वीरसिंह की मृत्यु जहाँगीर की मृत्यु से तीन चार महीने पहले हो गई थी और उसके पुत्र जूझरसिंह को उसका उत्तराधिकारी मान लिया गया था। जूझरसि दरबार में रहता था और उसका पुत्र विक्रमजीतसिंह शासन की देखभाल करता था। उसने अपनी प्रजा पर सख की और अपार धन इकट्ठा कर लिया। शाहजहाँ ने सिंहासन पर बैठने के पश्चात जूझरसिंह द्वारा एकत्र कि गए करों की जाँच करने का आदेश दिया जिससे भयभीत होकर जूझरसिंह दरबार छोड़कर बुंदेलखंड भा गया।

1628 ई० में जूझरसिंह पर आक्रमण हुआ। वह शाहजहाँ के शासन का पहला सैनिक अभियान था। शाहजहाँ बुंदेलखंड की कठिन भौगोलिक स्थिति और बुंदेला शौर्य से परिचित था। अत: उसने प्रत्येक दिशा से बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का आदेश दिया। शाहजहाँ स्वयं भी शिकार के बहाने ग्वालियर पहुँच गया। जूझरसिंह ने शीघ्र अपनी दुर्बलता को समझ लिया और 1629 ई० के आरंभ में उसने आत्मसमर्पण कर दिया। उसने एक हजार अशर्फियाँ, पंद्रह लाख रुपए, चालीस हाथी और अपनी जागीर का कुछ भाग शाहजहाँ को समर्पित किया। शाहजहाँ ने उसे क्षमा कर दिया तथा दक्षिण भारत के युद्ध के लिए उसको नियुक्त कर दिया।

जूझरसिंह ने पाँच वर्ष तक वफादारी से मुगल बादशाह की सेवा की और दक्षिण के युद्धों में महत्त्वपूर्ण साथ दिया। 1634 ई० में वह अपनी राजधानी ओरछा वापस पहुँच गया। 1635 ई० में उसने गोंडवाना पर आक्रमण कर दिया और उसकी राजधानी चौरागढ़ को जीत लिया और राजा प्रेमनारायण को मौत के घाट उतार दिया। एक अधीनस्थ राजा को दूसरे अधीनस्थ राजा पर बादशाह की आज्ञा के बिना आक्रमण करना मुगलों की नीति के विरुद्ध था और अपराध माना जाता था। प्रेमनारायण के पुत्र ने शाहजहाँ से इसके विरुद्ध रक्षा की प्रार्थना की। शाहजहाँ ने जूझरसिंह से माँग कर दी कि वह गोंडवाना और दस लाख रुपए बादशाह को दे या बुंदेलखंड की अपनी जागीर में से गोंडवाना क्षेत्र के बराबर जागीर बादशाह को अर्पित करे। जूझरसिंह ने इन शर्तों को मानने से मना कर दिया। शाहजहाँ ने औरंगजेब को विशाल सेना के साथ आक्रमण के लिए भेजा। मुगलों ने ओरछा पर अधिकार कर लिया और भरतसिंह के पुत्र देवीसिंह को गद्दी पर बैठा दिया। जूझरसिंह और उसका पुत्र विक्रमाजीत जब वन में आराम कर रहे थे, गोंडो के द्वारा मार दिए गए तथा उनके सिर काटकर शाहजहाँ के पास भेज दिए गए। जूझरसिंह के दो पुत्रों एवं एक पौत्र को मुसलमान बना लिया, एक पुत्र और वृद्ध मंत्री का वध कर दिया क्योंकि उन्होंने इस्लाम स्वीकार करने से मना कर दिया तथा बुंदेला नारियों को महल या सरदारों की सेवा में भेज दिया गया। इसके अतिरिक्त, ओरछा के मंदिर नष्ट कर दिए गए अथवा मस्जिदों में परिवर्तित कर दिए गए। शाहजहाँ की विजय पूर्ण हुई और उसे बहुत-सी भूमि और धन प्राप्त हुआ। इस प्रकार 1635 ई० में यह विद्रोह समाप्त कर दिया गया।

इधर बुंदेलों ने देशद्रोही देवीसिंह को अपना राजा मानने से मना कर दिया। महोबा के राजा चंपतराय और तदोपरान्त उसके पुत्र छत्रसाल ने मुगलों का निरंतर विरोध किया और बुंदेलों का स्वतंत्रता संग्राम निरंतर चलता रहा।

2. खानजहाँ लोदी द्वारा विद्रोह (1628–1631 ई०)—पीरखाँ अर्थात् खानजहाँ लोदी एक योग्य और सम्मानित अफगान नागरिक था। जहाँगीर के शासन के अंतिम दिनों में वह दक्षिण की सूबेदारी के महत्त्वपूर्ण पद पर था। शाहजहाँ के विद्रोह के अवसर पर वह उदासीन रहा था। शाहजहाँ के सहायता माँगने पर उसने उसे कोई सहायता नहीं दी थी। उस अवसर पर उसने दक्षिण के शासकों से समझौता करने का प्रयास किया था और तीन लाख रुपया लेकर बालाघाट क्षेत्र अहमदनगर को सौंप दिया था। संभवत:, अपनी अफगान प्रवृत्ति के अनुसार वह जहाँगीर की मृत्यु से प्राप्त अवसर की डांवाडोल स्थिति का लाभ उठाकर दक्षिण में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए व्यग्र हो रहा था। **शाहजहाँ** ने महावतखाँ को खानखाना का पद प्रदान कर दिया। इससे भी वह असंतुष्ट था क्योंकि जहाँगीर के शासनकाल में यह पद उसको दिया गया था। परंतु जब शाहजहाँ को आगरा में बादशाह घोषित कर दिया गया तो उसने तुरंत शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली। शाहजहाँ ने उसे बालाघाट को पुन: प्राप्त करने का आदेश दिया। उसी वर्ष जूझरसिंह के विद्रोह को दबाने के लिए भी उसकी सहायता ली गई। परंतु खानजहाँ बालाघाट को नहीं जीत सका। शाहजहाँ ने दक्षिण की सूबेदारी महावतखाँ को दी और मालवा खानजहाँ को दिया।

बुंदेला विद्रोह के दब जाने पर (1629 ई०) खानजहाँ को दरबार में आने का आदेश दिया गया। यहाँ उसे वह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जो जहाँगीर के समय में प्राप्त था। शाहजहाँ के आश्वासन के बाद भी खानजहाँ को अपने जीवन का भय रहा और इस भय से आक्रान्त होकर अक्टूबर 1629 ई० में वह बादशाह की आज्ञा बगैर दक्षिण की ओर भाग गया। शाही सेना ने उसका पीछा किया। फलस्वरुप चंबल नदी के किनारे पर युद्ध

हुआ और खानजहाँ को अपने मुट्ठी भर संबंधियों एवं स्त्रियों को छोड़कर भागना पड़ा। खानजहाँ अह पहुँच गया। मुर्तजा निजामशाह ने उसका स्वागत किया, उसे 'बीर' की जागीर दी और मुगलों के अधि चली गई अहमदनगर की जागीर को वापस लेने का भार उसे सौंपा। खानजहाँ के दक्षिण में पहुँच दक्षिण की समस्या कठिन हो गई। अहमदनगर ने मुगलों से कुछ भू-भाग छीन लिए। दक्षिण की स्थिरि असाध्य हो गई कि स्वयं शाहजहाँ को 1629 ई० में दक्षिण भारत जाना पड़ा। सर्वप्रथम शाहजहाँ ने ख का वध करने की योजना बनाई और उस पर तीन तरफ से आक्रमण किया। खानजहाँ को स्थान-स्थ भागना पड़ा। वह भागकर दौलताबाद की ओर गया और बीजापुर से सहायता मांगी। परंतु वह नहीं मिल मुगलों के दबाव के कारण निजामशाह भी तटस्थ हो गया और खानजहाँ के पास दक्षिण को छोड़कर भा अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं बचा। उसे उत्तर-पश्चिम में अफगानों से सहायता मिलने की आश खानजहाँ ने नर्मदा नदी को पार किया और मालवा होकर उत्तर की ओर जाने का प्रयास किया। म जूझरसिंह के पुत्र विक्रमजीत ने उस पर आक्रमण कर दिया और खानजहाँ के अधिकांश साथियों व गिराया। परंतु खानजहाँ यहाँ से भी भाग निकला। तब मुजफ्फरखाँ सैय्यद ने उसका पीछा किया। म एक-एक करके उसके सभी साथी और पुत्र मारे गए, कालिंजर के किलेदार ने उसके हाथी छीन लिए औ में बाँदा जिले में सिंहोदा नामक स्थान पर खानजहाँ ने अंतिम युद्ध किया और माधोसिंह के हाथों काम उसका सिर काटकर शाहजहाँ के पास भेज दिया गया। इस प्रकार 1631 ई० में खानजहाँ का विद्रोह हुआ।

3. पुर्तगाली विद्रोह—बंगाल में पुर्तगाली व्यापारी पर्याप्त समय पहले से व्यापार करते थे। बादशाह की ओर से उनको नमक के व्यापार का एकाधिकार दिया हुआ था। धीरे-धीरे पुर्तगाली उद्दंड होते उन्होंने भारतीयों को बलात ईसाई बनाना आरंभ किया और समय-समय पर शाही भूमि और बाजारों में लू करनी आरंभ कर दी। इतना ही नहीं, उन्होंने मुगलों के विरुद्ध अराकान के राजा को सहायता दी। अत: ध और राजनीतिक कारणों के साथ-साथ स्थानीय उपद्रवों के कारण से शाहजहाँ ने 1632 ई० में उनको स करने का आदेश दे दिया। लगभग 3 महीने के घेरे के पश्चात् हुगली क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया। ह ईसाई मारे गए और सैकड़ों बंदी बना लिए गए। उनमें से अनेक ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और उ युवा स्त्रियों को हरम में ले लिया गया।

4. सिख—शाहजहाँ के शासन के प्रारम्भिक काल में 1628 ई० एक साधारण सी घटना के फलस्व सिखों और शाहजहाँ में शत्रुता हो गयी। अमृतसर के निकट शाहजहाँ शिकार पर गया हुआ था। उसका प प्रिय बाज उड़कर गुरु के खेमें में चला गया। सिखों ने उसे पकड़ लिया तथा वापस लौटाने से मना कर दि मुगल सैनिकों ने कई बार सिखों पर आक्रमण किया परंतु वे असफल रहे। गुरु हरगोविंद के कुछ मित्र बाद के दरबार में भी थे। उन्होंने बीच में पड़कर इस झगड़े को समाप्त कर दिया।

गुरु हरगोविन्द ने व्यास नदी के किनारे श्री गोविन्दपुर नामक एक शहर बसाना प्रारंभ किया था। गुरु दुश्मनों ने जालंधर के फौजदार अब्दुल्लाखाँ को गुरु पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। कदाचि इस नये नगर का निर्माण मुगलों के हित में नहीं था। गुरु से कहा गया कि वह नये नगर के निर्माण के कार्य रोक दे। उनके इंकार करने पर गुरु पर आक्रमण हो गया। परंतु इस बार भी गुरु की सेना ने फौजदार की स को भगा दिया।

गुरु से मुगलों का तीसरी बार विवाद इस कारण हुआ कि बीधीचंद्र नामक एक विख्यात डकैत ने, गुरु का शिष्य था, शाही घुड़साल से दो बहुत अच्छे घोड़े चुराकर गुरु को भेंट कर दिए और गुरु ने उ स्वीकार कर लिया। एक शक्तिशाली मुगल सेना गुरु के विरुद्ध भेजी गई परंतु गुरु ने उसे परास्त कर दि (1613 ई०)। एक और बड़ी सेना को गुरु ने कर्तारपुर नामक स्थान पर परास्त किया। इसके उपरांत मुग और सिखों का संघर्ष चलता रहा। गुरु ने यह विचार किया कि निरंतर संघर्ष करने में नवोदित सिख संप्रदाय समाप्त हो जाने का भय है, अत: गुरु ने पंजाब छोड़ दिया और कश्मीर की पहाड़ियों में कीरतपुर नामक स्थ

पर रहने लगे। वहीं 1645 ई० में गुरु स्वर्गवासी हो गए। मृत्यु से पहले उन्होंने हरराय को गुरु की गद्दी सौंप दी थी। इसी प्रकार शाहजहाँ के समय में सिखों के छठे गुरु हरगोविंद से मुगलों का संघर्ष चलता रहा।

शाहजहाँ : साम्राज्य-विस्तार (Shahjahan : Expansion of Empire)

1. दक्षिण भारत—अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में दक्षिण पर अधिकार करने के अनेक प्रयत्न किए गए। मुगलों की साम्राज्यवादी नीति का यह एक अंश था। शाहजहाँ ने भी इस दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। मुगल शासकों के लिए एक गहन समस्या यह भी थी कि दक्षिण भारत के राज्यों में मुगलों के विद्रोहियों तथा शत्रुओं को शरण मिलती थी। शाहजहाँ इस स्थिति को समाप्त करना चाहता था।

(i) अहमदनगर—शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने से पहले खानजहाँ ने बालाघाट का प्रदेश अहमदनगर को सौंप दिया था। बाद में खानजहाँ ने विद्रोह करके अहमदनगर में शरण प्राप्त कर ली। उसी अवसर पर मुगलों द्वारा 1629 ई० में एक शक्तिशाली सेना को दक्षिण विजय हेतु भेजा गया और स्वयं शाहजहाँ बुरहानपुर पहुँच गया। मुगलों ने आंशिक सफलता प्राप्त की। तभी जामशाह ने मलिक अंबर के मूर्ख और नाकाबिल पुत्र फतहखाँ को राज्य का भार सौंप दिया। फतहखाँ दुर्बल बुद्धि तथा स्वार्थी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। कभी वह मुगलों से मिला और कभी बीजापुर तथा गोलकुंडा से दोस्ती करने का प्रयास किया। उसने सुल्तान मुर्तजा निमाजशाह द्वितीय को कारागर में बन्द करके मार डाला तथा 10 वर्ष के एक छोटे बालक हुसैन को निजाम की गद्दी पर बैठा दिया। शाहजहाँ फतहखाँ का विश्वास नहीं करता था। उसने मुगल सेना को दौलताबाद पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। इससे डरकर फतहखाँ ने शाहजहाँ को बहुमूल्य उपहार भेजे तथा मुगलों की अधीनता में चला गया। शाहजहाँ इससे संतुष्ट हो गया। उसका मन दक्षिण के युद्ध में नहीं लग रहा था क्योंकि 17 जनवरी, 1631 ई० को उसकी प्रेयसी और पत्नी मुमताजमहल की मृत्यु हो गई थी। अत: अपने अधिकारियों को दक्षिण का उत्तरदायित्व सौंपकर शाहजहाँ स्वयं उत्तर में आ गया (1632 ई०)।

वास्तव में अभी अहमदनगर पर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं हुई थी। 1633 ई० में जब महाबतखाँ दक्षिण पहुँचा तो वह फतहखाँ की दोहरी नीति से बहुत खिन्न हुआ। उसने दौलताबाद पर घेरा डाल दिया। साढ़े तीन महीने के घेरे के पश्चात् दौलताबाद के किले पर अधिकार कर लिया। फतहखाँ और अहमदनगर के अंतिम शासक हुसैनशाह को राजदरबार में भेज दिया गया और अहमदनगर मुगल राज्य में सम्मिलित हो गया (1633 ई०)। शाहजहाँ ने फतहखाँ को 2 लाख रुपया प्रति वर्ष की पेंशन दी और उसे राज्य की सेवा में शामिल कर लिया। हुसैनशाह को ग्वालियर के किले में बंदी बना दिया गया। इस प्रकार अहमदनगर का पृथक राज्य समाप्त हो गया परंतु फिर भी निजामशाही सरदार और मुख्यतया शाहजी भोसले ने एक बच्चे (मुर्तजा तृतीय) के नाम से मुगलों से कई वर्षों तक संघर्ष किया। 1636 ई० में मुगलों ने शाहजी को चुनार के किले में दबोच लिया। अंतत: उसने अपने बहुत से किले और मुर्तजा तृतीय को मुगलों के हवाले कर दिया। मुर्तजा तृतीय को भी ग्वालियर के किले में बन्दी बना कर रख दिया गया। शाहजी ने आत्म समर्पण कर दिया और बीजापुर राज्य की सेवा स्वीकार कर ली।

(ii) गोलकुंडा—गोलकुंडा के शासक शिया मुसलमान थे और मुगल बादशाह के आधिपत्य को उन्होंने स्पष्ट रुप से स्वीकार नहीं किया था। इस कारण शाहजहाँ के शासनकाल में उसे मुगल आधिपत्य में लेने का प्रयास किया गया। 1626 ई० में मुहम्मद कुतुबशाह की मौत हो गई और 11 वर्ष की आयु के अब्दुल्ला को कुतुबशाह बना दिया गया। उसके समय में गोलकुंडा की स्थिति बहुत दुर्बल हो गई क्योंकि राज्य के विभिन्न सरदारों में सामन्जस्य नहीं था। शाहजहाँ ने इस दुर्बलता का फायदा उठाया। 1631 ई० में जब बीजापुर पर आक्रमण किया गया तब गोलकुंडा से भी वार्षिक कर माँगा गया। गोलकुंडा ने धन देने से मना कर दिया। 1636 ई० में मराठों और बीजापुर को संधि करने के लिए बाध्य करने के पश्चात् गोलकुंडा पर दबाव बनाया गया। अब्दुल्ला कुतुबशाह डर गया और 1636 ई० में मुगलों से निम्नांकित शर्तों पर सन्धि कर ली—

(अ) पहले चार खलीफाओं के नाम के अतिरिक्त शाहजहाँ का नाम भी खुतबे में और सिक्कों पर शामिल किया गया।

(ब) गोलकुंडा ने मुगल आधिपत्य को स्वीकार किया और 8 लाख रुपया प्रति वर्ष मुगल कर के रुप में देना स्वीकार किया। उसने गत वर्षों के शेष लगभग 32 लाख रुपयों को भी देना स्वीकार कि

(स) बीजापुर या मराठों द्वारा आक्रमण होने के अवसर पर मुगल गोलकुंडा की सहायता करेंगे किसी कारणवश सहायता नहीं कर सके तो जो हानि गोलकुंडा की होगी उसकी भरपायी करेंगे।

दक्षिण के सूबेदार के रुप में औरंगजेब—शाहजहाँ स्वयं दक्षिण में था। परंतु इस संधि के पश्चात् औरंगजेब को दक्षिण का सूबेदार बनाकर दिल्ली वापस चला आया। 1636 से 1644 ई० तक औरंगजेब पहली बार दक्षिण के सूबेदार का पद संभाला और औरंगाबाद को मुगलों की दक्षिण की राजधानी बनाया औरंगजेब ने अपने इस शासनकाल में दक्षिण भारत की मुगल सल्तनत को चार प्रांतों में विभाजित किय (i) खानदेश, जिसकी राजधानी बुरहानपुर थी और जिसके अंतर्गत असीरगढ़ का दुर्ग था; (ii) बरार, जि राजधानी इलिचपुर थी; (iii) तेलंगाना, जिसकी राजधानी नंदेर थी; और (iv) अहमदनगर, जिसमें अहमद राज्य से छीनी गई भूमि थी। इस भू-प्रदेश में 64 दृढ़ दुर्ग थे। अपने इस शासन काल में औरंगजेब का एक उल्लेखनीय कार्य बगलाना के छोटे-से राज्य को विजय करना था।

2. कुछ साधारण विजयें—शाहजहाँ के शासनकाल में छोटे-छोटे प्रदेश भी जीते गए। मालवा गौंड के भीलों को मुगल अधिकार में लिया गया, पालामऊ के राजा प्रताप को मुगल आधिपत्य स्वीकार क के लिए मजबूर किया गया और छोटा तिब्बत भी जीता। 1634 ई० छोटे तिब्बत के राजा ने शाहजहाँ आधिपत्य माना। 1628–1639 ई० के अंतराल में असम से निरंतर युद्ध चलता रहा। अंत में सीमाएँ निश्चि कर ली गईं और असम से व्यापारिक संबंध स्थापित हो गए।

3. मध्य एशिया—अपने पूर्वगामी सभी मुगल बादशाहों की भाँति शाहजहाँ भी मध्य एशिया को जी के लिए उत्सुक था। 1628 ई० और 1629 ई० में मध्य एशिया के शासक इमामकुली उजबेग ने काबुल जीतने का प्रयास किया था, परंतु वह असफल रहा था। बाद में इमामकुलीखाँ के भाई नजरमुहम्मद ने समरक़ को जीत लिया। 1645 ई० में उसके पुत्र अब्दुल अजीज ने विद्रोह कर दिया। शाहजहाँ ने इससे लाभ उठाने प्रयत्न किया। पहले उसने शहजादे मुराद को मध्य एशिया भेजा और उसने कुछ सफलता भी प्राप्त की। मु के वापस आ जाने पर 1647 ई० में शहजादे औरंगजेब को भेजा गया। प्रारंभिक सफलता के पश्चात् औरंगज को भी वापस आना पड़ा (1647 ई०)। इस प्रकार, अंतत: मध्य एशिया को अधिकार में करने का शाहज का प्रयत्न असफल हुआ।

4. कंधार—कंधार सदैव से मुगल शासकों और फारस (ईरान) के शासकों के बीच संघर्ष का कार बना हुआ था। जहाँगीर के शासन काल में 1622 ई० में कंधार पर फारस ने अधिकार कर लिया था। 162 ई० में उसके फारस के किलेदार अलीमर्दनखाँ ने अपनी इच्छा से यह किला मुगलों को दे दिया। मध्य एशिया मुगलों के आक्रमण की सफलता से उत्साहित होकर 1648 ई० में फारस ने कंधार पर आक्रमण कर दि और इससे पहले कि कोई सहायता पहुँचती, किले पर अधिकार जमा लिया। 1649 ई० में औरंगजेब कंध पहुँचा परंतु उसे जीत नहीं सका। 1652 ई० में औरंगजेब को फिर कंधार जीतने के लिए भेजा गया। वह फि असफल रहा। इस प्रकार 1653 ई० में दाराशिकोह द्वारा कंधार को जीतने का प्रयत्न भी असफल रहा। इ प्रकार शाहजहाँ के समय में कंधार एक बार मुगलों को प्राप्त अवश्य हुआ परंतु पुन: हाथ से निकल गया।

शाहजहाँ के अंतिम वर्ष और मृत्यु (Last Days of Shahjahan and His Death)

शाहजहाँ ने अपने जीवन के संध्या काल के आठ वर्ष आगरा के दुर्ग के शाह बुर्ज के अंदर एक बंदी के समान कारागार में काटे। उसके पुत्र औरंगजेब ने न केवल उसके हीरे-जवाहरात उससे छीने अपितु आराम क

साधारण वस्तुओं से भी उसे वंचित रखा। वृद्धावस्था में उसका एकमात्र सहारा उसकी पुत्री जहानआरा थी जिसने जीवन-पर्यन्त उसकी सेवा की। 1666 ई० में अपनी पत्नी मुमताजमहल की स्मृति में लीन और एकटक ताजमहल को निहारते हुए शाहजहाँ 74 वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधार गया। ताजमहल में उसकी परम प्रिय पत्नी की कब्र के बराबर में ही शाहजहाँ को आम आदमी की तरह दफना दिया गया।

मुमताजमहल (Mumtazmahal)

मुमताजमहल शाहजहाँ की सर्वाधिक प्रिय पत्नी और प्रेयसी अथवा प्रियतमा थी। इतिहास में प्रख्यात शाहजहाँ के सभी पुत्रों एवं पुत्रियों का जन्म उसी की कोख से हुआ था। उसका बचपन का नाम अर्जुमन्दबानू बेगम था। 1594 ई० में उसका जन्म हुआ था और 1612 ई में शाहजहां से साथ उसका विवाह हुआ। उसने चौदह बच्चों को जन्म दिया। 1631 ई० में बुरहानपुर में उसकी मृत्यु हुई। मुमताजमहल शाहजहां के प्रत्येक सुख और दुख में उसके साथ रही। वह अत्यंत सुंदर, सुयोग्य, शिक्षित और उदार महिला थी। उसका पिता आसफखाँ मुगल साम्राज्य का प्रमुख सरदार था जिसने उसका लालन-पालन बहुत ही सुहृदयता से किया था। मुमताजमहल का प्रमुख गुण उसका पति-परायण होना था। इसके अलावा वह धर्मपरायण थी। वह इस्लाम धर्म के अनुसार इबादत, नमाज व रोजे रखती थी। खैरात भी वह दिल खोल कर देती थी। गरीबों, अपाहिजों, अनाथों और विधवाओं के प्रति वह बहुत सहिष्णु थी और दिल खोलकर दान करती थी। राजनीति में उसने कभी कोई दिलचस्पी नहीं थी, परंतु कहा जाता है कि उसके कट्टर धार्मिक विचारों का प्रभाव शाहजहाँ पर पड़ा था। उसकी अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिए उसकी स्मृति में शाहजहाँ ने आगरा में विश्व-प्रसिद्ध ताजमहल का निर्माण कराया था।

शाहजहाँ का चरित्र, व्यक्तित्व और इतिहास में स्थान (Character and Personality of Shahjahan and his Position in History)

शाहजहाँ के चरित्र, व्यक्तित्व और कार्यों के विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। यह विवादास्पद है कि 'शाहजहाँ का शासन काल मुगल-काल का स्वर्ण-काल था अथवा नहीं।' निश्चय ही तथ्य कुछ ऐसे हैं जिससे शाहजहाँ के चरित्र को समझना और उसके कार्यों का मूल्यांकन करना कुछ कठिन है। शाहजहाँ के चरित्र और व्यक्तित्व को दो प्रकार से देखा जाता है। एक तो यह कि शाहजहाँ सुशिक्षित, सभ्य, शालीन, चरित्रवान, उदार, न्यायप्रिय, प्रजापालक, कला-प्रेमी और साहित्य की प्रगति में रुचि रखने वाला था। दूसरा यह कि वह कठोर, आतंकी, ऐश्वर्य-पंसद, स्वार्थी और धर्मांध था। समय-समय पर उपस्थित होने वाली इस विरोधी प्रकृति के कारण ही डॉ० एस०आर० शर्मा मानते हैं—"**कुछ मामलों में शाहजहाँ में विरोधाभास था।**"

शाहजहाँ वास्तव में सुशिक्षित, सभ्य और मिलनसार था। उसने अच्छी शिक्षा ग्रहण की थी और वह विद्वानों का सम्मान करता था। उसके संरक्षण में फारसी और संस्कृत भाषा की प्रगति खूब हुई। ललित कलाओं का उसे शौक था। उसने स्थापत्य-कला, चित्रकला और गायन-कला की उन्नति में खूब सहयोग दिया। वह स्वयं अच्छा गायक था। अनेक विवाह करने पर भी वह पत्नीव्रत था। मुमताजमहल से उसका प्रेम इतिहास की एक कहानी बन कर रह गया है। उसे अपने बच्चों से प्रेम था और उसने उदारता से सभी की शिक्षा की व्यवस्था की थी। वह एक योग्य सैनिक और सेनापति था। अपने पिता के शासन में उसने अनेक युद्धों में भाग लिया और सफल हुआ। अपने शासन काल में भी वह अंत तक युद्ध की योजनाएँ स्वयं बनाता था। एक साम्राज्य-निर्माता की दृष्टि से उसने अहमदनगर के राज्य को जीतकर साम्राज्य का विस्तार किया तथा बीजापुर और गोलकुंडा को मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। मध्य एशिया और कंधार को पुन: प्राप्त करने के लिए उसने प्रयास किए थे। शासन की दृष्टि से वह न्यायप्रिय और प्रजापालक था। उसके शासनकाल में व्यापार, उद्योग और कृषि उन्नत स्थिति में थे और साम्राज्य धन-धान्य से पूर्ण था। वह शासन

बनाए। सिंहासन पर बैठने के तुरंत बाद औरंगजेब ने करीब 80 कर समाप्त कर दिये। इन्ही में से 'राहद 'परिवहन-कर', 'पानडारी' (चुंगी-कर) प्रमख स्थानीय कर थे, जिन्हें 'आबवाब' कहते थे। इन करों का जनसाधारण पर था। यद्यपि इससे राज्य की आय में करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष की कमी आयी परंतु प्रजा इ लाभान्वित हुई। यह भी सत्य है कि स्थानीय अधिकारियों की बेईमानी के कारण इनमें से बहुत से जनसाधारण से इसके बाद भी लिए जाते रहे। परंतु फिर भी यह कार्य औरंगजेब के अच्छे शासक की भा का प्रतीक था। औरंगजेब न्यायप्रिय था। ओविंगटन ने लिखा है—"**महान मुगल न्याय का सागर** औरंगजेब बहुत मेहनती था। प्रात: 5 बजे से रात तक औरंगजेब सप्ताह के सभी दिनों में शासन कार्य में व रहता था। अपने अंतिम समय वृद्धावस्था में भी उसने कठिन युद्धों से भी मुंह नहीं मोड़ा। उसने स्वयं लिखा : "**जब तक जीवन की एक भी साँस बाकी है तब तक परिश्रम और कार्य से छुटकारा नहीं मिल** सकत एल्फिन्सटन ने लिखा है- "**जब बादशाह दक्षिण के युद्धों में लगा हुआ था उसकी आयु अधिक हो गई तब भी वह शासन के प्रत्येक विभाग की, प्रत्येक छोटे से छोटे अधिकारी की, प्रत्येक संदेश की, प्रत्ये आक्रमण की और प्रत्येक किले को जीतने की योजना की ओर स्वयं ध्यान देता था।**" इस प्र औरंगजेब का राजत्व सिद्धांत महान था और मध्य युग के महान शासक होने के सभी गुण उसमें विद्यमान थे।

परंतु औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने इस्लाम की बारीकियों को समझते हुए 'कुर (शरीयत) को अपने शासन का आधार बनाया। 1659 ई० में औरंगजेब ने कुरान के नियमों के सार इस्ल आचरण संहिता के नियमों की पुनर्स्थापना के लिए अनेक आदेश जारी किए। बादशाह का तख्त उसे न केव उत्तम शासन करने के लिए ही प्राप्त हुआ था, बल्कि इस्लाम (और उसमें भी सुन्नी मत) की सुरक्षा का अ विस्तार भी उसके प्रमुख कर्तव्य थे। औरंगजेब का राजत्व सिद्धांत इस्लाम का राजत्व सिद्धांत था। औरंगजेब प्रमुख लक्ष्य इस (भारत) 'दार-उल-हर्ब' (काफिरों का देश) को 'दार-उल-इस्माल' (इस्लाम देश) बना था। औरंगजेब जीवनपर्यन्त इस उद्देश्य को नहीं भूला और न कभी उसने शासन-नीति को इससे पृथक रखा।

● औरंगजेब : साम्राज्य-विस्तार (Aurangzeb : Expansion of Empire)

1. उत्तर-पूर्व असम—(असम) शाहशुजा द्वारा अव्यवस्थित शासन और उत्तराधिकार के युद्ध के कारण असम और कूच-बिहार के शासकों ने मुगलों के विरुद्ध खड़े होने का साहस किया। 1661 ई० त मुगलों ने इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। जब औरंगजेब की स्थिति सिंहासन पर दृढ़ हो गयी तब उस मीरजुमला को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया और उसे असमियों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। नवंबर, 1661 ई० को मीरजुमला ने कूच-बिहार की राजधानी पर अधिकार कर लिया, असम के पूर्वी औ मध्य भाग को भी जीत किया, 1662 ई० में गड़गाँव के राजा को हराकर उसकी राजधानी पर भी अधिकार क लिया तथा इस प्रकार मुगलों की सत्ता असम में स्थापित हो गयी। 10 अप्रैल, 1663 ई० को बीमारी के कारण मीरजुमला की मृत्यु हो गई। मीरजुमला के पश्चात् शाइस्ताखाँ बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसने भ अराकान के राजा को परास्त किया और अगले चार वर्ष तक असम पर मुगलों का अधिकार बना रहा। परंत उसके पश्चात राजा चक्रध्वज के नेतृत्व में असमियों ने असम और राजधानी गौहाटी को जीत लिया (1667 ई०)। परंतु 1670 ई० में असम में आपसी कलह के कारण 11 वर्ष में सात राजा बदले। इसका लाभ मुगलों को मिला। यद्यपि कामरुप पर मुगलों का अधिकार न हो सका किन्तु कूच-बिहार का राजा मुगलों की अधीनत में चला गया।

2. दक्षिण भारत—1682 ई० में अपने पुत्र का पीछा करता हुआ औरंगजेब दक्षिण भारत पहुँचा। उसके पश्चात् उसे उत्तर भारत में आने का अवसर नहीं मिला। दक्षिण भारत औरंगजेब का कब्रिस्तान बन गया।

(i) बीजापुर विजय—उत्तराधिकार के युद्ध से पहले शाहजहाँ के आदेश से औरंगजेब ने बीजापुर से एक संधि की थी जिसके अनुसार अली आदिलशाह द्वितीय ने मुगलों को डेढ़ करोड़ रुपया और बीदर,

कल्याणी तथा परेंदा के किला देना स्वीकार किया था। बीजापुर ने इस संधि की शर्तों का पालन नहीं किया। 1665 ई० में राजा जयसिंह की शिवाजी और बीजापुर राज्य का दमन करने के लिए नियुक्त की गयी। उसी वर्ष जयसिंह ने शिवाजी को पुरंदर की संधि करने के लिए मजबूर किया। इसके बाद उसने बीजापुर पर आक्रमण किया और बीजापुर से 12 मील निकट तक पहुँच गया। परंतु सफलता की आशा न देखकर जयसिंह वापस लौट गया। 11 जुलाई, 1666 ई० को वापस आते हुए मार्ग में राजा जयसिंह की बुरहानुपर में मृत्यु हो गई।

अगले दस वर्ष तक बीजापुर मुगलों के आक्रमण से बचा रहा। दिसंबर 1672 ई० में अली आदिलशाह द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका चार वर्षीय पुत्र सिंकदर आदिलशाह गद्दी पर बैठा। अल्पायु के इस शासक के समय में बीजापुर के सरदारों में राज्य के प्रभुत्व के लिए संघर्ष आरंभ हो गया। उस समय दक्षिण का मुगल सूबेदार बहादुरखाँ था। 1676 ई० में उसने बीजापुर पर आक्रमण किया, परंतु वह सफल न हो सका। औरंगजेब ने दिलेरखाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। दिलेरखाँ ने पहले तो बीजापुर के मंत्री सिद्दी मसूद को अपनी तरफ मिला लिया और एक संधि करने में सफल हुआ जिसके अनुसार बीजापुर ने मुगलों के आधिपत्य को मान लिया और सुल्तान की बहिन शाहजादी शहरबानू को औरंगजेब के पुत्र शाहजादा आजम से शादी करने के लिए दिल्ली भेज दिया। परंतु बाद में बीजापुर और मराठों की मित्रता के प्रश्न को लेकर दिलेरखाँ और सिद्दी मसूद में मतभेद हो गया और दिलेरखाँ ने 1679 ई० में बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। दिलेरखाँ ने बीजापुर राज्य में बहुत तोड़ फोड़ की तरंतु उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। 1680 ई० में औरंगजेब ने दिलेरखाँ को दक्षिण से हटा दिया और उसके स्थान पर शाहजादा आजम को इस मुहिम पर भेजा।

शाहजादा आजम अनेक कठिनाइयाँ उठाने पर भी दृढ़तापूर्वक बीजपुर से युद्ध करता रहा। अप्रैल 1685 ई० में बीजापुर के किले पर घेरा डाल दिया। 13 महीने तक किले का घेरा चलता रहा लेकिन किले को नहीं जीता जा सका। 13 जुलाई, 1686 ई० में औरंगजेब खुद बीजापुर किले के घेरे की देखभाल के लिए पहुँचा। 22 सितंबर, 1686 ई० को बीजापुर ने हथियार डाल दिये। सिकंदरशाह स्वयं जाकर औरंगजेब से मिला। औरंगजेब ने उसका स्वागत किया और उसे 'खान' का पद दिया गया तथा एक लाख रुपया प्रतिवर्ष पेंशन दी गई। बीजापुर राज्य को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। बाद में आदिलशाही वंश के अंतिम सुल्तान सिकंदरशाह की सतारा के निकट 32 वर्ष की आयु में मृत्यु हुई और उसकी अंतिम इच्छा के अनुसार उसे धार्मिक गुरु शेख फहीमुल्ला की कब्र के चरणों में खुले कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया।

(ii) गोलकुंडा विजय—अबुलहसन कुतुबशाह गोलकुंडा का शासक था। गोलकुंडा राज्य आवश्यकता पड़ने पर बीजापुर राज्य और मराठों की सहायता करता रहता था। अबुलहसन शिया धर्म को मानने वाला था और उसने शासन की बागडोर दो ब्राह्मण मंत्रियों, मदन्ना और अकन्ना को दे रखी थी। औरंगजेब दक्षिण के इन राज्यों को इसलिए भी समाप्त करना चाहता था क्योंकि इनको समाप्त किए बिना मराठों की शक्ति को समाप्त करना संभव नहीं था और इन राज्यों को समाप्त किए बिना उसकी साम्राज्य-विस्तार की नीति पूरी नहीं हो सकती थी।

1685 ई० में औरंगजेब ने शाहजादा शाहआलम को गोलकुंडा पर आक्रमण करने के लिए तैनात किया। हैदराबाद के मार्ग में मलखेद नामक स्थान पर गोलकुंडा की सेना ने मुगल सेना के मार्ग को रोका। किन्तु सेनापति मुहम्मद इब्राहीम के घात करके मुगलों के साथ मिल जाने के फलस्वरुप गोलकुंडा की सेना को मुगल सेना के सामने से हटना पड़ा। कुतुबशाह सुल्तान अबुलसहन हैदराबाद छोड़कर गोलकुंडा के किले में चला गया और मुगलों ने हैदराबाद पर अधिकार करके वहाँ बहुत बुरी तरह से लूटमार की। अबुलहसन ने संधि का प्रस्ताव दिया। जब संधि की बात चल रही थी तभी कुछ सरदारों और हरम की प्रभावशाली नारियों ने षड्यंत्र करके मदन्ना और अकन्ना का बीच मार्ग में वध करा दिया तथा उनके परिवार और भवनों को लूट लिया गया। मदन्ना और अकन्ना के सिर काटकर शाहजादा शाहआलम के पास भेज दिए गए। इसके पश्चात् शाहआलम

अपनी सेना को लेकर औरंगजेब की शरण में पहुंच गया। परंतु औरंगजेब संधि करने को सहमत नहीं हुआ उसने बीजापुर के किले पर अधिकार करने के पश्चात् 1687 ई० में गोलकुंडा पर आक्रमण करके किले को घेर लिया। आठ महीने से भी अधिक समय तक किले का घेरा चलता रहा और मुगलों को सफलता न मिल अंत में, औरंगजेब ने लालच देकर अब्दुल्ला गनी नामक एक अफगान सरदार को अपनी ओर मिला लिया अं उसने विश्वासघात करके 2 अक्टूबर, 1687 ई० को प्रात:काल किले के फाटक खोल दिए और मुगल सेना किले पर अधिकार कर लिया।

औरंगजेब ने अबुलहसन को बंदी बनाकर दौलताबाद के किले में बंद कर दिया। उसे पचास हजा रुपया वार्षिक पेंशन दी गई और उसके राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार अक्टूबर 1687 ई में गोलकुंडा के स्वतंत्र कुतुबशाही राज्य का अंत हो गया।

औरंगजेब की मृत्यु (Demise of Aurangzeb)

औरंगजेब का प्राणान्त बड़ी दुखद परिस्थितियों में हुआ। राजनीतिक दृष्टि से उत्तर भारत में अनेक स्थानों पर विद्रोह भड़क रहे थे, दक्षिण भारत में मराठे गुजरात, मालवा और खानदेश जैसे सुदूर मुगल प्रान्तों तथ बादशाह की छावनी पर भी लगातार आक्रमण कर रहे थे, शासन व्यवस्था तार-तार हो चुकी थी, आर्थिक दृष्टि से साम्राज्य की स्थिति दीन हो गई थी और अपने पिता औरंगजेब की राज्य को बाँटने की इच्छा को जानते हुए भी शाहजादा मुअज्जम, शाहजादा आजम और शाहजादा कामबक्स युद्ध की तैयारी कर रहे थे। औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण उत्पन्न हुए विद्रोहों और दक्षिण के युद्धों ने मुगल साम्राज्य को बहुत हीन दशा में डाल दिया था। स्वयं औरंगजेब ने मृत्यु से पूर्व अपनी असफलता और दुर्भाग्य को अनुभव कर लिया था। पारिवारिक दृष्टि से औरंगजेब भाग्यहीन था। 1702 ई० में उसकी पुत्री जेबुन्निसा की मृत्यु हो गयी थी, 1704 ई० में उसका निष्कासित पुत्र अकबर फारस में चल बसा, 1705 ई० में उसकी प्रिय पुत्रवधु जहाँजेब नहीं रही, 1706 ई० में उसकी इकलौती जीवित बहन गौहनआरा की मृत्यु हो गई, उसकी मृत्यु के एक माह पश्चात् अकबर के पुत्र बुलंदअख्तर की मृत्यु हुई और उसके दो नातियों की मृत्यु उससे थोड़े समय पहले 1707 ई० में हुई। ऐसी परिस्थितियों में 4 मार्च, 1707 ई० को औरंगजेब की मृत्यु हो गई। दौलताबाद से चार मील दूर शेख जैम-उल-हक के मजार के निकट औरंगजेब को सुपुर्देखाक कर दिया गया। इस प्रकार औरंगजेब का जीवन समाप्त हुआ, जिसे सर जदुनाथ सरकार ने **'एक के अतिरिक्त महान मुगल बादशाहों में महान' कहकर पुकारा है।**

औरंगजेब की धार्मिक नीति और उसके परिणाम—औरंगजेब का शासन कुरान के नियमों पर आधारित था और उसके राजत्व सिद्धान्त का आधार था इस्लाम। उसके जीवन और शासन दोनों का ही प्रमुख उद्देश्य था भारत को, जोकि काफिरों का देश (दार-उल-हर्ब) था इस्लाम के देश (दार-उल-इस्लाम) में परिवर्तित करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने हिन्दुओं के विरुद्ध एक सुनिश्चित नीति अपनाई, जिसके परिणाम मुगल साम्राज्य के लिये अत्यधिक घातक सिद्ध हुए। उसकी यह हिन्दू-विरोधी नीति विभिन्न चरणों से होकर गुजरी।

प्रारम्भिक चरण—सर्वप्रथम औरंगजेब ने मुस्लिम कानूनों को पुन: प्रतिष्ठित करने तथा गैर-मुस्लिम रीति-रिवाजों पर प्रतिबन्ध लगाने का कार्य किया। उसने अपने शासन के ग्यारहवें वर्ष में अपने पूर्वजों द्वारा दिये जाने वाले झरोखा दर्शन को बंद कर दिया। उसमें तुला दान को समाप्त कर दिया, क्योंकि उसके अनुसार यह हिन्दुओं की प्रथा थी। उसने सिक्कों पर कलमा लिखे जाने की प्रथा भी बंद करा दी। जनता के नैतिक स्तर पर नियन्त्रण रखने और उनके जीवन को कुरान के नियमों के आधार पर संचालित करने के दृष्टिकोण से उसने 'मुहत्सिबों' की भी नियुक्ति की।

द्वितीय चरण—औरंगजेब केवल कुछ नियम बनाकर ही संतुष्ट नहीं हुआ वरन् अपनी हिन्दू-विरोधी नीति के द्वितीय चरण में उसने कुछ ऐसे कठोर कदम उठाये जो अन्ततः मुगल साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी हुए।

1. हिन्दू मंदिरों का विध्वंस—औरंगजेब ने सर्वप्रथम हिन्दुओं के द्वारा नये मंदिरों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाया। तत्पश्चात उसने उड़ीसा, कटक और मिदनापुर के प्रत्येक गाँव और कस्बे के स्थानीय अधिकारियों को आदेश दिया कि वे पिछले 10-12 वर्षों में बने सभी छोटे-बड़े मंदिरों को तोड़ दें और पुराने मंदिरों की मरम्मत की अनुमति न दें। अपने धार्मिक आवेश में औरंगजेब ने जिन मंदिरों का विध्वंस किया वे थे काठियावाड़ में सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर, बनारस में विश्वनाथ का मंदिर और मथुरा में केशवराय का देहरा। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों पर बहुत बड़ी संख्या में मंदिरों को तोड़ा गया। इसके अतिरिक्त सोने-चाँदी, पीतल, ताँबे एवं पत्थर से बनी हुई तथा रत्नजड़ित मूर्तियों को न केवल तोड़ा गया वरन् ऐसे स्थानों पर डाला भी गया जहाँ वे मुसलमानों के पैरों तले रौंदी भी जा सकें।

2. जजिया कर पुनः लगाना—जजिया गैर-मुसलमानों (प्रमुखतः हिन्दुओं) पर लगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण कर था। अकबर ने 1564 में इसे हटा दिया था परन्तु औरंगजेब ने 1679 में यह हिन्दुओं पर पुनः लगा दिया। इतना ही नहीं, इस कर को अत्यधिक सख्ती से वसूल करने के आदेश भी दिये।

3. चुंगी के सम्बन्ध में हिन्दू-मुसलमानों में भेद—एक आदेश के द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्ष में मुसलमानों के व्यापारिक माल को कर से मुक्त कर दिया गया। बाद में जब पता चला कि कुछ मुसलमान बेइमानी से अपने माल के साथ हिन्दुओं का माल भी निकलवा देते थे, तो मुसलमानों पर $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत चुंगी लगा दी गई यद्यपि हिन्दुओं से अभी भी 5 प्रतिशत कर ही वसूल किया जाता था।

4. हिन्दू त्योहारों, धार्मिक उत्सवों और तीर्थयात्राओं पर प्रतिबंध—1665 में एक आदेश के द्वारा औरंगजेब ने हिन्दुओं के प्रमुख त्योहारों होली और दीवाली के मनाये जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अकबर द्वारा हटाये गये हिन्दू तीर्थ यात्री कर को भी पुनः लगा दिया और तीर्थ यात्राओं पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया।

5. हिन्दुओं के लिये सरकारी उच्च पदों के द्वार बन्द करना—औरंगजेब ने हिन्दुओं के लिये उच्च पदों के द्वार बंद कर दिये। यद्यपि कुछ हिन्दू सरकारी पदों पर बने रहे, परन्तु उच्च एवं महत्वपूर्ण पदों पर उनकी नियुक्तियाँ बंद कर दी गई। इसके अतिरिक्त जिन विभागों में मुसलमान कार्य करते थे, उनमें हिन्दू सर्वोच्च अधिकारी नहीं हो सकते थे। 1695 में राजपूतों को छोड़कर समस्त हिन्दुओं पर अच्छी नस्ल के घोड़ों और हाथियों पर सवारी करने पर तथा हथियार रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

6. हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये प्रलोभन देना—हिन्दुओं के विरुद्ध किये गये उपर्युक्त सभी उपाय हिन्दुओं को कष्ट पहुँचाकर इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये प्रेरित करने के दृष्टिकोण से किये गये थे, परन्तु इनके साथ ही साथ औरंगजेब ने प्रलोभन देने का मार्ग भी अपनाया। औरंगजेब ने यह घोषणा करा दी जिसमें कहा गया कि मुसलमान धर्म स्वीकार कर लेने वाले हिन्दुओं को न केवल वेतन तथा पुरस्कार प्रदान किये जाएँगे वरन् सरकारी नौकरियाँ भी प्रदान की जाएँगी। इतना ही नहीं, दो हिन्दुओं के मध्य जायदाद सम्बन्धी विवाद में निर्णय उस व्यक्ति के पक्ष में दिया जाता था जो मुसलमान बनना स्वीकार कर ले। इस प्रकार औरंगजेब ने हिन्दुओं द्वारा इस्लाम स्वीकार कराये जाने के लिये दण्ड एवं पुरस्कार तथा प्रलोभन सभी नीतियाँ अपनाई।

औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति के परिणाम—औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति के परिणाम अत्यधिक भयंकर हुए तथा उसकी दमन की नीति ने भारतवर्ष की विभिन्न जातियों को उसके विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाने के लिये प्रेरित किया। इन विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य की जड़ों को हिलाकर रख दिया। जाटों, सतनामियों, सिक्खों, बुन्देलों आदि के विद्रोह हुए, जिनको दबाने में औरंगजेब को बहुत अधिक शक्ति और समय लगाना पड़ा। औरंगजेब की धार्मिक नीति और हिन्दुओं के उत्पीड़न के प्रभाव मुगल साम्राज्य के लिये घातक हुए।

औरंगजेब का चरित्र, व्यक्तित्व और मूल्यांकन (Character and Personality of Aurangzeb and his Evaluation)

मुगल साम्राज्य की असफलता और पतन में औरंगजेब का उत्तरदायित्व—औरंगजेब शिक्षित, परिश्रमी, संयमी, दृढ़निश्चयी, धर्मपरायण, चतुर और योग्य सैनिक और सफल सेनापति था। उसे फारसी, तुर्की और हिंदी का समुचित ज्ञान था। वह अध्ययनशील था और उसे विद्वानों की श्रेणी में रखा जा सकता है। अत्यधिक परिश्रमी था। उसे बामुश्किल 3 या 4 घंटे सोने का अवसर मिलता था। शासन का कोई ऐसा विभाग न था, अधिकारी की कोई ऐसी नियुक्ति न थी और युद्ध की कोई ऐसी योजना न थी जिसे औरंगजेब स्वयं निर्दिष्ट करता हो। **वह साहसी था।** जीवन की कठिनतम परिस्थितियों में उसने कभी धैर्य नहीं खोया। बचपन में हाथियों की एक लड़ाई को देखने के अवसर पर जब एक हाथी ने शहजादे औरंगजेब पर आक्रमण किया तो भागने के स्थान पर शाहजादे ने हाथी पर तलवार से वार किया था और उसे भगा दिया था। बल्ख (मध्य एशिया) में उजबेगों से युद्ध के दौरान युद्ध के मैदान में घोड़े से उतरकर नमाज पढ़ने का साहस शाहजादा औरंगजेब ही दिखा सकता था। इसी प्रकार, अपने पुत्र अकबर के विद्रोह करने पर शहंशाह औरंगजेब के पास अजमेर में मुट्ठीभर सेना थी, परंतु पीछे हटने के बजाय औरंगजेब युद्ध करने के लिए अजमेर से बाहर आ गया था। **उसका व्यक्तिगत जीवन आदर्श था।** उसे अपने आप पर और अपने आचार-विचार पर पूर्ण और कठोर नियंत्रण था। वह बहुत सादा भोजन करता था और सादे वस्त्र पहनता था। वह शराब बिलकुल नहीं पीता था। इस्लाम की शरियत के अनुसार उसने भी चार से अधिक शादियाँ नहीं की और एक प्रणय-प्रसंग (बुरहानपुर में हीराबाई उर्फ जैनबदी महल के साथ जबकि वह शाहजहाँ द्वारा दूसरी बार दक्षिण भारत का सूबेदार नियुक्त किया गया था) के अतिरिक्त उसका जीवन स्त्रियों के संबंध में निष्कलंक था। वह दृढ़निश्चयी था और एक बार अपने लक्ष्य को निर्धारित करने के पश्चात् उसके साथ कभी समझौता करने को तैयार नहीं होता था। सैनिक की दृष्टि से औरंगजेब ने साहस और कौशल प्रदर्शित किया था और हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में वह सिद्धहस्त था। सेनापति की दृष्टि से वह चालाक और रण-कुशल सेनापति सिद्ध हुआ। मध्य एशिया और कंधार के आक्रमण के अवसर पर उसे अवश्य सफलता प्राप्त नहीं हुई थी परंतु उसके लिए वह स्वयं ही उत्तरदायी नहीं था। विषम परिस्थितियाँ और अच्छे तोपखाने की कमी असफलता का कारण थे। उत्तराधिकार के युद्ध में जिस गति और कौशल का उसने परिचय दिया था वही आगे चलकर उसकी सफलता का कारण बने। उसके पश्चात् भी अनेक युद्धों में उसने स्वयं भाग लिया और सफलता प्राप्त की। औरंगजेब युद्ध को जीतने के लिए शक्ति, कौशल और कूटनीति तीनों से काम लेता था। अपने भाइयों को पराजित करने, अकबर के विद्रोह को दबाने और गोलकुंडा के किले को जीतने में उसने कूटनीति का आश्रय लिया था।

परंतु व्यक्तिगत रूप में औरंगजेब न अच्छा पुत्र, न अच्छा पिता, न अच्छा मित्र, न अच्छा भाई, न अच्छा बादशाह और न अच्छा शासक सिद्ध हुआ। उसने अपने पिता को बंदी बनाकर रखा, अपने भाइयों का वध कराया, उसका एक पुत्र विदेश भागने को विवश हुआ, उसके एक पुत्र और एक पुत्री की मृत्यु बंदी गृह में हुई, उसके एक अन्य पुत्र को आठ साल कारागार में रहना पड़ा और उसका कोई मित्र नहीं बन सका। **औरंगजेब स्वयं इन सब के लिए उत्तरदायी था। सर्व प्रथम, राजनीति में उदारता उसकी नीति के विरुद्ध थी और दूसरे वह शक्की मिजाज का व्यक्ति था और किसी पर कभी विश्वास नहीं करता था।**

फिर भी, मध्य युग के इतिहास में औरंगजेब का स्थान महान है-उसकी सफलताओं के कारण भी और उसकी असफलताओं के कारण भी। इसी कारण जदुनाथ सरकार ने उसे **'एक के अतिरिक्त महान मुगल बादशाहों में महान'** पुकारा है और सर जदुनाथ सरकार का औरंगजेब पर जो शोध-कार्य है उसे देखते हुए उनकी राय को प्राय: सभी इतिहासकारों को स्वीकार करना पड़ता है। औरंगजेब के समय की महानतम सफलता मुगल साम्राज्य का विस्तार था। सर जदुनाथ सरकार के अनुसार—"औरंगजेब का इतिहास प्राय: 50 वर्ष का भारत का इतिहास है। उसके समय में मुगल साम्राज्य अपने विस्तार की चरम सीमा पर पहुँच गया और एक इतना बड़ा राज्य हो गया जितना भारत के इतिहास के आरंभ होने से ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण तक नहीं

हुआ था।'' परंतु जदुनाथ सरकार ने यह भी कहा है-''साम्राज्य का विस्तार उसके अंत का आरंभ होना था।'' इस प्रकार सर जदुनाथ सरकार के शब्दों से औरंगजेब की महान सफलता और महान असफलता स्पष्ट हो जाती है। इतिहासकार लेनपूल ने स्पष्ट लिखा है—''निस्संदेह, औरंगजेब का जीवन महान विफलता थी लेकिन वह महानता से ही विफल हुआ था।'' इस प्रकार औरंगजेब महान था। परंतु औरंगजेब असफल हुआ। इतिहासकार स्मिथ का कथन है—''जब हम औरंगजेब को एक बादशाह की दृष्टि से देखते हैं तो कहना पड़ता है कि वह असफल था।'' इतिहासकार लेनपूल जो एक स्थान पर औरंगजेब को अपने पिता से अधिक बुद्धिमान, अधिक न्यायप्रिय और अधिक दयावान बताते हैं, एक अन्य स्थान पर उसके बारे में लिखते हैं—''उसके शासन के समाप्त होने से पहले ही हिंदुस्तान अव्यवस्थित हो गया था और भविष्य में पतन के चिंह प्रकट होने लगे थे।'' सर जदुनाथ लिखते हैं—''हिन्दुस्तान में शासन बहुत शीघ्रता से गिरने लगा। शांति, समृद्धि और ललित कलाओं का ह्रास हुआ तथा संपूर्ण भारतीय सभ्यता पिछड़ गई। उत्तर-पश्चिम की सीमाओं की सुरक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया गया और साम्राज्य के आर्थिक साधन इतने संकुचित हो गए कि वह साम्राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हो गए। दक्षिण भारत में बीजापुर, गोलकुंडा, पूर्वी कर्नाटक और महाराष्ट्र की औरंगजेब की विस्तृत विजय सभी भ्रमपूर्ण थीं। साम्राज्य की शक्ति और सम्पत्ति में वृद्धि करने के स्थान पर उन्होंने आर्थिक दृष्टि से साम्राज्य का विनाश कर दिया और उसकी सैनिक शक्ति को नष्ट कर दिया। वास्तव में मुगल साम्राज्य इतना अधिक विस्तृत हो गया कि एक केन्द्र स्थान से और एक व्यक्ति द्वारा उसका शासन करना असंभव हो गया तथा उसका पतन आरंभ हुआ जिसने 18 वीं सदी में भारत के इतिहास को 'महान अराजकता' की स्थिति में पहुँचा दिया।''

मुगलकाल में हुई सांस्कृतिक प्रगति—मुगल बादशाओं ने भारत में कई शताब्दियों तक शासन किया। अपने इस दीर्घ शासनकाल में इन शासकों ने न केवल साम्राज्य का ही विस्तार किया तथा उसको एक कुशल शासन प्रबन्ध ही प्रदान किया वरन् साहित्य एवं विभिन्न कलाओं के विकास में भी प्रर्याप्त योगदान दिया। इनके प्रोत्साहन एवं संरक्षण में साहित्य एवं विभिन्न कलाओं का सर्वांगीण विकास हुआ।

साहित्य—मुगलकाल में विभिन्न भाषाओं के साहित्य तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं का अत्यधिक विकास हुआ। **बाबर** स्वयं भी एक विद्वान था तथा अरबी, तुर्की एवं फारसी का ज्ञाता था। उसने तुर्की में अपनी आत्मकथा तुजुक-ए-बाबरी अथवा बाबरनामा की रचना की, जो साहित्यिक दृष्टिकोण से भी एक उत्तम कृति है। बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने हुमायूँनामा की रचना की। **हुमायूँ** भी साहित्यिक अभिरुचि का था तथा उसने स्वयं भी कवितायें लिखी एवं शेख अमानुल्ला, शेख गादी एवं शेख अब्दुल वाहिद बिलग्रामी आदि विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया।

अकबर के समय में साहित्यिक गतिविधियों में अत्यधिक अभिवृद्धि हुई। यद्यपि वह स्वयं अशिक्षित था परन्तु उसके संरक्षण में बहुत सारे विद्वानों ने महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। उसके समय में हिन्दी एवं फारसी दोनों भाषाओं के साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ तथा संस्कृत एवं अन्य भाषाओं के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद भी हुआ। अकबर के समय का फारसी साहित्य तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—ऐतिहासिक रचनायें, अनुवाद एवं काव्यात्मक रचनायें। प्रमुख साहित्यिक ग्रन्थों में मुल्ला दाऊद का तारीख-ए-अल्फी, अबुल फजल के आइन-ए-अकबरी एवं अकबरनामा, बदायूनी का मुन्तखाब-उत्-तवारीख, निजामुद्दीन अहमद का तबकात-ए-अकबरी, फैजी सरहिन्दी का अकबरनामा और अब्दुल बाकी का मासिर-ए-रहीमी है। अकबर के समय का फारसी का सर्वश्रेष्ठ लेखक था अबुल फजल, जो एक विद्वान, कवि, निबन्ध लेखक, आलोचक एवं इतिहासकार था। अकबर के समय में विभिन्न हिन्दी ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद हुआ जैसे महाभारत का रज्मनामा नाम से, बदायूंनी के द्वारा रामायण का, इब्राहीम सरहिन्दी ने अर्थवेद का फारसी में अनुवाद किया। कुछ यूनानी एवं अरबी ग्रन्थों का भी फारसी में अनुवाद किया गया। अकबर के समय के प्रसिद्ध कवियों में थे गजाली और फैजी।

अकबर की हिन्दी कविता में गहन अभिरुचि एवं संरक्षण ने हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में मह— योगदान दिया। मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत, तुलसीदास ने रामचरित मानस, विनयपत्रिका, गी एवं कवितावली तथा सूरदास ने सूरसागर, सूरसारावली एवं साहित्यलहरी की रचना की। अकबर के दर में बीरबल तथा अब्दुर्रहीम खानखाना प्रमुख कवि थे। बीरबल को अकबर ने कवि प्रिय की उपा अब्दुर्रहीम खानखाना इस युग का सर्वश्रेष्ठ पद्य लेखक था जिसके दोहे आज भी घर-घर में प्रसिद्ध

जहाँगीर भी परिष्कृत साहित्यिक अभिरुचि का बादशाह था। वह स्वयं एक विद्वान एवं आलोच तथा उसने विद्वानों को संरक्षण भी प्रदान किया। उसने अपने पूर्वज बाबर के ही समान अपनी आत्म— तुजुक-ए-जहाँगीरी लिखी। इकबालनामा-ए-जहाँगीरी में उन विद्वानों का उल्लेख है जिन्होंने जहाँगीर के द— को सुशाभित किया। इनमें प्रमुख थे गियासबेग, मुतामद खाँ, नकीब खाँ, नियामतुल्ला एवं अब्दुल हक देह—

शाहजहाँ ने भी विद्वानों को संरक्षण दिया तथा उसके संरक्षण में महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचनायें हुईं। प्रमुख थे पादशाहनामा का लेखक अब्दुल हमीद लाहौरी, अमीन काजविनी जिसने भी पादशाहनामा ग्रन्थ रचना की, शाहजहाँनामा का लेखक इनायत खाँ तथा अमल-ए-सलीह का लेखक मुहम्मद सलीह।

औरंगजेब की साहित्य एवं काव्य में कोई अभिरुचि न होने के कारण हिन्दी साहित्य को आघात प तथा ऐतिहासिक ग्रन्थ भी चोरी-छिपे लिखे गये। खाफी खाँ ने मुन्तखाब-उल-लुबाब की रचना चोरी—छिपे औरंगजेब के समय के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ थे मिर्जा मुहम्मद काजिम का आलमगीरनामा, मुहम्मद साकी मासिर-ए-आलमगीरी, सुजान राय खत्री का खुलासात-उत्-तवारीख, भीमसेन बुरहानपुरी नुस्खा-ए-दिलखुशा और ईश्वरदास का फतूहात-ए-आलमगीरी आदि।

कलायें—मुगल शासकों की कलाओं में भी अत्यधिक अभिरुचि थी जिसके कारण विभिन्न शासकों समय में भिन्न-भिन्न कलाओं का विकास हुआ।

1. **चित्रकला**—मुगलों ने चित्रकला के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। **बाबर** सौन्दर्य एवं कला प्रेमी था एवं उसने चित्रकला को भी संरक्षण दिया। उसके संस्मरणों के फारसी पाठ की अलवर हस्त—लिपि चित्र चित्रकला की तत्कालीन शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं।

हुमायूँ के समय के दो प्रमुख चित्रकार थे मीर सैय्यद अली एवं अबदुस्समद, जिन्ह दास्तान-ए-अमीर हमजा को चित्रित करने का कार्य किया, जो अकबर के समय में पूरा हो सका। इन्हीं प्रेरणा के परिणामस्वरूप अकबर के समय में चित्रकला का अधिक विकास हुआ।

अकबर के समय में चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ। अकबर ने अब्दुस्समद के अधीन चित्रकला एक अलग विभाग खोल दिया था जहाँ हिन्दू एवं ईरानी चित्रकार मिलकर कार्य करते थे। उनके संयुक्त परिश्— की झलक फतेहपुर सीकरी की दीवारों पर बनाये गये चित्रों में दिखाई भी पड़ती हैं। अकबर के दरबार फारस के चित्रकारों अब्दुस्समद, मीर सैय्यद अली, फरुखबेग, खुसरोअली एवं जमशेद के अतिरिक्त बसाव सांवलदास, केसू, लाल, मुकुन्द, हरिबंस एवं दसवन्त आदि हिन्दू चित्रकार थे।

चित्रकला का सर्वांगीण विकास **जहाँगीर** के समय में हुआ। जहाँगीर स्वयं भी कला का बहुत अधि पारखी था कि वह चित्र को देखकर चित्रकार का नाम बता सकता था एवं एक चित्र यदि कई कलाकारों द्वारा बनाया गया हो तो वह भिन्न भागों के बनाने वाले चित्रकारों के नाम अलग-अलग बता सकता था। उस समय के चित्रों में प्रकृति के चित्र तथा व्यक्तियों के चित्र बनाने के क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ। उस दरबार के प्रमुख चित्रकारों में थे हेरात के आगा रजा और उसका पुत्र अबुलहसन, समरकंद के नादिर ए मुहम्मद मुराद तथा उस्ताद मंसूर एवं हिन्दू चित्रकार बिशनदास, मनोहर एवं गोवर्धन।

शाहजहाँ भी एक कला-प्रेमी सम्राट था, परन्तु उसकी अभिरुचि चित्रकला का अपेक्षा स्थापत्य कला अधिक थी, जिसके परिणामस्वरूप उसके समय में चित्रकला का विकास रुक गया। उसने कुछ चित्रकारों को

राज्याश्रय एवं प्रोत्साहन भी दिया जिनमें मुहम्मद फकीर उल्ला, मीर हाशिम, अनूप और चित्रमाठी आदि उल्लेखनीय हैं। उसके युग में चित्रकला का जो कुछ भी विकास हुआ वह सामन्तों एवं प्रान्तपतियों की इस कला के प्रति रुचि एवं संरक्षण के कारण ही सम्भव हो सका।

औरंगजेब धर्मान्ध और रूढ़िवादि शासक था जो चित्रकारी को इस्लाम-विरोधी समझता था। इसलिये उसने चित्रकारों को संरक्षण एवं राज्याश्रय देना बन्द कर दिया। इतना ही नहीं, उसने गोलकुंडा और बीजापुर के राजप्रासादों में भित्ति चित्रों में सफेदी कराकर अपनी धर्मान्धता और रुढ़िवादिता का परिचय दिया। फिर भी, उसके समय में यदि चित्रकला जीवित रह सकी तो इसका एकमात्र कारण था स्थानीय शासकों और सामन्तों का उदार संरक्षण।

2. स्थापत्य कला—मुगलकाल में जिस कला का सर्वाधिक विकास हुआ वह थी स्थापत्य कला।

बाबर के विषय में कहा जाता है कि उसने अल्बानियां के प्रसिद्ध कारीगर सिनान के शिष्यों को मस्जिदों एवं अन्य भवनों के निर्माण के लिये आमन्त्रित किया था। उसके समय के उपलब्ध भवनों में पानीपत में काबुल बाग की मस्जिद, सम्भल की जामा मस्जिद एवं आगरा के पुराने लोदी किले में एक मस्जिद है।

हुमायूं के समय के दो भवन उपलब्ध हैं जो अब खंडहर मात्र हैं। एक मस्जिद आगरा में है और दूसरी पंजाब के फतेहाबाद जिले में है। दिल्ली में दीनपनाह नाम का महल भी है।

अकबर के समय में भवन निर्माण कला का अत्यधिक विकास हुआ। लाल बलुआ पत्थर के साथ संगमरमर का प्रयोग अकबर के समय से ही प्रारम्भ हुआ। उसने हिन्दू भवन निर्माण कला की विभिन्न विशेषताओं को अपने भवनों में अपनाया जो फतेहपुर सीकरी के भवनों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उसके समय के प्रमुख भवन हैं—फतेहपुर सीकरी में जोधाबाई का महल, दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास, जामा मस्जिद, बुलंद दरवाजा, पंचमहल और जहाँगीरी महल। उसने सिकन्दरा में अपने मकबरे की योजना भी बनाई थी जिसे जहाँगीर ने पूरा करवाया।

जहाँगीर के चित्रकला प्रेम के कारण भवन निर्माण कला का विशेष विकास न हो सका। उसने सिकन्दरा में अकबर का मकबरा पूरा करवाया था। उसके समय का दूसरा भवन है आगरा में नूरजहाँ का पिता एत्मादुद्दौला का मकबरा जिसे नूरजहाँ ने स्वयं बनवाया। यह सफेद संगमरमर से बना है एवं बहुमूल्य पत्थरों से नक्काशी की गई है।

शाहजहाँ का काल स्थापत्य कला के चरमोत्कर्ष का युग था। उसके समय में भवन-निर्माण कला में शिल्प तथा सामग्री दोनों ही दृष्टिकोणों से परिपक्वता एवं सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। लाल बलुआ पत्थर के स्थान पर संगमरमर का भरपूर प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। दिल्ली का लाल किला, दीवान-ए-आम एवं दीवान-ए-खास, जामा मस्जिद, मयूर सिंहासन एवं आगरा की मोती मस्जिद उसके समय के महत्वपूर्ण भवन हैं। परन्तु इन सबमें सुन्दरतम् है आगरा का ताजमहल जो सुन्दरता एवं भव्यता दोनों ही दृष्टिकोणों से अनुपम है।

औरंगजेब के समय में अन्य कलाओं की ही भाँति स्थापत्य का भी ह्रास हुआ। उसने तो नये भवन बनवाने के स्थान पर उनको तोड़ने का कार्य अधिक किया।

3. संगीत—मुगलकाल में अन्य कलाओं के समान संगीत कला का भी विकास हुआ। **बाबर** को संगीत का शौक था और उसने गायन कला की एक पुस्तक भी लिखी थी। **हुमायूँ** भी गाने का प्रेमी था। उसने मांडू पर अधिकार करने के बाद वहाँ से पकड़कर लाये गये बच्चू को अपने दरबार का गवैय्या बना दिया था।

अकबर को संगीत में अत्यधिक अभिरुचि थी तथा उसने देश-विदेश के बड़े-बड़े गायकों को अपने दरबार में एकत्रित करने का प्रयत्न किया। अबुल फजल के वर्णन से पता चलता है कि अकबर के दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे जिनका उसने प्रतिदिन एक के हिसाब से सात विभागों में वर्गीकरण कर रक्खा था। प्रत्येक

विभाग सप्ताह में एक दिन बादशाह तथा दरबार का मनोरंजन करता था। अकबर के नवरत्नों में तानसेन एक था जो युगयुगीन गायक था। अकबर स्वयं भी अच्छा गायक था और नक्कारा बजाने में प्रवीण था। अक के दरबार में हिन्दू और मुस्लिम संगीत मिलकर एक हो गये थे।

जहाँगीर को भी संगीत से प्रेम था। इकबाल नामा-ए-जहाँगीरी में उसके दरबार के 6 प्रसिद्ध गायकों उल्लेख मिलता है। उसने अपने दरबार में उच्च कोटि के अनेक गायकों को आश्रय दिया हुआ था और उनसे नियमपूर्वक गाने सुनता था और उनको पुरस्कृत भी करता था।

शाहजहाँ को भी संगीत एवं गायन से प्रेम था। वह सोने से पूर्व श्रेष्ठ गायकों के गाने सुना करता था। स्वयं भी संगीत का अच्छा ज्ञाता था और कभी-कभी स्वयं भी गाने-बजाने में भाग लेता था। उसके शासन दीवान-ए-खास में प्रतिदिन शास्त्रीय एवं वाद्य संगीत चलता रहता था। रामदास एवं महापात्र उसके दरबार दो प्रसिद्ध गायक थे।

औरंगजेब के समय में अन्य कलाओं के ही समान संगीत का भी ह्रास हुआ। परिणामस्वरूप संगीतक और गायकों ने राज्याश्रय न मिलने के कारण इधर-उधर शरण ली।

मुगलकालीन अर्थव्यवस्था—मुगलकाल की आर्थिक दशा के विषय में बहुत अधिक विवरण न मिलते। अबुल फजल की पुस्तकों में भारत की तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक दशा का पर्याप्त उल्ले मिलता है जिससे आभास होता है कि उस समय में भारत की आर्थिक दशा उत्तम थी। समय-समय पर अने विदेशी यात्री जैसे सर टॉमस रो, पेलसर्ट, पीटर मुन्डी, ट्रेवर्नियर और बर्नियर आदि आये जिन्होंने तत्कालं कृषि, व्यापार, उद्योग धंधों, आयात-निर्यात की वस्तुओं, जनसाधारण एवं मजदूरों की दशा आदि का जो कु भी थोड़ा-बहुत उल्लेख किया है उससे हमें तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था एवं आर्थिक दशा आदि के विषय पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

कृषि—भारत प्राचीन काल से ही एक कृषि-प्रधान देश रहा है और मध्यकाल में भी अधिकांश जन कृषि पर ही निर्भर थी। यद्यपि मुगल काल में विभिन्न उद्योग-धन्धों का विकास हुआ और व्यापार भी समुन्न दशा में था, परन्तु फिर भी कृषि पर ही सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था निर्भर थी। विभिन्न स्रोतों से इस बात की पुष्टि होती है कि मुगल सम्राटों ने उत्पादन की वृद्धि की आवश्यकता को समझते हुए कृषकों को अधिक उपज के लिये तरह-तरह से प्रोत्साहन दिया। मुगल सम्राटों ने सिंचाई की भी उत्तम व्यवस्था की। लुब्बत-उत्-तवारीख के लेखक राय भारमल ने लिखा है कि जो कृषक कृषि द्वारा आय में वृद्धि करते थे उन्हें पुरस्कार मिलता थ और जो कम करते थे उन्हें दण्ड मिलता था। यह भी उल्लेख मिलता है कि निर्धन प्रजा को राजकोष से पशु बीज एवं कृषि का सामान खरीदने के लिये ऋण दिया जाता था।

देश में खरीफ और रबी की दो फसलें होती थीं। खरीफ की फसल में चावल, बाजरा, उड़द, मूँग, ज्वार तथा नील और रबी की फसल में गेहूँ, जौ आदि की खेती होती थी। फसलों का स्थानीयकरण था तथा विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग वस्तुओं का उत्पादन होता था।

मुगल शासकों द्वारा फलों के बाग लगाये जाने का भी उल्लेख मिलता है। मुगल शासकों ने नगरों के पास बगीचे लगवाये तथा उनमें तरह-तरह के फलों के वृक्ष लगवाये। मुगलकाल में बहुत-से पश्चिमी एशिया के फलों का भारत में उत्पादन किया जाता था जैसे तरबूज, खरबूजा, आड़ू और अनार आदि। फलों के अतिरिक्त बागों में सुगन्धित फूलों के पौधे भी लगाये जाते थे जिनका उपयोग सुगन्धित तेल अथवा इत्र आदि के बनाने में किया जाता था।

समकालीन वृतान्तों से पता चलता है कि शाहजहाँ के युग तक कृषि में पर्याप्त उन्नति हुई परन्तु औरंगजेब द्वारा कृषकों पर अत्याचार के कारण कृषि की अवनति प्रारम्भ हो गई। राजस्व अधिकारियों के अत्याचारों के कारण कृषक कृषि कार्य छोड़कर भागने लगे।

उद्योग-धन्धे एवं शिल्प—मुगल काल में बहुत सारे उद्योगों और शिल्पों का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि उस समय उद्योग काफी विकसित अवस्था में थे। विभिन्न यात्रियों और लेखकों ने शाही कारखानों का उल्लेख किया है जिनमें तरह-तरह की वस्तुओं का उत्पादन होता था। बर्नियर ने भी राजधानी दिल्ली में अनेक कारखानों को देखा था और उसने लिखा है कि कई बड़े-बड़े कारखाने थे जिनमें शिल्पकार कार्य करते थें। उसने यह भी लिखा है कि एक बड़े कमरे में कसीदा काढ़ने वाले कार्य में लगे हुए थे, दूसरे में सुनारों, तीसरे में रंगरेजो, चौथे में वार्निश करने वाले तथा अन्य कमरों में दर्जियों, मोचियों, सिल्क, दरी और बारीक मलमल बनाने वालों को कार्य करते देखा।

मुगल काल में बहुत सारे उद्योग प्रचलित थे जिनमें वस्त्र उद्योग सर्वप्रमुख था और जो सम्पूर्ण देश में फैला हुआ था। देश में कपड़ा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे गुजरात में पाटन, खानदेश में बुरहानपुर तथा जौनपुर, बनारस, ढाका एवं उत्तर-प्रदेश, बंगाल एवं बिहार के कुछ क्षेत्र। ढाका का मलमल विश्व प्रसिद्ध था जिसकी विदेशी यात्रियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। लाहौर एवं कश्मीर शाल के लिये तथा लाहौर एवं फतेहपुर अपनी दरियों और गलीचों के लिये प्रसिद्ध थे। वस्त्रों पर रंगाई और छपाई का काम भी होता था। रंगाई के लिये नील का प्रयोग किया जाता था।

वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त धातु उद्योग, पत्थर उद्योग, चीनी उद्योग, कागज उद्योग, चमड़ा उद्योग तथा जहाज निर्माण उद्योग भी थे। भारतीय जहाज निर्माण उद्योग की इतनी अधिक प्रतिष्ठा थी कि पुर्तगाली भी अपने सर्वश्रेष्ठ जहाजों का निर्माण भारत में ही कराते थे।

व्यापार एवं वाणिज्य—मुगल काल में भी प्राचीन काल के ही समान व्यापार और वाणिज्य पूर्णरूप से विकसित थे। देशी व्यापार के साथ-साथ विदेशों के साथ भी काफी व्यापार किया जाता था। नगरों में उद्योग धंधों के विकास के साथ-साथ व्यापार में वृद्धि हुई। सड़कों के निर्माण और उनकी सुरक्षा के प्रबन्ध ने भी व्यापार को प्रोत्साहन दिया। उस समय के कुछ शहर व्यापारिक केन्द्रों के रूप में विख्यात थे, जिनमें से एक महत्वपूर्ण केन्द्र था लाहौर।

विदेश व्यापार—मुगल काल में भारत का विदेश व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। मुगल साम्राज्य और पश्चिमी इस्लामी प्रदेशों का व्यापारिक बंधन बहुत प्रगाढ़ था तथा काबुल के माध्यम से व्यापारिक माल का आदान-प्रदान होता था। मुगल काल में समुद्री व्यापार भी खूब होता था। पश्चिम से भारत को जोड़ने वाले दो सीधे समुद्री मार्ग थे—एक तो फारस की खाड़ी का मार्ग और दूसरा लाल सागर का मार्ग।

विभिन्न वस्तुओं का आयात-निर्यात होता था। आयात की प्रमुख वस्तुएँ थी सोना, धातुएँ, घोड़ा, हाथी दाँत, मूँगा, बहुमूल्य पत्थर, चीनी मिट्टी के बर्तन तथा विलास की वस्तुएँ। निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ थीं कृषि की उपज, सूती और रेशमी वस्त्र, अफीम, नील, ज्वार-बाजरा, नारियल, कपूर, काली मिर्च, आदि।

मुगलकालीन सामाजिक व्यवस्था—मुगलकालीन समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहला वर्ग था **शासक वर्ग**। दूसरा था अभिजात वर्ग और तीसरा साधारण वर्ग। समाज में सर्वोच्च स्थान पर शासक वर्ग था। मुस्लिम शासन की स्थापना में अभिजात वर्ग की स्थापना अत्यधिक महत्वपूर्ण रही थी इसलिये इन्हें बड़ी-बड़ी जागीरें प्रदान की गई थीं, सुविधायें और विशेषाधिकार दिये गये थे तथा इन्हें शासन का स्तम्भ माना जाता था। मुगल-काल में मध्यम वर्ग जैसे—पृथक वर्ग तो नहीं था, परन्तु छोटे मनसबदार, छोटे व्यापारी, लेखक, शिक्षक, वैद्य आदि इस श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। निम्नतम वर्ग सर्वसाधारण का था जिसमें कारीगर, कृषक, सेवक, सिपाही, शिल्पी, दास आदि सभी आ जाते थे। सर्वसाधारण वर्ग की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशा दयनीय थी तथा सारे दिन की कड़ी मेहनत के बावजूद भी यह बड़ी मुश्किल से दो वक्त की रोटी जुटा पाते थे।

सल्तनत काल में हिन्दू और मुस्लिम समाज बिल्कुल अलग-अलग रहे, जिसमें मुस्लिम शासक था और हिन्दू शासित। परन्तु मुगलकाल में स्थिति बदली तथा दोनों सम्प्रदायों के बीच की खाई अथवा कटुता में कमी

साम्राज्य की एकता का नष्ट हो जाना आदि का दोष औरंगजेब पर नहीं लगाया जा सकता। परंतु यह करना कठिन है कि औरंगजेब की नीति धार्मिक असहिष्णुता की थी अथवा नही। अत: यह प्रश्न विवादा बना रहेगा।

मुगल साम्राज्य के पतन के विषय में एक और विचार नोमन अहमद सिद्दीकी ने प्रकट किया है। मानना है कि **राजनीतिक, प्रशासनिक और कृषि-संकट** सम्मिलित रुप से मुगल साम्राज्य के पतन के उत्तरदायी थे। औरंगजेब के बाद के समय में जागीरदारी-प्रथा बदली हुई राजनीतिक और कृषि की स्थि साथ देने में नाकामयाब रही। एक तरफ जागीरों में कमी आयी और दूसरी तरफ उमरा-वर्ग के सदस्यों में हो रही थी। इस कारण एक तरफ कागजों में जागीरों की आय को वास्तविक आय से अधिक दिखाया ग हानिकारक हुआ और दूसरी तरफ पुराने मनसबदारों या जागीरदारों और नवीन मनसबदारों में अच्छी को प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा हुई। औरंगजेब के पश्चात जागीरों की कमी का संकट और भी बढ़ गया ब बहादुरशाह प्रथम ने मनसब देते हुए जागीरों की कमी होने का ध्यान नहीं रखा। इससे स्थिति यह बन गः मनसबदारों को खालसा भूमि (बादशाह की भूमि) से जागीर दी गयीं। अत: जब तक मुहम्मदशाह सिंहास बैठा तब तक खालसा भूमि का बहुत बड़ा भाग जागीरों के रुप में उमरा वर्ग को दिया जा चुका था। बादशाह की भूमि से प्राप्त होने वाली आय में बहुत कमी आ गयी। किन्तु फिर भी जागीरों की माँग में कर्म आयी। अत: उमरा वर्ग में असंतोष फैल गया जिससे राजनीतिक संतुलन बिगड़ गया। जागीरों की वास्त आय कागजों में दिखायी जाने वाली आय से कम होने लगी और इस कारण जागीरदारों ने अपने सैनिक संख्या में कमी कर दी। वे उतने सैनिक नहीं रख पाये जितनी उनसे अपेक्षा की जाती थी। इससे साम्राज्य सैनिक-शक्ति दुर्बल हो गयी। प्रशासन पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा। प्रशासकीय अधिकारी भी उतनी प्राप्त नहीं कर पाते थे जितनी उनकी जागीरों की आय दिखायी गयी थी। अत: उन्होंने अपने प्रशासनिक व्य कमी कर दी जिसके फलस्वरुप प्रशासन में ढीलापन आ गया। प्रो० सिद्दीकी भी यह स्वीकार करते हैं कि जागीरदारों और ठेकेदारों द्वारा किसानों पर अनुचित दबाव डाला गया जिससे अनेक स्थानों पर खान जमींदार समाप्त हो गये और उनका स्थान शहर से आये हुए महाजनों ने ले लिया तथा किसान कृषि छोड़कर विद्रोह करने के लिए बाध्य हुए या उन जमींदारों के संरक्षण में चले गये जो विद्रोही थे। इस प्र प्रो० सिद्दीकी के अनुसार शासन की दुर्बलता, जागीरों की कमी, दरबारियों की बढ़ती हुई लालसाएं दलबंदिया, सैनिक-शक्ति में कमी आदि के कारण मुगल साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हुआ।

इसके अतिरिक्त औरंगजेब के बाद वजीर के पद योग्य व्यक्ति को नहीं बल्कि राजनीतिक दलबंदी उनकी आर्थिक एवं सैनिक क्षमता के आधार पर दिया गया। उस स्थिति में जबकि शासक स्वयं अयोग्य थे उनकी भूमि, आय और सैनिक-शक्ति में निरंतर कमी आ रही थी, वजीर बादशाह के प्रतिद्वंद्वी के रुप में उ जिससे उमरा वर्ग की दलबंदियाँ भी बढ़ी। सिंहासन के लिए उमरा वर्ग के सदस्यों की सहायता लेना उत्तरकालीन मुगल बादशाहों की दुर्बलता का एक कारण बना। बाद के समय में वजीर या दीवान ने सहयो उमरा वर्ग की सहायता से बादशाह बनाये और हटाये तथा अपने हाथों मे शक्ति रखने के लिए विभिन्न गुटों उनके सरदारों ने अपने से बाहर की शक्तियों की भी सहायता ली। इन सभी ने, नि:संदेह, मुगल-साम्राज्य पतन में योगदान दिया।

मराठा शक्ति का उत्कर्ष (1627–1707 ई०)

[Rise of Maratha Power (1627–1707 A.D.)]

● विषय प्रवेश (Introduction)

दक्षिण भारत में मराठा शक्ति का उदय किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी विशेष संगठन अथवा संस्थ के प्रयास का परिणाम नहीं था और न ही यह कोई आकस्मिक घटना अथवा दैविक चमत्कार था। इस शक्ति के

उदय का आधार था समस्त जनता का सामूहिक रुप से योजनाबद्ध एवं संगठित रूप से निरंतर प्रयास। उनकी भाषा, धर्म, साहित्य, निवास और राजनैतिक और आर्थिक एकता और संगठन ने राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया और एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना के लिए प्रेरित किया।

मराठा शक्ति के उत्कर्ष के कारण (Reasons for the Rise of Maratha Power)

वास्तव में अंग्रेजों ने भारत का साम्राज्य मुगलों से नहीं बल्कि मराठों से प्राप्त किया था। तत्कालीन मुगल बादशाहों की शक्ति बहुत दुर्बल तथा सीमित हो गयी थी। 18 वीं शताब्दी में मराठे भारत की श्रेष्ठ शक्ति बन गये थे। अत: यह कहना यथोचित है कि भारत की राजसत्ता के लिए अंग्रेजों को वास्तव में हिंदू मराठों से संघर्ष करना पड़ा था।

जी०एस० सरदेसाई के अनुसार 'मराठा' शब्द की उत्पत्ति राठा (Ratthas) शब्द से हुई है। महाराष्ट्र में इनकी शक्ति का उदय हुआ। दक्षिण-पश्चिम भारत का वह भाग जो पश्चिम में अरब सागर से लेकर उत्तर में सतपुड़ा पर्वत तक फैला हुआ है और जिसमें आधुनिक बंबई का राज्य, कोंकण प्रदेश, खानदेश, बरार, मध्य भारत का कुछ भाग और हैदराबाद राज्य का प्राय: एक-तिहाई भाग सम्मिलित है, मराठवाड़ा के नाम से जाना जाता था। भारत के इसी भाग को महाराष्ट्र कहा गया है, जहाँ के निवासियों की मुख्य भाषा मराठी है। यहीं पर मराठा शक्ति का उदय हुआ।

मराठा शक्ति का उत्कर्ष किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्ति-समूह का कार्य नहीं था और न किसी विशेष समय में उत्पन्न हुई कुछ अस्थायी परिस्थितियों का ही परिणाम था। मराठा शक्ति के उदय का आधार महाराष्ट्र के समस्त निवासी थे जिन्होंने जाति, भाषा, धर्म, साहित्य और निवास स्थान की एकता के आधार पर राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया था और उस राष्ट्रीयता को संगठित करने के लिए एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की इच्छा की थी। मुसलमानों द्वारा भारत की विजय पूर्ण हो जाने के पश्चात् स्वतंत्र राज्य की स्थापना के लिए हिंदू धर्मावलम्बियों का यह प्रथम प्रयास था और यह प्रयास एक ऐसा राष्ट्रीय आंदोलन बन गया जिसमें सभी वर्गों और व्यक्तियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। मराठों के उत्कर्ष का इतिहास मुसलमानों की राजनीतिक दुर्बलता से लाभ उठाकर हिंदू राष्ट्रीयता के निर्माण का ऐसा इतिहास है जिसमें संपूर्ण महाराष्ट्र के समस्त निवासियों ने भाग लिया। यही वह शक्ति थी जिसके आधार पर मराठा नेताओं ने भारत में 'हिंदू-बादशाही' के निर्माण का स्वप्न देखा था और दिल्ली के साम्राज्य को अपने हाथ में लेकर भारत की शक्तियों को एक शक्ति की अधीनता में लाने का प्रयास किया तथा यही वह शक्ति थी जिसके बल पर मराठे बड़े से बड़े संकट को सहन कर सके। मराठा शक्ति के उत्कर्ष का इतिहास एक जन-समूह के उत्कर्ष का इतिहास है और एक ऐसे उद्वेग का इतिहास है जो संपूर्ण महाराष्ट्र की जनता में व्याप्त था।

इस शक्ति के निर्माण और उत्कर्ष में विभिन्न परिस्थितियों का योगदान रहा। **महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति मराठा शक्ति के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुई।** महाराष्ट्र का अधिकांश भाग पठार है जहाँ जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तक को प्राप्त करने के लिए भी मनुष्य को प्रकृति से कठोर संघर्ष करना पड़ता है। इससे वहाँ के निवासी परिश्रमी और साहसी होते हैं। वहाँ आक्रमणकारी के लिए बहुत कठिनाइयाँ होती थीं तथा सेना को लेकर चलना और उसके लिए रसद प्राप्त करना कठिन होता था, जबकि सुरक्षा के लिए वहाँ अनेक सुविधाएँ थीं। स्थान-स्थान पर सरलता से पहाड़ी किले बनाये जा सकते थे जिनकी सुरक्षा करना सरल था परंतु उनको जीतना उतना ही कठिन होता था। गुरिल्ला युद्ध-पद्धति अथवा छापामार नीति का प्रयोग वहाँ सरलता से संभव होता था। इसके अतिरिक्त, भारत उप-महाद्वीप के बीच में स्थित होने के कारण वहाँ के निवासियों के लिए उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं में प्रगति करने की सुविधा थी।

आर्थिक दृष्टि से महाराष्ट्र के निवासियों में अधिक आर्थिक असमानता न थी। व्यापारी वर्ग के अतिरिक्त वहाँ धनवान व्यक्ति अधिक नहीं थे। इसका कारण यह था कि **आर्थिक शोषण करने वाले वर्ग का**

महाराष्ट्र में अभाव था। इससे महाराष्ट्र के निवासियों का चिरत्र उत्तम बना था, वे परिश्रमी और साहसी उनमें समानता की भावना थी, वे ऊँच और नीच की भावन से ऊपर थे तथा वे उस भोग-विलास से बचे रहते जिसके कारण उत्तर भारत का समाज खोखला होता जा रहा था।

सामाजिक दृष्टि से महाराष्ट्र में कठोर विभाजन नही था। 15 वीं और 16 वीं शताब्दी के धर्म-सु और भक्ति आंदोलन सामाजिक और धार्मिक सुधार लिये थे तथा जातीय समानता को शक्तिशाली बनाया **महाराष्ट्र में राजनीतिक चेतना से पूर्व सामाजिक और धार्मिक चेतना उत्पन्न हो गई थी।** इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत का धार्मिक और सामाजिक आंदोलन किसी एक वर्ग का आंदलोन नहीं था अपितु व जनसाधारण का आंदोलन था। इस आंदोलन का नेतृत्व उन व्यक्तियों ने किया था जिनमें से अधिकांश समा के निम्न वर्ग से थे। तुकाराम, रामदास, वामन पंडित और एकनाथ जैसे संत और दार्शनिक आन्दोलन की आत थे। यह आंदोलन ब्राह्मणों की श्रेष्ठता, ऊँच-नीच की भावना, जाति-व्यवस्था और कर्मकांड के विरुद्ध थ इसमें विश्वास, आस्था और भक्ति के द्वारा हर प्राणी को ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग बताया गया था। इ आंदोलन ने धार्मिक और सामाजिक एकता तथा सरलता का मार्ग प्रशस्त किया, महाराष्ट्र के समाज औ जन-जीवन को संगठित किया तथा उसमें एकता की उस भावना का प्रतिपादन किया जिससे राष्ट्रीय भाव निर्मित होती है। इतिहासकार रानाडे ने महाराष्ट्र में उत्पन्न राजनीतिक उथल-पुथल का प्रमुख कारण वहाँ के धार्मिक आंदोलन को बतलाया है और यह वास्तविकता है कि महाराष्ट्र के विभिन्न संतों ने मराठों की राष्ट्री भावना का पोषण किया। विभिन्न संतों के भजनों, उपदेशों आदि ने अशिक्षित मराठों की भावनाओं को गहनता स प्रभावित किया और उनके अपने अत:करण में अपने धर्म और समाज की रक्षा की भावना को जन्म दिया।

मराठों में एकता और संगठन का संचार करने में **मराठी साहित्य** और **भाषा** की भूमिका भी अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। महाराष्ट्र के धर्मोपदेशकों के मराठी लिपि एवं भाषा में लिखे गये धार्मिक गीतों ने मराठों के निकट लाकर एकसूत्र में बांधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मराठी सहित्य ने इस क्षेत्र के लोगों में राष्ट्रप्रेम एवं संगठन की भावना का संचार करने में अत्यधिक योगदान दिया।

इस प्रकार विभिन्न कारणों से मराठों में पर्याप्त सामाजिक-धार्मिक जागृति हो चुकी थी, परन्तु एकसूत्र में नहीं बंधे थे तथा उनमें राजनैतिक चेतना का अभाव था। उन्हें एकसूत्र में बांधकर एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने का श्रेय **शिवाजी के नेतृत्त्व** को है। नि:संदेह शिवाजी मराठा राष्ट्रीय एकता के जनक थे, परन्तु केवल मात्र एक कारण नहीं। बहुत सारे अन्य कारणों ने मराठों में जातीय चेतना का बीज पहले ही बो दिया था, जिसने शिवाजी का कार्य अत्यधिक आसान कर दिया।

● छत्रपति शिवाजी (1627–1680 ई०) [Chhatrapati Shivaji (1627–1680 A.D.)]

(1) जीवन और कार्य

शिवाजी का जन्म 20 अप्रैल, 1627 ई० को पूना के उत्तर में स्थित जुन्नान नगर के निकट शिवनेर दुर्ग में हुआ। उनके पिता का नाम शाहजी भौंसले था और माता का नाम था जीजाबाई। जीजाबाई देवगिरि निवासी बड़े जागीरदार यादवराय की पुत्री थी। शाहजी भौंसले ने न केवल अहमदनगर राज्य में शक्ति और सम्मान प्राप्त किया था अपितु वह बीजापुर राज्य में भी प्रतिष्ठा के पद पर आसीन थे। वह युद्ध, शासन और विद्वानों को संरक्षण देने की दृष्टि से वीजापुर में विख्यात थे। इस प्रकार शिवाजी के पिता एक शक्तिशाली और सम्मानित सामंत थे। परंतु शाहजी ने तुकाबाई मोहिते नामक एक अन्य स्त्री से विवाह कर लिया था और जीजाबाई रुष्ट होकर अपने पुत्र शिवाजी को लेकर अपने पति से अलग रहती थीं। स्पष्ट है शिवाजी को पिता का संरक्षण प्राप्त नहीं हो सका। परंतु ऐसा भी नही है कि शाहजी ने अपने पुत्र पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। शाहजी ने अपने वफादार और योग्य सेवक दादाजी कोंणदेव को शिवाजी की शिक्षा और दीक्षा के लिए नियुक्त किया था। 12 वर्ष की आयु में शिवाजी को अपने पिता से पूना की जागीर प्राप्त हो गयी थी। 1640 ई० में 12 वर्ष की आयु में

शिवाजी का विवाह साईबाई निम्बालकर नाम की कन्या से कर दिया गया। शिवाजी ने 'मावल प्रदेश' को अपने जीवन की प्रारंभिक कर्मभूमि बनाया। इसके अतिरिक्त शाहजी ने अपने पुत्र की सहायता के लिए बाद में भी कुछ योग्य अधिकारी भेजे जो उनके सहायक बन गए। शिवाजी ने अपनी माँ से साहस, दृढ़-निश्चय, अत्याचार का विरोध और धर्म के प्रति रुचि अर्जित की। शिवाजी के व्यक्तित्व पर सर्वाधिक प्रभाव उनकी माँ जीजाबाई का पड़ा। माँ के अतिरिक्त शिवाजी अपने गुरु एवं संरक्षक 'दादाजी कोंणदेव' से भी प्रभावित थे। साहित्यिक शिक्षा में शिवाजी की रुचि नहीं थी परंतु युद्ध और साहसिक कार्यों के लिए वह सदैव तत्पर रहते थे। यह सर्वथा सत्य है कि उनके चरित्र-निर्माण में जीजाबाई (उनकी माँ) का बहुत बड़ा योगदान था और यही उनकी सफलता का प्रमुख कारण बनी।

आरंभ से ही शिवाजी का लक्ष्य एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना था। उन्हें किसी भी मुसलमान शासक के जागीरदार के रूप में जीवन व्यतीत करना स्वीकार नहीं था। इस विषय पर उनका अपने संरक्षक कोंणदेव से भी मतभेद था। महाराष्ट्र में एक स्वतंत्र हिंदू राज्य की स्थापना करना उनका प्रमुख लक्ष्य था। शिवाजी का प्रारंभिक लक्ष्य मुसलमान सत्ता से हिंदुओं को मुक्ति दिलाना नहीं था। सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है: 'उन्हें एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना की लालसा सदैव रही परंतु अपने को हिंदुओं का उद्धारकर्ता उन्होंने बहुत बाद के समय के अतिरिक्त कभी नहीं माना।'' इस प्रकार **हिंदू धर्म की रक्षा की भावना उनके हृदय में थी। परंतु उनका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक स्वतंत्रता था।** साथ ही यह बात भी स्पष्ट है कि उन्होंने हिंदुओं की धार्मिक भावना से प्रेरणा ली थी और वह धर्म की रक्षा करना भी अपना एक मुख्य कर्तव्य मानते थे।

एम०जी०रानाडे ने शिवाजी के जीवन काल को चार भागों में बाँटकर उनके उद्देश्य को स्पष्ट किया है। आरंभ के छ: वर्षों में शिवाजी का उद्देश्य आसपास के मराठा सरदारों को अपने साथ लेकर संगठित करना और अपनी रक्षा का प्रयत्न करना मात्र था। इस प्रारंभिक कार्य की पूर्ति के पश्चात् उन्हें बीजापुर राज्य से संघर्ष करना पड़ा। अगले दस वर्ष तक अपनी स्वयं की रक्षा, राष्ट्रीय तत्वों को एकत्रित करना और अपनी सीमाओं का विस्तार करना उनका लक्ष्य रहा। बीजापुर राज्य के निरंतर प्रयत्नों और उसके श्रेष्ठतम सेनापतियों से संघर्ष के बावजूद भी शिवाजी ने अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफलता प्राप्त की। उनके जीवन के तीसरे भाग (1662–1672 ई०) में उनका प्रमुख संघर्ष दक्षिण की ओर बढ़ती हुई मुगलों की शक्ति से हुआ और अंत में इसमें भी वह सफल हुए। अपने जीवन के चौथे और अंतिम काल में (1674–1680 ई०) शिवाजी ने अपने स्वतंत्र राज्य को विधिवत स्थापित किया, अपना राज्याभिषेक कराया और 'छत्रपति' 'हैदव (हिंदू) धर्मोद्धारक' एवं 'गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक' की उपाधि से अपने आप को विभूषित किया। इस प्रकार, आत्मरक्षा और स्वतंत्र राज्य की स्थापना की भावना प्रारम्भिक काल से अंत तक उनके जीवन का उद्देश्य रहा और इसी भावना के कारण बीजापुर और मुगलों से उनका संघर्ष हुआ। बीजापुर राज्य अथवा मुगलों से उनका कोई विवाद नहीं था यदि बीजापुर अपने को कर्नाटक में सीमित रखता और मुगल अपने को उत्तर भारत में सीमित रखते और उनमें से कोई भी महाराष्ट्र को अपनी अधीनता में लेने का प्रयत्न न करता। शिवाजी मुगल आधिपत्य को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर थे यदि मुगल बादशाह उनको उनके प्रदेश में स्वतंत्र छोड़ देता। कदाचित इसी उद्देश्य से वह आगरा भी गये थे। **शिवाजी ने हिंदू राजाओं को एकत्रित करके मुसलमानी राज्य को समाप्त करने का लक्ष्य कभी नहीं बनाया। उनका एकमात्र उद्देश्य दक्षिण भारत में स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना था।** इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए और मुगलों को ताप्ती नदी तक सीमित रखने के लिए वह बीजापुर और गोलकुंडा की सहायता करने के लिए तत्पर थे। इसीलिये जब मुगलों ने बीजापुर पर घेरा डाला तब शिवाजी ने बीजापुर (जिससे उनका निरंतर संघर्ष रहता था) की सहायता की थी। इस प्रकार **शिवाजी का मूल उद्देश्य मराठों की बिखरी हुई शक्ति को संगठित करके महाराष्ट्र में स्वतंत्र हिंदू राज्य की स्थापना करना था।**

दादाजी कोंणदेव के संरक्षण के काल में शिवाजी ने पूना के निकटवर्ती दुर्गों को जीतना आरंभ कर दिया था। कोंणदेव शिवाजी के इस कार्य से सहमत नहीं थे, परंतु वह शिवाजी को इस कार्य से रोक भी नहीं सके। 1647 ई० में कोंणदेव का स्वर्गवास हो गया और शिवाजी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पूर्णतया

स्वतंत्र हो गये। उस समय शिवाजी की आयु 20 वर्ष थी। उनके साथ अनेक साहसी और योग्य मराठा र मिल गये। उनके पिता शाहजी ने 1639 ई० में श्यामजी नीलकंठ, बालकृष्ण दीक्षित, सेनाजी पंत रघुनाथराव बल्लाल जैसे योग्य व्यक्तियों को सहायतार्थ उनके पास भेजा। शिवाजी ने तुकोजी और नराय जैसे योग्य व्यक्तियों को स्वयं साथ लिया। 1643 ई० में शिवाजी ने बीजापुर से सिंहगढ़ के किले को जीत उसके पश्चात् एक-एक करके उन्होंने चाकन, पुरंदर, बारामती, तोर्ना, सूपा, तिकोना, लोहगढ़, रायरी (र जो बाद में उनकी राजधानी बना) आदि विभिन्न किले अपने अधिकार में ले लियें 1648 ई० में शिवा पुरंदर के किले को छल करके नीलोजी नीलकंठ से छीन लिया। शिवाजी का उस समय तक बीजापुर से सीधा संघर्ष नहीं हुआ था। सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह उस समय (1646–1656 ई०) अस्वस्थ था शिवाजी ने उसके दरबार के बहुत से सरदारों को रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर लिया थ। इस प्रकार, 1 **ई० तक शिवाजी बिना कोई बड़ा संघर्ष किये विभिन्न मराठा सरदारों को संगठित करने, विभिन्न पर अधिकार करने तथा महाराष्ट्र और कोंकण प्रदेश के कुछ भाग पर अधिकार करने में सफल हो थे।**

25 जनवरी, 1656 ई० में शिवाजी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विजय जावली की थी। जावली मराठा सरदार चंद्रराव के अधिकार में था और वह शिवाजी के विरुद्ध बीजापुर राज्य से मिला हुआ शिवाजी ने चन्द्रराव की हत्या कर दी और किले पर अधिकार कर लिया। इससे उनका राज्य वि दक्षिण-पश्चिम की ओर संभव हो सका। अप्रैल 1656 ई० में शिवाजी ने 'रायगढ़' को अपनी राजधानी घो किया।

1657 ई० में शिवाजी का सामना पहली बार मुगलों से हुआ। दक्षिण के सूबेदार शाहजादा औरंग ने बीजापुर पर आक्रमण किया और बीजापुर ने शिवाजी से सहायता की याचना की। यह सोच कर कि दक्षि में मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना आवश्यक है, शिवाजी ने बीजापुर की सहायता करने के उद्देश्य मुगलों के दक्षिण-पश्चिम भाग पर आक्रमण कर दिया। इसी समय शिवाजी ने जुन्नार को लूटा स्थान-स्थान पर आक्रमण करके मुगलों को असहज कर दिया। परंतु जब बीजापुर ने मुगलों से संधि कर तब शिवाजी ने मुगलों पर आक्रमण करने बन्द कर दिये। उत्तराधिकार के युद्ध के कारण मुगलों को प्राय वर्ष तक दक्षिण भारत की ओर देखने का अवकाश ही नहीं मिला। इस अवसर का लाभ उठाकर शिवाज सर्वप्रथम कोंकण को जीत लिया।

इधर बीजापुर मुगलों से मुक्त होकर शिवाजी की शक्ति को दबाने के लिए तत्पर हो गया। 16- ई० में बीजापुर राज्य ने अपने एक प्रख्यात सरदार अफजलखाँ को शिवाजी को कैद करने या मार डा के लिए नियुक्त किया। उसके साथ लगभग 10 हजार घुड़सवार और एक अच्छा तोपखाना था। अफजल ने मार्ग में आते हुए मंदिरों को तोड़ा, गाँवों को उजाड़ दिया और इस प्रकार के उत्पात और कारनामें किये शिवाजी आतंकित हो जायें। वाई नामक स्थान पर आकर अफलजखाँ रुका। अब उसने कूटनीति का सह लिया। उसने अपने दूत कृष्णा जी भास्कर को शिवाजी के पास भेजकर यह संदेश दिया कि यदि शिवाजी स व्यक्तिगत रुप से उससे आकर मिलें और बीजापुर के आधिपत्य को स्वीकार कर लें, तो वह उन्हें आदिलश से क्षमा ही नहीं दिला देगा बल्कि जो भी भू-क्षेत्र और किले शिवाजी के पास हैं, उनको उन्हीं की जागीर के में तथा कुछ अन्य प्रदेश भी जागीर के रुप में उन्हें दिला देगा। शिवाजी ने धर्म की दुहाई देकर कृष्णा भास्कर से अफजलखाँ की वास्तविक नीयत को जानने का प्रयत्न किया और उससे उन्हें आभास हो गया अफजलखाँ का मन साफ नहीं था। अफजलखाँ स्वभाव से भी विश्वास के योग्य नहीं था। शिवाजी अफजलखाँ पर विश्वास नहीं किया और धूर्तता का उत्तर धूर्तता से देने का निश्चय किया। मोरो पिंगले अ नेताजी पालकर को शीघ्रता से परंतु चुपके-चुपके प्रतापगढ़ के जंगलों में पहुँचने का आदेश दिया गौर गोपीन को दूत के रुप में अफजलखाँ के पास प्रेषित किया। गोपीनाथ ने अफजलखाँ को सूचित किया कि शिवा

बहुत भयभीत हैं और यदि अफजलखाँ उन्हें क्षमा करने का आश्वासन दे तो प्रतापगढ़ के निकट वह उससे मिलने आ सकते हैं। अफजलखाँ इस के लिए सहमत हो गया और अपनी सेना को लेकर प्रतापगढ़ से एक मील दूर जाकर रुक गया। किले और अफजलखाँ की सेना के मध्य में शिवाजी और अफजलखाँ के मिलने के लिए स्थान निश्चित हुआ। यह भी निश्चित हुआ कि शिवाजी और अफजलखाँ दोनों केवल दो-दो अंगरक्षकों के साथ एक-दूसरे से मिलने आयेंगे। शिवाजी को बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के आना था। शिवाजी ने अपनी सुरक्षा के लिए अपने अंगरखे के नीचे लोहे का कवच पहना, अपनी पगड़ी के नीचे लोहे की टोपी पहनी और अपने बायें हाथ में बघनख तथा सीधे हाथ की बाँह में एक तेज कटार को छिपा लिया। अपने अंगरक्षकों के रुप में उन्होंने जीवमहल और शंभूजी कावजी को शस्त्रों सहित साथ लिया। अफजलखाँ सशस्त्र आया और उसके साथ दो अंगरक्षक आये जिनमें एक प्रख्यात तलवारबाज सैयद बाँदा था। शिवाजी के दूत गोपीनाथ के अनुरोध पर अफजलखाँ ने अपने 1,000 सैनिक बंदूकचियों को मिलने के स्थान से कुछ दूर छोड़ दिया। 2 नवंबर, 1659 ई० को प्रतापगढ़ के दक्षिण में स्थित वार नामक स्थान पर अफजलखाँ ने शिवाजी के ऊपर तलवार से प्रहार कर दिया। जब वह शिवाजी से गले मिला शिवाजी के कवच ने उनकी रक्षा की और उन्होंने तुरन्त अपने बघनख और कटार को अफजलखाँ के पेट में घोंप दिया। अफजलखाँ ने घायल होकर शिवाजी को छोड़ दिया और जोर से चीखा। सैयद बाँदा ने तलवार से शिवाजी के सर पर वार किया परंतु उनकी लोहे की टोपी ने उनकी रक्षा की। जीवमहल ने सैयद बाँदा का दाहिना हाथ काटकर उसे मार गिराया। जंगल में छिपी हुई मराठा सेना ने **बीजापुर की सेना पर आक्रमण कर दिया और उसे परास्त करके भगा दिया।** शिवाजी को इस युद्ध के फलस्वरुप तोपखाना, गोला-बारुद, हाथी, घोड़े, ऊँट और लगभग 10 लाख रुपया नकद प्राप्त हुआ।

1660 ई० में मुगल सूबेदार शाइस्ताखाँ को शिवाजी को समाप्त करने का आदेश दिया गया। उसने बीजापुर राज्य से मिलकर शिवाजी को समाप्त करने की योजना बनायी और शिवाजी से पूना, चाकन और कल्याण को छीनने में सफल हुआ। प्राय: दो वर्ष तक चले इस युद्ध में शइस्ताखाँ ने शिवाजी के बहुत से स्थानों और किलों को जीतने में सफलता प्राप्त की। परंतु शिवाजी युद्ध करते रहे। 1663 ई० में शाइस्ताखाँ ने पूना में वर्षा ऋतु बिताने की योजना बनायी। 15 अप्रैल, 1663 ई० को शिवाजी चुपके से पूना में प्रवेश कर गये और रात को शाइस्ताखाँ के महल पर 400 बहादुर सिपाहियों के साथ आक्रमण कर दिया। **शाइस्ताखाँ इस अचानक आक्रमण से भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ,** यद्यपि शिवाजी केवल उसका अंगूठा काटने में सफल हुए और फिर आक्रमण शुरु कर दिये। 10 फरवरी, 1664 ई० को शिवाजी ने सूरत पर आक्रमण किया। मुगल किलेदार भाग खड़ा हुआ। चार दिन तक सूरत को अच्छी तरह लूटकर और अधिक से अधिक धन लेकर शिवाजी वापस चले गये। इसके पश्चात् प्राय: एक वर्ष तक शिवाजी मुगल आक्रमण से मुक्त रहे।

1666 ई० में शिवाजी औरंगजेब से मिलने आगरा गये। राजा जयसिंह ने उन्हें उनकी सुरक्षा के बारे में आश्वस्त किया था और यह सुझाया था कि संभवतया, उनके स्वयं मुगल बादशाह से मिलने के फलस्वरुप उन्हें दक्षिण के मुगल प्रदेश की सूबेदारी और सीदियों से जंजीरा का टापू प्राप्त हो जाए। शिवाजी स्वयं भी औरंगजेब से दरबार में संपर्क स्थापित करने और उत्तर भारत की स्थिति को जानने के लिए उत्सुक थे। राजा जयसिंह ने शिवाजी को अपने पुत्र रामसिंह की व्यक्तिगत सुरक्षा में रखने का विश्वास दिलाया। शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी सहित 9 मई, 1666 ई० को 4,000 मराठा सैनिकों को लेकर आगरा गये। जब रामसिंह शिवाजी को लेकर दरबार में गया तब औरंगजेब ने उनके प्रति उदासीनता का व्यवहार किया और उन्हें पंचहजारी मनसबदारों में खड़े हो जाने का इशारा कर दिया। शिवाजी ने इसे अपना घोर अपमान माना और वह उसी समय मनसबदारों की पंक्ति से निकलकर बाहर जाकर बैठ गये। औरंगजेब ने रामसिंह तथा अन्य दो सरदारों को शिवाजी को बुलाने के लिए भेजा परंतु उन्होंने औरंगजेब के सामने जाने से मना कर दिया। रामसिंह ने शिवाजी की तबियत खराब हो जाने का बहाना बना दिया। इसके पश्चात् शिवाजी को रामसिंह की देखरेख में जयपुर भवन में रखा गया और उनको नजरबंद कर दिया गया। उसके उपरान्त शिवाजी औरंगजेब से भेंट करने के

लिए फिर कभी नहीं गये। दरबार में अनेक व्यक्ति ऐसे थे जो शिवाजी को मरवा देने के लिए लालायित औरंगजेब भी अपने प्रमुख शत्रु को समाप्त करने को इच्छुक था। औरंगजेब ने राजा जयसिंह से पूछा कि उ शिवाजी को क्या आश्वासन दिया था? राजा जयसिंह ने उत्तर दिया कि शिवाजी के जीवन की सुरक्षा अतिरिक्त उसने उनसे कोई वायदा नहीं किया था। परंतु इस पत्र-व्यवहार में कुछ समय लगा। इस दौ शिवाजी ने कुछ मुगल सरदारों को रिश्वत दी और भाग निकलने की योजना बनायी। शिवाजी ने बीमारी बहाना बनाया और कुछ समय पश्चात् बीमारी ठीक हो जाने की खुशी में मिठाई के बड़े-बड़े टोकरे गरीबों बाँटने के लिए भेजने आरंभ किये। एक दिन अपने सौतेले भाई हीरोजी को अपना सोने का कड़ा पहनाव बिस्तर पर लिटाकर शिवाजी और उनका पुत्र शम्भाजी मिठाई के टोकरे में बैठकर भाग निकले। उसके पश्च साधुओं का भेष बनाकर, अपने पुत्र को मथुरा में एक मराठा परिवार के साथ छोड़कर तथा इलाहाबा बनारस, गोंडवाना और गोलकुंडा होते हुए शिवाजी 25 दिन के पश्चात् 22 सितंबर, 1666 ई० को रायग वापस पहुँच गये। इस प्रकार शिवाजी की आगरा की यात्रा निरर्थक सिद्ध हुई परंतु उसने एक रोमांचका इतिहास का निर्माण किया। 1668 ई० में शिवाजी ने मुगलों से संधि कर ली।

1670 ई० में शिवाजी ने मुगलों से फिर युद्ध आरंभ कर दिया। पुरंदर की संधि द्वारा खोये हुए अप अनेक किलों को शिवाजी ने फिर जीत लिया। इसी समय कोंकनण के किले को नानाजी ने अपने साहस जीता जिसे शिवाजी ने सिंहगढ़ का नाम दिया। विभिन्न मुगल प्रदेशों को सफलता से लूटने के साथ ही शिवाज ने पुरंदर, कल्याण, माहुली आदि किलों को भी जीता। दिलेरखाँ और शाहजादा मुअज्जम के झगड़े का लाभ उठाते हुए शिवाजी ने 13 अक्टूबर, 1670 ई० को सूरत के बंदरगााह को दुबारा लूटा। मराठों ने उस समय बरार, बगलाना और खानदेश पर आक्रमण किये तथा सलहेर और मुलहेर के किलों को जीत लिया। उसी समय उत्तर कोंकण पर आक्रमेण करके मराठों ने जवाहरनगर और रामनगर पर अधिकार किया। 1672 ई० में मराठे का संघर्ष बीजापुर से भी हुआ जबकि मराठों ने पन्हाला पर आक्रमण किया। मराठों ने पन्हाला, पाली और सतारा के दुर्गों को जीत लिया। इस प्रकार, **कुछ ही वर्षों में शिवाजी मुगलों और बीजापुर से अनेक दुर्गों और भू-प्रदेशों को जीतने में सफल हुए।**

16 जून, 1674 ई० में शिवाजी ने काशी के प्रसिद्ध विद्वान 'श्री गागभट्ट' द्वारा अपना राज्याभिषेक करवाया, छत्रपति की उपाधि ग्रहण की और रायगढ़ को अपनी राजधानी घोषित किया। उस युग के महान विद्वान, वेदों के ज्ञाता और बनारस के महान पंडित विश्वेश्वर उर्फ गागभट्ट ने शिवाजी को क्षत्री माना, उदयपुर के राजपूत राजवंश से उनका संबंध बताया और शिवाजी का राज्याभिषेक स्वयं करना स्वीकार किया। 15 जून, 1674 ई० को वेद मंत्रों और हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार बड़ी धूमधाम से शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि ग्रहण की और भगवा ध्वज अपना झंडा बनाया। इस अवसर पर शिवाजी ने बहुत धन व्यय किया। परंतु इस प्रसन्नता में थोड़ी बाधा 12 दिन पश्चात् तब हुई जब शिवाजी की माता जीजाबाई का देहावसान हो गया। इसके कारण कुछ समय उपरान्त शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक तांत्रिक विधि से भी कराया।

अपने रिक्त खजाने की पूर्ति करने के उद्देश्य से शिवाजी ने मुगल सेनापति बहादुरखाँ के शिविर पर आक्रमण किया और लगभग एक करोड़ रुपया तथा 200 अच्छे घोड़े लूटने में सफल हुए। शिवाजी ने बीजापुर के खानदेश और बगलाना के प्रदेशों को लूटने में भी सफलता प्राप्त की। इन आक्रमणों में शिवाजी को केवल धन ही प्राप्त नहीं हुआ अपितु उनकी सैन्य शक्ति में भी वृद्धि हुई।

शिवाजी के राज्याभिषेक के बाद के 6 वर्षों (1674-80) के बीच की गतिविधियों और विजयों ने भविष्य में मुगल-मरठा संघर्ष की नींव डाली। यद्यपि 1680 में शिवाजी की असाभविक मृत्यु हो गई, परन्तु मुगल-मराठा संघर्ष इसके बाद भी जारी रहा। 1707 में अपनी मृत्यु पर्यन्त औरंगजेब मराठों को परास्त करने के प्रयत्न में लगा रहा परन्तु पूर्णयता असफल रहा। मराठों के विरूद्ध चलने वाले लम्बे संघर्ष के कारण दक्षिण औरंगजेब के लिये एक नासूर बन गया और उसके पतन का एक महत्वपूर्ण कारण बना।

(2) शासन-प्रबंध

शिवाजी केवल एक साहसी सैनिक एंव एक सफल विजेता ही नहीं थे वरन् एक प्रबुद्ध शासक भी थे। अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होंने दक्षिण में न केवल एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की वरन् उसको सुचारू शासन प्रबन्ध भी प्रदान किया।

(1) राजा—मध्य युग के अन्य शासकों की भाँति शिवाजी एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न निरंकुश शासक थे। राज्य की संपूर्ण शक्तियाँ उनमें केंद्रित थीं। वही राज्य के अंतिम कानून निर्माता, प्रशासकीय प्रधान, न्यायाधीश और प्रधान सेनापति थे। परंतु शिवाजी ने अपनी शक्ति का प्रयोग अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कभी नहीं किया बल्कि वह एक प्रजापालक शासक सिद्ध हुए। इतिहासकार रानाडे के शब्दों में 'शिवाजी नेपोलियन की भाँति एक महान संगठनकर्ता और असैनिक प्रशासन के निर्माणकर्ता थे।' शिवाजी के शासन की एक विशेषता यह भी रही कि उन्होंने मराठी को शासन की राज्य भाषा बनाया और उसकी प्रगति के लिए रघुनाथ पंडित हनुमंते के सभापतित्व में विद्वानों की एक समिति नियुक्ति करके उससे एक शब्दकोश-**राज्य-व्यवहार-कोश** का निर्माण कराया।

(2) अष्ट-प्रधान—शासन में शिवाजी की सहायता के लिए आठ बड़े अधिकारी अथवा मंत्री होते थे। वे एक मंत्रि-परिषद अथवा समिति के समान कार्य नहीं करते थे। प्रत्येक मंत्री अपने-अपने विभाग का प्रधान होता था और इन विभागों की संख्या 30 थी। यह शिवाजी की इच्छा पर निर्भर करता था कि वह उनसे पृथक-पृथक अथवा सम्मिलित रुप से उनकी सलाह लें।

उनकी सलाह को मानने अथवा न मानने का विकल्प शिवाजी का होता था, उनकी सलाह शिवाजी के लिए बाध्यकारी नहीं होती थी। ये आठों प्रधान सचिवों के समान कार्य करते थे। उनका दायित्व शिवाजी द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करना और विस्तृत रुप से शासन की देखभाल करना होता था। शिवाजी, फ्रांस के शासक लुई चौदहवें और प्रशा के शासक फ्रेडरिक महान के समान स्वयं ही अपने प्रधानमंत्री थे तथा शासन की समस्त शक्ति अपने अंदर केंद्रित रखते थे। इन आठ प्रधानों में पेशवा की स्थिति निश्चित रूप से श्रेष्ठ थी जबकि अन्य प्रधान किसी भी प्रकार उसके अधीन नहीं थे। उनमें सभी केवल शिवाजी के प्रति उत्तरदायी थे। ये आठ प्रधान निम्नलिखित थे—

(i) पेशवा या मुख्य प्रधान—इसका कार्य संपूर्ण राज्य के शासन की देखभाल करना था। राजा की अनुपस्थिति में राजा के कार्यों की देखभाल करना, शासन में एकरूपता लाने के लिए शासन के अधिकारियों पर नियंत्रण रखना और प्रजा के हित के लिए प्रयत्न करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। राजा के सभी आदेशों और पत्रों पर राजा की मुहर के नीचे उसकी मुहर लगती थी।

(ii) अमात्य या मजमुआदार—राज्य की आय और व्यय का हिसाब रखना और राजा को उससे अवगत कराना उसका कर्त्तव्य था।

(iii) मंत्री या वाकया-नवीस—राजा के नित्यप्रति के कार्यों को लेखाबद्ध करना, शासक से मिलने-जुलने वालों की निगरानी करना और राजा के जीवन की सुरक्षा उसका कर्त्तव्य था।

(iv) सचिव या शुरु-नवीस—राजा की पत्रावली की भाषा एवं शैली को ठीक करना तथा परगनों की आय-व्यय का हिसाब रखना इसका कर्त्तव्य था।

(v) सुमंत अथवा दबीर—यह राज्य का विदेश-मंत्री होता था। राजा को संधि अथवा युद्ध के विषय में सलाह देना, विदेशों से समाचार प्राप्त करना, विदेशों में राजा के सम्मान की रक्षा, विदेशी राजदूतों से व्यवहार और अपने राजदूतों को विदेशों में भेजना तथा उनके कार्यों की देखभाल करना उसका कार्य था।

(vi) सेनापति अथवा सर-ए-नौबत—सेना में भर्ती, सेना का संगठन, शिक्षा, अस्त्र-शस्त्रों और रसद की व्यवस्था करना आदि इसका कार्य था।

(vii) पंडितराव—राजा की ओर से विद्वान ब्राह्मणों को दान देना, धार्मिक कार्यों को सम्पादित कर अपराधियों को दंड देना, और जाति के विवादों को निपटाना और प्रजा के नैतिक चरित्र को सुधारना इस कार्य था।

(viii) न्यायाधीश—सैनिक और असैनिक विवादों का हिंदू विधान के आधार पर न्याय करना, भू संबंधी विवादो तथा गाँव के मुखिया के पद के विवादों का निर्णय करना इसका कार्य था।

न्यायाधीश एवं पंडितराव को छोड़कर अन्य समस्त मंत्री अपने-अपने विभाग से सम्बन्धित कार्यों अतिरिक्त सैनिक कार्य भी करते थे तथा समय-समय पर सैनिक अभियानों का नेतृत्व भी करते थे। इनमें से कु को प्रान्तीय प्रशासन की देखभाल भी करनी होती थी।

(3) प्रांत—शिवाजी का साम्राज्य चार प्रांतों में बंटा था। उत्तरी प्रांत, दक्षिणी प्रांत, दक्षिणी-पूर्वी प्रांत ए चौथा प्रान्त वह था जिसमें हाल में ही जीते हुए प्रदेश थे। चौथे प्रान्त को विद्वानों ने अव्यवस्थित प्रान्त का ना दिया है।

उनमें से प्रत्येक में एक प्रांतपति अथवा सूबेदार की नियुक्ति की गयी थी। उत्तरी प्रांत में डाँग, बगलान कोली प्रदेश, दक्षिणी सूरत, उत्तरी बंबई का कोंकण प्रदेश और पूना की ओर का दक्षिणी पठार शामिल था यहाँ त्रिबंक पिंगले की नियुक्ति की गयी थी। दक्षिणी प्रांत में दक्षिणी बंबई का कोंकण प्रदेश, सामंतवाड़ी औ उत्तरी किनारा का समुद्र तट सम्मिलित थे। यह प्रांत अन्नाजी दत्तो की अधीनता में रखा गया था। दक्षिण-पूर्व प्रांत में सतारा और कोल्हापुर के जिले तथा कर्नाटक में तुंगभद्रा के पश्चिम में बेलगाँव, धारवार और कोसल के जिले आते थे। यह प्रांत दत्तोजी पंत के अधीन था।

शिवाजी ने अपने जीवन के संध्या काल में तुंगभद्रा के दूसरी ओर का कोपल से लेकर बेलूर तथा जिंजी तक का प्रदेश जीता था। इसमें आधुनिक मैसूर राज्य का उत्तरी, मध्यवर्ती और पूर्वी भाग तथा मद्रास राज्य के बेलारी, चित्तूर और अर्काट के जिले शामिल थे। किन्तु इस प्रदेश का संगठन नहीं हो सका था और यहाँ उनके समय में सेना की शक्ति पर ही शासन चलता था। इसके अतिरिक्त कनारा, दक्षिण धारवार, सोंधा और बेदनूर के प्रदेश अभी ऐसे थे जहाँ से शिवाजी कर तो वसूल करते थे परंतु उनका स्वामित्व निश्चित नहीं हो सका था। ये शिवाजी के अन्त समय के निकट के अवसर पर ही जीते गये थे।

(4) सेना और नौ-सेना—शिवाजी की सेना के मुख्य अंग घुड़सवार सेना और पैदल सेना थे। उनकी मृत्यु के समय पर उनकी सेना में 45,000 पागा (शाही घुड़सवार), 60,000 सिलेदार घुड़सवार तथा एक लाख मावले पैदल सेना थी। उनकी सेना में हाथी भी थे। उनकी संख्या लगभग 300 थी। उनके पास एक छोटा तोपखाना भी था।

पागा या शाही घुड़सवारों को 'बरगीर' कहा जाता था। इन्हें राज्य की आरे से शस्त्र दिये जाते थे जबकि 'सिलेदार' घुड़सवार अपने घोड़ों और शस्त्रों की व्यवस्था स्वयं करते थे और कभी-कभी अपने साथ अपने साथियों को भी लाते थे और उनके लिए शस्त्रों और घोड़ों की व्यवस्था भी स्वयं करते थे। 'पागा' घुड़सवार सेना का एक नियमित संगठन था। 25 घुड़सवारों के ऊपर एक हवलदार, 5 हवलदारों के ऊपर एक जमादार, 10 जमादारों पर एकहजारी और पाँच एकहजारियों के ऊपर एक पंचहजारी अधिकारी रखा जाता था। संपूर्ण सेना का प्रधान 'सर-ए-नौबत' कहलाता था, जो अष्ट प्रधान का एक सदस्य था।

इसी प्रकार, पैदल-सेना में भी अधिकारियों का पद-विभाजन किया जाता था। 9 सैनिकों या पाइकों का अधिकारी नायक, दस नायकों के ऊपर एक हवलदार, दो या तीन हवलदारों के ऊपर एक जुमलादार, दस जुमलादारों के ऊपर एकहजारी और सात एकहजारियों के ऊपर एक सातहजारी होता था। पैदल सेना में पंचहजारी का पद नहीं था। संपूर्ण पैदल सेना का प्रधान पैदल सेना का 'सर-ए-नौबत' होता था। शिवाजी के अंगरक्षक दस्ते में 20,000 (बीस हजार) मावले सैनिक थे जिनके वस्त्रों और हथियारों पर पर्याप्त धन व्यय होता था।

शिवाजी की एक निश्चित सैनिक नीति थी जिसके अनुसार सेना बरसात के चार माह छावनी में ही ीत करती थी और दशहरा के बाद उस देश पर आक्रमण करने के लिये जाती थी जिसे राजा चुनता था।

शिवाजी के सैन्य संगठन में किलों की व्यवस्था प्रमुख स्थान रखती थी। शिवाजी के राज्य में लगभग 0 किले थे जो उनकी सुरक्षा और आक्रमणकारी नीति के प्रमुख आधार थे। शिवाजी ने किलों की सुरक्षा के ए विशेष प्रबंध किये थे। एक किले में तीन प्रमुख अधिकारी होते थे—एक 'हवलदार', एक 'सबनिस' और 'सर-ए-नौबत'। किले की सुरक्षा और प्रशासन तीनों अधिकारियों का संयुक्त उत्तरदायित्व होता था। वलदार' तथा 'सर-ए-नौबत' मराठा होते थे जबकि 'सबनिस' ब्राह्मण जाति का होता था। इनके अतिरिक्त ने की रसद और सैनिक सामग्री की देखभाल के लिए अन्य अधिकारी होता था जिसे 'कारखाना-नवीस' ते थे। वह आय और व्यय का पूरा विवरण रखता था। हवलदार को अपने अधीनस्थ अधिकारियों को ने, सरकारी पत्रों को लेने और भेजने, संध्या समय किले का फाटक बंद करने तथा प्रात: काल फाटक लने और बीच-बीच में जाकर देखभाल करने का दायित्व सौंपा गया था। 'सर-ए-नौबत' पर रात में किले सुरक्षा और पहरेदारों पर निगरानी का दायित्व था। 'सबनिस' किले के असैनिक शासन की देखभाल करता इस प्रकार विभिन्न अधिकारियों और विभिन्न जातियों के अधिकारियों की नियुक्ति करके शिवाजी ने यह स किया था कि किसी एक अधिकारी के शत्रु पक्ष के साथ मिल कर घात करने पर किला शत्रु के हाथों में ला जाए। शिवाजी ने पूर्ण रुप से निश्चित कर दिया था कि किस किले में कितने सैनिक रहेंगे, कितनी रसद गे, कितने शस्त्र होंगे, फाटक को खोलने और बंद करने का क्या समय होगा, इत्यादि। इन नियमों का ोरता से पालन होता था। इससे शिवाजी के दुर्ग, जो प्राकृतिक ढंग से ही पहाड़ों पर सुरक्षित बने हुए थे, ानी से शत्रु के हाथों में नहीं जा सकते थे।

शिवाजी ने नौ-सेना की भी व्यवस्था की थी। कोंकण प्रदेश को जीतने के उपरान्त जंजीरा के सीदियों आक्रमण से अपने समुद्र-तट की रक्षा के लिए उन्हें नौ सेना की व्यवस्था करना आवश्यक हो गया था। एक मान के अनुसार शिवाजी की नौ-सेना में विभिन्न प्रकार के 400 जलयान थे। यह जल बेड़ा दो भागों में ाजित था दरिया-सारंग और माई नायक। इनमें से प्रत्येक एक भाग का प्रधान था। कुछ वर्षों के पश्चात् ाजी को दो अन्य योग्य व्यक्तियों 'मिसरी' और 'दौलतखाँ' की सेवाएँ भी मिल गयी थीं। शिवाजी की सेना विदेशी व्यापारियों, जंजीरा के सीदियों और औरंगजेब के लिए चिंता का विषय बन गयी थी। उसने क अवसरों पर पुर्तगाली, हॉलैंड और अंग्रेज जहाजों से टक्कर ली और खंडेरी के द्वीप को सीदी और जों के संयुक्त आक्रमण से बचाने में सफलता प्राप्त की। इनके अलावा **शिवाजी ने एक बड़ी व्यापारिक सेना का भी निर्माण किया था।** डॉ० एस०एन० सेन ने लिखा है—"अपने तत्कालीन शासकों से भिन्न महान मराठा ने यह समझ लिया था कि बिना एक शक्तिशाली व्यापारिक नौ-शक्ति के एक शक्तिशाली सेना का निर्माण असंभव था।" परंतु **फिर भी शिवाजी की नौ-सेना यूरोपियन नौ-सेना की अपेक्षा ल थी। इसका कारण उनकी नौ-सेना के पास तोपखाने का न होना था।** इसी दुर्बलता के कारण शिवाजी जंजीरा के सीदियों के विरुद्ध सफलता नहीं मिल सकी थी। सूरत की अंग्रेजों की फैक्ट्री के प्रधान ने टिप्पणी थी कि, "एक अंग्रेजी जहाज अपने को बिना किसी खतरे में डाले हुए उनके एक सौ जहाजों को नष्ट कर ।" इस कारण शिवाजी की नौ-सेना का मुख्य कार्य अपने समुद्र-तट की रक्षा करना, अपने तट पर आये जहाजों से व्यापारिक-कर लेना और समुद्र-तट पर टूटे हुए जहाजों के सामान को अपने अधिकार में करने सीमित रहा।

(5) अर्थव्यवस्था और लगान-व्यवस्था—शिवाजी की भूमि व्यवस्था निश्चित बन्दोबस्त पर ारित थी। उपज का अनुमान भूमि के बड़ी सावधानीपूर्ण सर्वेक्षण के आधार पर किया जाता था तथा उसके भूमि राजस्व निर्धारित किया जाता था। शिवाजी की भूमि सम्बन्धी व्यवस्था करने का श्रेय अन्नाजी दत्तो को शिवाजी के भूमि प्रबन्ध का आधार दया एवं मानवता थी। सीधे राजकीय अधिकारी द्वारा कर वसूल किया ा था तथा इन अधिकारियों को कृषकों पर अत्याचार करने की इजाजत नहीं थी।

मुद्रा, व्यापारिक-कर और भूमि से लगान शिवाजी की आय के स्थायी साधन थे। परंतु ये सेना और शासन के व्यय के लिए पर्याप्त नहीं थे। महाराष्ट्र के पहाड़ी क्षेत्रों में भूमि की पैदावार बहुत कम के कारण राज्य को भूमि राजस्व से कोई विशेष आय नहीं होती थी। इस कारण **शिवाजी ने अपनी आय प्रमुख साधन 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' को बनाया। ये 'कर' पड़ोसी राज्यों की सीमाओं और नग अथवा अपने प्रभाव-क्षेत्र के नागरिकों से वसूल किये जाते थे।** 'चौथ' में उस प्रदेश की वार्षिक आ एक-चौथाई भाग और 'सरदेशमुखी' में उस प्रदेश की आय का 1/10 वाँ भाग निश्चित था। शिवाजी इन के शासन कार्य का दायित्व अपने ऊपर नहीं लेते थे और न ही ये प्रदेश उनके राज्य की सीमा के अंतर्गत थे। इन करों की वसूली शक्ति के आधार पर होती थी और इनका प्रमुख ध्येय शत्रु-राज्यों की संपत्ति से सेना और शासन के व्यय को पूरा करना होता था। ये 'कर' शिवाजी की आय के प्रमुख साधन थे और धीरे शिवाजी के और बाद में मराठों की शक्ति के विस्तार में सहायक सिद्ध हुए।

(6) धार्मिक नीति—शिवाजी सुसंस्कृत हिंदु थे। हिंदू धर्म की उदारता की भावना को उन्होंने स और अपने व्यवहार और नीति में उसका अनुपालन भी किया। समर्थ गुरु रामदास उनके आध्यात्मिक धार्मिक गुरु थे। यह कहना तो अनुचित होगा कि गुरु रामदास शिवाजी के राजनीतिक उद्देश्यों के निर्मा प्रमुख भागीदार थे परंतु यह कहना तो सत्य है कि शिवाजी पर गुरु रामदास का प्रभाव धर्म और सदाचार व और वे शिवाजी को प्रेरित करने वाली शक्ति थे। शिवाजी ने हिंदुओं, ब्राह्मणों और गौरक्षा की दुहाई देते हु अन्य धर्मों के प्रति पूर्ण सहिष्णुता का व्यवहार किया। वह दुर्गा-भवानी के उपासक थे परंतु उन्होंने किसी धर्म के पैगंबर या देवता का कभी अपमान नहीं किया। **इस्लाम के साथ उनका व्यवहार सदैव उदार** मुहम्मद और कुरान के प्रति उनका व्यवहार आदरपूर्ण था। जब भी उन्हें कुरान की पुस्तक प्राप्त होती थी उसे सम्मान सहित अपने मुसलमान साथियों को पढ़ने के लिए दे देते थे। उन्होंने कभी भी किसी मस्जिद नहीं तोड़ा, मुसलमान स्त्रियों एवं बच्चों के प्रति युद्ध के अवसर पर भी सम्मानजनक व्यवहार किया था मस्जिदों, मुस्लिम संतों और पीरों को आर्थिक सहायता भी दी। राज्य की सेवा में मुसलमानों को शामिल गया था, उनकी सेना और नौ-सेना में मुसलमान भी होते थे तथा उन्हें योग्यता के अनुसार उच्च पद दिये थे। इतिहासकार खफीखाँ ने भी, जो शिवाजी से असंतुष्ट था, उनकी धार्मिक नीति की प्रशंसा की है।

मूलत: शिवाजी का शासन-प्रबंध अत्यन्त श्रेष्ठ था। स्मिथ जैसे इतिहासकारों द्वारा शिवाजी के राज्य 'डाकू राज्य' (Robber State) कहना एक दम अनुचित है। साम्राज्य-निर्माण के साथ एक अच्छी श व्यवस्था की स्थापना शिवाजी को इतिहास के महान व्यक्तियों में स्थान देती है। शिवाजी के शासन प्रबंध श्रेष्ठता इस बात से भी सिद्ध होती है कि जब शिवाजी आगरा में औरंगजेब के द्वारा धोखे से बंदी बना लिये थे, उस समय में भी उनके राज्य में कोई अव्यवस्था नहीं हुई और संपूर्ण शासन विधिवत् चलता रहा जैसे उनकी उपस्थिति में चलता था। इसे सर जदुनाथ सरकार द्वारा 'मध्ययुगीन राजतंत्र की एक अनोखी घटना' क गया है। एम०जी० रानाडे ने शिवाजी के असैनिक शासन-प्रबंध को निम्नलिखित विशेषताओं के आधार अन्य शासन-व्यवस्थाओं से पृथक माना है—

(i) दुर्गों के शासन-प्रबंध को विशेष महत्व देना।

(ii) किसी भी पद विशेष को एक ही परिवार तक सीमित न रखना अथवा उस पद को पैतृक पद बनाना।

(iii) अपने सैनिक और असैनिक अधिकारियों को जागीर प्रदान न करना।

(iv) लगान-व्यवस्था में किसानों से सीधा संपर्क स्थापित करना।

(v) ठेके पर भूमि न देना।

(vi) अष्ट-प्रधान का निर्माण करना जिसमें प्रत्येक सदस्य को पृथक कार्य दिया गया था तथा जिनमें प्रत्येक सदस्य राजा और अपने साथियों के प्रति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होता था।

7. शासन में सैनिक अधिकारियों की अपेक्षा असैनिक अधिकारियों को अधिक मान प्रदान करना।

8. शासन में ब्राह्मण, प्रभु, मराठा आदि सभी जातियों को सम्मिलित करके उनमें संतुलन बनाये रखना।

इस प्रकार, **शिवाजी एक महान राष्ट्र-निर्माता ही नहीं थे बल्कि एक महान शासन-प्रबंधक भी थे।**

(7) शिवाजी का चरित्र-मूल्यांकन और इतिहास में उनका स्थान अथवा शिवाजी एक राष्ट्र-निर्माता के रुप में

सरदेसाई ने शिवाजी के बारे में लिखा है—"निःसंदेह, शिवाजी का व्यक्तित्व अपने ही युग का नहीं बल्कि संपूर्ण आधुनिक युग का भी असाधारण व्यक्तित्व है। अंधकार के बीच में वह एक ऐसे नक्षत्र के समान चमकते हैं जो अपने समय से बहुत आगे थे।" शिवाजी का चरित्र और व्यक्तित्व मराठा इतिहासकार के इस कथन की पुष्टि करता है। शिवाजी का चरित्र प्रत्येक प्रकार से आदर्श माना जा सकता है। वह एक अच्छे पुत्र, वफादार मित्र, पत्नीप्रिय पति और प्रिय पिता थे। वह अपनी माता का अत्यधिक सम्मान करते थे। उनके चरित्र के विकास में उनकी माता का बहुत बड़ा हाथ रहा। **दयालुता, सहिष्णुता, सद्व्यवहार, साहस, शौर्य, दृढ़-निश्चय, पवित्र विचार आदि गुण उनमें थे।** अपने समय की परंपरा के अनुसार उन्होंने कई विवाह किये थे परंतु अपनी सभी पत्नियों के प्रति उनका व्यवहार प्रेम का था। शिवाजी ने शिक्षा प्राप्त न की थी परंतु अपने अनुभव से उन्होंने अच्छा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। वह कुशल नीतिज्ञ, मनुष्यों के पारखी और परिस्थितियों को समझने वाले थे। शिवाजी एक अच्छे हिंदू और दुर्गा-भवानी के पूजक थे। धर्म, धार्मिक ग्रंथ और कहानियाँ उनके जीवन की प्रेरणा थे। उनका धर्म उनको सत्कार्य में लगाने वाला था। **उनकी धार्मिक प्रवृत्ति एक पहाड़ी झरने की भाँति स्वच्छ जल को अविरल गति से बहाने वाली थी जिसमें धर्मांधता की गंदगी न थी। उन्होंने सभी धर्मों का सम्मान किया और उनके साथ समान व्यवहार किया।** महाराष्ट्र के तत्कालीन धार्मिक आंदोलनों और संतों से वह प्रभावित हुए थे और महाराष्ट्र का धार्मिक पुनर्जागरण इस बात पर आधारित था कि शक्ति के आधार पर लादी गयी मुसलमानी धार्मिक असहिष्णुता को सहन न किया जाए। शिवाजी के व्यक्तित्व पर धार्मिक पुनर्जागरण की उस भावना का प्रभाव स्पष्ट था। **शिवाजी एक कुशल और साहसी सैनिक थे।** अनेक युद्धों में उन्होंने अपने जीवन को संकट में डाला था। अफजलखाँ से भेंट करना, शाइस्ताखाँ पर अचानक उसके शहर और निवास स्थान में प्रवेश करके आक्रमण करना, औरंगजेब से आगरा मिलने जाना उनके जीवन की ऐसी घटनाएँ हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि शिवाजी अपने जीवन को खतरे में डालने से कभी नहीं झिझके। **शिवाजी एक योग्य सेनापति थे।** अपने देश की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने गुरिल्ला युद्ध पद्धति का प्रयोग किया और सुरक्षा के लिए अनेक दुर्गों का निर्माण कराया। शिवाजी किसी भी प्रकार की मादक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते थे और स्त्रियों के प्रति उनका व्यवहार आदरपूर्ण था। इस प्रकार शिवाजी सभी मानवीय गुणों से पूर्ण थे और अपने समय की नैतिकता से कहीं आगे थे।

शिवाजी ने एक स्वतंत्र हिंदू-राज्य की स्थापना करने में सफलता पायी। शिवाजी एक महान शासन-प्रबंधक थे। असैनिक और सैनिक दोनों ही प्रकार की शासन-व्यवस्था में उन्होंने अद्भुत योग्यता का परिचय दिया। शिवाजी ने शासन में पूर्णतया नवीन अन्वेषण किये हों, यह तो स्वीकार नहीं किया जा सकता, परंतु उन्होंने दूसरों के ज्ञान से लाभ उठाकर अपनी इच्छानुसार उसमें परिवर्तन किये थे।

परंतु इनसे भी अधिक शिवाजी की महानता एक राष्ट्र-निर्माता के रुप में है। शिवाजी का महानतम कार्य हिंदू-मराठा-राष्ट्र का निर्माण करना और उनको महानता देना, उसको स्वतंत्रता की भावना प्रदान करना था। शिवाजी ने स्वतंत्र हिंदू-राज्य की स्थापना का बीड़ा उठाया। गुलाम रहकर वह बड़ी से बड़ी प्रतिष्ठा को स्वीकार करने के लिए तत्पर न थे। अपनी छः वर्ष की आयु में उन्होंने बीजापुर के सुल्तान के सम्मुख अपना सिर झुकाने से इनकार कर दिया था और औरंगजेब के दरबार में अपने को असम्मानित अनुभव करके उन्होंने दरबार की परंपरा को तोड़कर शक्तिशाली मुगल सम्राट का उसके दरबार में (अप्रत्यक्ष रुप से) अपमान कर

दिया था। अपने कार्य को उन्होंने बिना किसी की सहायता के आरंभ किया और यह अनुभव करके कि बढ़ती हुई मुस्लिम शक्ति का विरोध मराठों की एकता के बिना संभव नहीं है, उन्होंने मराठों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। अपने आकर्षक व्यक्तित्व और प्रारंभिक सफलताओं के कारण वह शीघ्र ही योग्य मराठों को अपने नेतृत्व में एकत्र करने में सफल हो गये। आभाजी, रघुनाथ बल्लाल, समरजी पंत, प्रतापराव गूजर हमीरराव मोहिते, शिंदोजी निंबालकर, संबाजी मोर, तानाजी मालसुरे, सूर्यराव काकादे, संताजी घोरपदे, धानाजी जादव, खांडेराव दाभादे, पासोंजी भौंसले, सयाजी भौंसले, नेमाजी शिंदे आदि अनेक ऐसे महान व्यक्ति थे जो शिवाजी के सहायक बने और जिनमें से अनेक ने शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त भी मराठों का नेतृत्व किया सभी वर्गों से आये हुए इन योग्य महानुभावों ने शिवाजी के हिंदू-राज्य की सेवा की। खतरों के अवसर पर इनमें से कोई भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुआ, एक ने भी अपने राजा से बेवफाई नहीं की, अनेक ने अपने कर्तव्य की पूर्ति करते हुए संतोष से अपने जीवन को युद्धों में समाप्त किया और इस प्रकार सभी अपने त्याग और बलिदान से मराठा-राष्ट्र को जाग्रत करने में सहायक हुए। शिवाजी की प्रमुख सफलता राज्य-विस्तार और धन की प्राप्ति में उतनी नहीं थी जितनी कि मराठों में एकता और आत्मविश्वास प्रदान करने में थी। शिवाजी ने महाराष्ट्र और मराठा सरदारों को यह विश्वास दिलाया कि वह मुस्लिम शक्ति का सफलता से विरोध कर सकते थे और यही वह विश्वास था जिसके कारण मराठों ने 20 वर्ष (1687–1707 ई०) तक दृढ़तापूर्वक औरंगजेब की विशाल सैन्य शक्ति का सामना किया और मुगलों की कमर तोड़ दी। यह शिवाजी और उनके एक सौ योग्य सरदारों की योग्यता और मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष में मिलने वाली सफलता का ही परिणाम था कि मराठा-राष्ट्र में एक नया साहस और आशा जाग्रत हुई थी तथा उनमें संघर्ष करने की शक्ति और अपनी अंतिम विजय में विश्वास उत्पन्न हुआ था।

● सारांश (Summary)

- बाबर ने दिल्ली सल्तनत के अंतिम सुल्तान इब्राहीम लोदी को 1526 ई० में पानीपत के प्रथम युद्ध में परास्त करके भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। इसके बाद उसने राजपूतों और अफगानों को परास्त करके भारत में अपनी सत्ता के दावे को और अधिक पुष्ट किया। परन्तु जल्दी ही मृत्यु हो जाने के कारण वह इस राज्य को संगठन न प्रदान कर सका।
- बाबर के बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठा जो चारों ओर से कठिनाइयों से घिरा हुआ था। इस समय आवश्यकता थी एक ऐसे शासक की जो अपनी योग्यता के बल पर कठिनाईयों से जूझ सकता और नवस्थापित मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान कर सकता। परन्तु हुमायूँ में न केवल इन गुणों का अभाव था वरन् अफीम का शौक जैसी कुछ व्यक्तिगत कमजोरियाँ भी थीं जिनके कारण उसे राज्य से हाथ धोना पड़ा। 15 वर्ष शासन से बेदखल रहने के बाद वह किसी प्रकार शासन पर दोबारा कब्जा कर सका। मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय उसके योग्य पुत्र अकबर को है।
- अकबर को दिग्विजय और साम्राज्य-विस्तार की लालसा थी। मुगल-शासकों में अकबर पहला शासक था जिसने संपूर्ण भारत में मुगल वंश का साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। उसका मानना था कि, "यदि पड़ौसी राज्यों के साथ युद्ध न ही किया जाएगा तो वे उसके विरुद्ध युद्ध करेंगे।" यही कारण था कि अकबर जीवनपर्यंत साम्राज्य विस्तार में संलग्न रहा।
- उदयसिंह की मृत्यु के उपरान्त मेवाड़ का शासक महाराणा प्रताप हुआ। अकबर ने अप्रैल, 1576 ई० में आमेर के राजा मानसिंह एवं आसफ खाँ के नेतृत्व में मेवाड़ को पूर्णरुप से अधिकार में लेने के लिए मुगल सेना को आक्रमण करने के लिए भेजा। दोनों सेनाओं के मध्य गोलकुंडा के निकट अरावली पर्वत की 'हल्दी घाटी' में युद्ध हुआ। इस युद्ध में महाराणा प्रताप पराजित हुए।
- अफगानिस्तान और भारत के बीच उत्तर-पश्चिम सीमा पर अनेक कबाइली जातियाँ निवास करती थीं। ये जातियाँ स्वतंत्र प्रकृति की थीं और इनकी जीविका का मुख्य साधन मार्ग में जाते हुए व्यापारिक काफिलों को लूटना अथवा मैदानी भागों पर अचानक आक्रमण करके लूटमार करना था।

- अकबर के शासनकाल में पुर्तगाली, अंग्रेज और हॉलैंड निवासी (डच) भारत में पदार्पण कर गए थे, परंतु 16 वीं शताब्दी में भारत के समुद्र-तट पर पुर्तगाली ही प्रभावशाली थे। अंग्रेजों और हॉलैंडवासियों को इस शताब्दी में कोई व्यापारिक सुविधा प्राप्त नहीं हुई थी।
- इतिहास में अकबर को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया जाता है। अकबर का व्यक्तित्व सुंदर और प्रभावशाली था। वह शिक्षित तो नही था, परंतु वह विद्वानों का सम्मान करता था और उन्हें आश्रय देता था। उसने एक पुस्तकालय बनाया जिसमें 24,000 ग्रंथ थे जिनका मूल्य लगभग 65 लाख रुपये था। ईश्वर में उसका अटूट विश्वास था परंतु सभी धर्मों के प्रति उसका व्यवहार उदारता का था। वह धार्मिक दृष्टि से युग प्रवर्तक था।
- अकबर की मृत्यु के ठीक आठवें दिन, 3 नवंबर, 1605 ई० को आगरा के किले में जहाँगीर का राज-तिलक हुआ। उसने 'नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह गाजी' की उपाधि धारण की।
- जहाँगीर ने शासन का आरंभ उदारता और जनहित की भावना से किया था। उसने आगरा के किले के शाह-बुर्ज से बाहर यमुना नदी के तट पर सोने की एक जंजीर डलवा दी थी जिसे खींचकर कोई भी व्यक्ति बादशाह से न्याय की याचना कर सकता था। शाहजहाँ का शासन यद्यपि मुगल शासन का स्वर्ण काल माना जाता है, परन्तु उसके समय से ही मुगल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया भी शुरु हो गई थी। उसने यद्यपि धर्मान्धता की नीति तो नहीं अपनाईं परंतु औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने इस्लाम के महत्त्व को समझते हुए 'कुरान' (शरीयत) को अपने शासन का आधार बनाया। 1659 ई० में औरंगजेब ने कुरान के नियमों के अनुसार इस्लामी आचरण संहिता के नियमों की पुनर्स्थापना के लिए अनेक आदेश जारी किए।
- औरंगजेब का एकमात्र लक्ष्य इस (भारत) 'दार-उल-हर्ब' (काफिरों का देश) को 'दार-उल-इस्लाम' (इस्लाम देश) बनाना था। उसकी हिन्दू विरोधी नीति के परिणाम मुगल साम्राज्य के लिये अत्यधिक घातक हुए।
- मराठा शक्ति का उत्कर्ष किसी एक व्यक्ति अथवा विशेष व्यक्ति-समूह का कार्य नहीं था और न किसी विशेष समय में उत्पन्न हुई कुछ अस्थायी परिस्थितियों का परिणाम था। मराठा शक्ति के उदय का आधार महाराष्ट्र के समस्त निवासी थे जिन्होंने जाति, भाषा, धर्म, साहित्य और निवास-स्थान की एकता के आधार पर राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया और उस राष्ट्रीयता को संगठित करने के लिए एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की इच्छा की।
- दादाजी कोंणदेव के संरक्षण के काल में शिवाजी ने पूना के निकटवर्ती दुर्गों को जीतना आरम्भ कर दिया था। 1643 में शिवाजी ने बीजापुर से सिंहगढ़ के किले को जीता और उसके बाद एक-एक करके उन्होंने बहुत सारे दुर्ग जीते। 1656 में शिवाजी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विजय जावली की थी।
- 1657 में शिवाजी का सामना पहली बार मुगलों से हुआ। औरंगजेब के आक्रमण के विरूद्ध बीजापुर ने शिवाजी से सहायता की याचना की। परन्तु जब बीजापुर ने मुगलों से संधि कर ली तब शिवाजी ने मुगलों पर आक्रमण करने बंद कर दिये। मुगलों से मुक्त होकर बीजापुर ने शिवाजी को समाप्त करने के लिये अफजल खां को भेजा। शिवाजी उसके धोखें में नहीं आये और उसके विरूद्ध विजय प्राप्त की।
- 1660 में मुगल सूबेदार शाइस्ता खां को शिवाजी को समाप्त करने का आदेश दिया गया परन्तु शिवाजी ने उसकी योजना को विफल करके स्वयं विजय प्राप्त की।
- राजा जयसिंह के अनुरोध पर शिवाजी 1666 ई० में और गजेब से मिलने आगरा गये। औरंगजेब की उनके प्रति उदासीनता से शिवाजी रूष्ठ हुए और औरंगजेब ने उनको नजरबंद कर दिया। वहां से वह एक योजना बनाकर चालाकी से निकल पाने में सफल हुए।
- 1670 ई० में शिवाजी ने मुगलों से फिर युद्ध आरंभ किया। पुरंदर की संधि द्वारा खोये हुए अपने अनेक किलों को शिवाजी ने फिर जीत लिया। इस प्रकार, कुछ ही वर्षों में शिवाजी मुगलों और बीजापुर से अनेक दुर्गों और भू-प्रदेशों को जीतने में सफल हुए।

- 16 जून, 1674 ई० को शिवाजी ने काशी के प्रसिद्ध विद्वान 'श्री गागभट्ट' द्वारा अपना राज्याभि करवाया, छत्रपति की उपाधि ग्रहण की और रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।
- शिवाजी, वास्तव में, फ्रांस के शासक लुई चौदहवें और प्रशा के शासक फ्रेडरिक महान की भाँति स्वय अपने प्रधानमंत्री थे और शासन की सभी शक्तियों को अपने में केंद्रित रखते थे। शासन में सहायत लिये अष्ट प्रधान नामक एक समिति होती थी जिसका प्रमुख था पेशवा। ये मंत्री समय-समय पर पर देते थे यद्यपि उसको मानना या न मानना शिवाजी की इच्छा पर था।
- शिवाजी की भूमिकर व्यवस्था निश्चित बन्दोबस्त पर आधारित थी। परन्तु महाराष्ट्र के पहाड़ी क्षेत्र भूमि पैदावार बहुत कम होने के कारण राज्य को भूमि राजस्व से विशेष आय नहीं होती थी। इस शिवाजी ने अपनी आय का प्रमुख साधन 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' को बनाया।
- शिवाजी सुसंस्कृत हिंदू थे। हिंदू धर्म की उदारता की भावना को उन्होंने ठीक प्रकार से समझा आत्मसात किया और अपने व्यवहार और नीति में उसका प्रयोग किया। समर्थ गुरु रामदास आध्यात्मिक और धार्मिक गुरु थे।
- शिवाजी परम कुशल और साहसी सैनिक थे। शिवाजी योग्य सेनापति भी थे। अपने देश की भौगो स्थिति व परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने गुरिल्ला युद्ध-पद्धति का प्रयोग किया और सुरक्षा के अनेक दुर्गों का निर्माण किया।
- शिवाजी एक महान शासन प्रबन्धक और राष्ट्र निर्माता थे। उन्होंने आजीवन मुस्लिम शक्ति का सफलत विरोध किया और एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की।

● अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

1. अकबर के चरित्र का मूल्यांकन कीजिये।
2. शाहजहाँ के शासन काल में होने वाले विद्रोहों का वर्णन कीजिए।
3. खुसरो के विद्रोह पर टिप्पणी लिखिये।
4. 'शाहजहाँ का काल' मुगल-काल का स्वर्ण-काल था। सिद्ध कीजिए।
5. अकबर द्वारा किये गए साम्राज्य-विस्तार की विवेचना कीजिये।
6. जहाँगीर के शासन-विस्तार पर प्रकाश डालिये।
7. शाहजहाँ द्वारा किये गए साम्राज्य विस्तार का विश्लेषण कीजिये।
8. औरंगजेब के राजत्व सिद्धांत पर प्रकाश डालिये।
9. औरंगजेब का चरित्र-चित्रण कीजिए।
10. औरंगजेब की विजयों पर प्रकाश डालियें
11. औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति और उसके परिणामों पर प्रकाश डालिये।
12. मुगल शासन के दौरान हुई स्थापत्य कला की प्रगति पर प्रकाश डालिये।
13. मराठा-शक्ति के उत्कर्ष के कारण बताइए।
14. छत्रपति शिवाजी के जीवन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
15. 'मराठा स्वतत्रता संग्राम' पर टिप्पणी लिखिए।
16. एक स्थायी राज्य की स्थापना करने में शिवाजी की असफलता के कारण बताइए।
17. मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
18. शिवाजी का राष्ट्र निर्माता के रुप में चरित्र-चित्रण कीजिये।

संदर्भ-ग्रन्थ (Reference Books)

1. भारतीय इतिहास का वैदिक युग (Vol–1)—*एस०एल०नागौरी, कांता नागौरी, पांइटर पब्लिशर्स।*
2. प्राचीन भारत इतिहास—*लेखन-प्रतिभा प्रकाशन।*
3. भारतीय इतिहास: एक विश्लेषण—*मनीकांत सिंह, किताब महल।*
4. भारतीय इतिहास: एक विश्लेषण—*मनीकांत सिंह, किताब महल।*
5. भारत का इतिहास—*मनोज शर्मा, पियर्सन एजूकेशन।*
6. भारत का इतिहास प्रागैतिकंहासिक काल से आधुनिक काल तक—*मानिक लाल गुप्ता, अटलांटिक पब्लिशर्स।*

❑❑❑

इकाई (Unit)

4

कर्नाटक में आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंदिता
(Anglo-French Rivalry in Carnatic)

संरचना

- उद्देश्य (Objectives)
- विषय प्रवेश (Introduction)
- भारत में यूरोपियनों का आगमन (Arrival of Europeans in India)
- कर्नाटक युद्ध (1744–1763 ई०) [Carnatic Wars (1744–1763 A.D.)]
- बंगाल में अंग्रेजों का आगमन (Arrival of Britishers in Bengal)
- नवाब सिराजुद्दौला (1756–1757 ई०) [(Nawab Sirajuddaula (1756–1757 A
- प्लासी का युद्ध (Battle of Plassey)
- नवाब मीरजाफर एवं मीरकासिम (1757–1763 ई०) [Nawab Mir Jafar and Mir Kasim (1757–1763 A.D.)]
- बक्सर का युद्ध–1764 ई० (Battle of Buxar–1764 A.D.)
- बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना (Establishment of Dual Government in Bengal)
- आंग्ल-मराठा युद्ध (1775–1818 ई०) [Anglo-Maratha Wars (1775–1818 A
- सारांश (Summary)
- अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
- संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक जान सकेंगे—

- भारत में यूरोपियनों का आगमन।
- कर्नाटक युद्ध के विषय में।
- बंगाल में अंग्रेजों के आगमन एवं प्लासी तथा बक्सर के युद्ध के विषय में।

विषय प्रवेश (Introduction)

सन् 1740 में यूरोप में आस्ट्रियन उत्तराधिकार युद्ध (1740–1748) आरंभ हुआ। इस युद्ध और फ्रांस विरोधी पक्षों में थे। युद्ध की घोषणा से पूर्व मारीशस का गवर्नर लाबूर्दोने पेरिस में था। उस थी कि पूरब में अंग्रेजों के व्यापारिक जहाजों को लूटा जाए। इसके लिए उसने फ्रांस की सरकार से ज माँगा। कंपनी के संचालकों ने इस योजना का विरोध किया क्योंकि उन्हें भय था कि पूरब में युद्ध व होने से उनके व्यापार को हानि पहुँचेगी। किन्तु फ्रांस की सरकार ने लाबूर्दोने की योजना का अनुमो

और उनकी माँग को स्वीकृत कर लिया। लाबूर्दोने जहाजी बेड़े के साथ मारीशस वापस आ गया। अभी युद्ध आरंभ नहीं हुआ था और फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा मारीशस में व्यर्थ पड़ा हुआ था। अत: संचालकों के दबाव के कारण फ्रांस की सरकार ने जहाजी बेड़ा फ्रांस वापस बुला लिया। किन्तु फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा मारीशस पहुँचने से अंग्रेजी कंपनी के संचालक भयभीत हो गये थे। उनके द्वारा आग्रह किये जाने पर ब्रिटिश सरकार ने बार्नेट की अध्यक्षता में एक जहाजी बेड़ा पूरब भेज दिया।

भारत में यूरोपियनों का आगमन (Arrival of Europeans in India)

सन् 1453 में ओटोमन तुर्कों ने एशिया माइनर तथा पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों पर अधिकार जमा लिया। इससे भारत और यूरोप के मध्य शताब्दियों से चला आने वाला व्यापार बंद हो गया। यूरोपवासियों ने भारत के लिए नवीन सामुद्रिक मार्ग की खोज आरंभ की और पुर्तगाल का नाविक वास्कोडिगामा भारत के केरल तट पर सन् 1498 में पहुंचने में सफल हो गया। इसके उपरान्त बड़ी संख्या में पुर्तगाली भारत के पश्चिमी तट पर आए और उन्होंने अपना व्यापार स्थापित कर लिया। इस व्यापार से उनको इतना लाभ होता था कि यूरोप के अन्य देश भी भारत के साथ व्यापार करने के लिए लालायित हो गए। इनमें अंग्रेज, डच और फ्रसीसी प्रमुख थे। इन्होंने पश्चिमी तथा पूर्वी तटों, बंगाल तथा आंतरिक प्रदेशों में अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित कर लिये। जब तक मुगल साम्राज्य शक्तिशाली रहा और दक्षिण में शांति रही, यूरोप के ये व्यापारी व्यापार में लगे रहे। सन् 1757 में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् पूरे भारत में अशांति फैल गई और इन व्यापारियों में राजनैतिक आकांक्षा जाग उठी। इस दिशा में पहला संघर्ष अंग्रेजों और फ्रांसीसीयों के बीच कर्नाटक में हुआ।

कर्नाटक में राजनीतिक स्थिति (Political Condition in Carnatic)

कर्नाटक में अंग्रेजों (इंग्लैंड निवासी) और फ्रांसीसियों के बीच वरीयता का संघर्ष आरंभ होने के पहले वहाँ की राजनीतिक स्थिति इस प्रकार थी—

1. 1701 ई० में औरंगजेब ने सादुल्लाखाँ को कर्नाटक प्रांत का सूबेदार नियुक्त किया था। 1732 ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके भतीजे दोस्तअली ने कर्नाटक का शासन संभाला। उसने अर्काट को अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार कर्नाटक या अर्काट राज्य का नवाब वंशानुगत हो गया। दोस्तअली ने अपने अधिकार क्षेत्र के विस्तार का भी प्रयास किया। उसके पुत्र सफदरअली और दामाद चाँदासाहब ने त्रिचनापल्ली (तिरुचिरापल्ली) पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया, किन्तु वे तंजौर को जीतने में असफल रहे।

2. त्रिचनापल्ली और तंजौर के हिंदू शासक अपनी सुरक्षा के लिए मराठों पर आश्रित थे। अत: जब त्रिचनापल्ली और मदुरा पर नवाब ने आक्रमण किया, तो मराठे उत्तेजित हो गये और रघुजी भौंसले के नेतृत्व में उन्होंने आक्रमण कर दिया। आक्रमण में दोस्तअली मारा गया और सफदरअली ने मराठों को चालीस लाख रुपये क्षतिपूर्ति के दिये तथा नियमित रूप से चौथ देने का आश्वासन देकर संधि कर ली। मराठों ने त्रिचनापल्ली पर आक्रमण किया और चाँदासाहब को बंदी बना लिया और वहाँ अपना प्रशासक नियुक्त कर दिया। सफदरअली और चाँदासाहब ने मराठा आक्रमण के समय अपने-अपने परिवारों को सुरक्षा के लिए पांडिचेरी में फ्रांसीसीयों के सरंक्षण में भेज दिया। जब मराठों ने इन परिवारों को समर्पित करने को कहा तब फ्रांसीसी गवर्नर ड्यूमा ने ऐसा करने से मना कर दिया। इस पर मराठों ने चाँदासाहब को बंदी बना लिया और उसे दौलताबाद के दुर्ग में बंद कर दिया।

3. इस पर मराठा आक्रमण से सफदरअली की स्थिति बहुत दुर्बल हो गयी। अवसर पाकर उसके चचेरे भाई मुर्तजाअली ने वल्लौर में उसकी हत्या कर दी, जहाँ सफदरअली ने शरण ली थी। मुर्तजाअली ने अपने आप को अर्काट का शासक घोषित कर दिया, किन्तु सेना ने उसे नवाब नहीं माना।

4. मराठा आक्रमण के फलस्वरुप उत्पन्न अराजकता से लाभ उठाकर निजामुल्मुल्क ने कर्नाटक अपना अधिकार जमाने के लिए अर्काट पर आक्रमण कर दिया। उसे कर्नाटक में शांति स्थापित करने में द सफलता मिली। उसने सफदरअली के अवयस्क पुत्र को अर्काट का नवाब घोषित कर दिया और अपने सेव अब्दुल्लाखाँ को उसका संरक्षक बना दिया। निजामुल्मुल्क के जाने के तुरंत बाद अब्दुल्लाखाँ की मृत्यु हो ग अब निजाम का एक दूसरा सेवक अल्पवयस्क नवाब का संरक्षक बन गया। कुछ समय पश्चात् उसने बाल नवाब की हत्या कर दी और स्वयं नवाब बन बैठा।

अत: 1744 ई० में जब आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष आरंभ हुआ, उस समय कर्नाटक में राजनीति अराजकता फैली थी और आर्थिक संकट की स्थिति थी। अर्काट का अनवरुद्दीन नवाब था तथा त्रिचनापर और तंजौर में हिंदू शासक थे। इनके साथ तीन यूरोपियन केंद्र थे-पांडिचेरी में फ्रांसीसी, नागापट्टम में डच उ मद्रास में अंग्रेज। ये सभी स्थान दुर्ग के समान सुरक्षित थे।

आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष के कारण (Reasons for Anglo-French Conflict)

कोरोमंडल समुद्रतट और उसके पृष्ठ की भूमि को यूरोपवासियों ने कर्नाटक नाम दिया था। यह समुद्र के समांतर एक सँकरी पट्टी थी जो उत्तर में ओंगोल से दक्षिण में जिंजी तक थी। इसके पश्चिम में दक्ि का पठार है। इसकी राजधानी अर्काट थी और इसका नवाब दक्षिण के मुगल सूबेदार के अधीन था। सन् 17 में मराठा आक्रमण में कर्नाटक का नवाब दोस्तअली मारा गया। मराठे उसके दामाद चाँदासाहब को ब बनाकर अपने साथ ले गये। दोस्तअली के पुत्र सफदरजंग ने मराठों को एक करोड़ रुपया देकर जान बच किन्तु सन् 1742 में सफदरजंग के चचेरे भाई मुर्तजाअली ने उसकी हत्या कर दी। इस स्थिति में सफदरजंग अल्पवयस्क पुत्र को नवाब बनाया गया। कर्नाटक की अस्थिर और अशांत अवस्था में दक्षिण के सूबे निजामुल्मुल्क ने हस्तक्षेप करके अनवरुद्दीन को कर्नाटक का नवाब नियुक्त कर दिया। अनवरुद्दीन की स्ि बहुत दुर्बल थी और प्रशासन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था।

अंग्रेजों तथा फ्रांसीसी कंपनियों की स्थिति—कर्नाटक में नवाबों के परिवर्तन तथा उनकी हत्या यूरोपीय कंपनियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। स्पष्ट कारण यह था कि जब तक इन कंपनियों का व्यापार सु रुप से चलता रहता था, ये राजनीतिक झमेलों में नहीं पड़ती था। इस समय कर्नाटक में इन कंपनियों की स्ि इस प्रकार थी- फ्रांसीसी कंपनी का केंद्र पांडिचेरी था और अंग्रेज कंपनी के केंद्र फोर्ट सेंट डेविड तथा मद्र नगर थे। अंग्रेजी कंपनी का व्यापार और आर्थिक समृद्धि फ्रांसीसी कंपनी की अपेक्षा उत्तम थे। बंगाल, बंबई व सूरत में भी अंग्रेज कंपनी की आर्थिक दशा उत्तम थी। इसके विपरीत फ्रांसीसी कंपनी की आर्थिक दशा दु थी। यद्यपि ऊपर से देखने में दोनों देशों की कंपनियों की शक्ति समान थी लेकिन आंतरिक रूप से उनमें पट अंतर था। अंग्रेजी कंपनी की शक्ति फ्रांसीसी कंपनी की अपेक्षा कहीं अधिक थी।

कर्नाटक में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष के कुछ तो आधारभूत कारण थे और कुछ तात्कालिक थे। आधार तीन कारण निम्न प्रकार थे—

(1) व्यापारिक प्रतिद्वंदिता—आधारभूत कारणों में पहला कारण दोनों कंपनियों की व्यापा प्रतिद्वंदिता थी। दोनों ही भारत में अपना व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करना चाहती थीं, अत: उनमें सं अनिवार्य था।

(2) इंग्लैंड-फ्रांस शत्रुता—यूरोप में इंग्लैंड और फ्रांस एक-दूसरे के विरोधी थे। फ्रांस यूरोप में प्र स्थापित करना चाहता था और इग्लैण्ड यूरोप में शक्ति संतुलन स्थापित करने का पक्षधर था। इसका प्र भारत में दोनों देशों की कंपनियों पर पड़ना स्वाभाविक था।

(3) औपनिवेशिक स्पर्द्धा—इंग्लैंड और फ्रांस के बीच उवनिवेश के संबंध में स्पर्द्धा थी और वे उत्तरी अमेरिका में एक-दूसरे के उपनिवेशों पर अधिकार जमाना चाहते थे।

संघर्ष का तात्कालिक कारण—यूरोप में 1740 ई० में आस्ट्रियन उत्तराधिकार का युद्ध चल रहा था। इस युद्ध में फ्रांस ने प्रशिया का और इंग्लैंड ने आस्ट्रिया का साथ दिया। विपक्षियों को सहायता देने के कारण भारत में भी दोनों देशों की कंपनियों के मध्य संघर्ष होना स्वाभाविक था।

डूप्ले की नीति—कर्नाटक में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष को समझने के लिए पांडिचेरी के फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले की नीति को समझना आवश्यक है। व्यापारिक दृष्टि से अंग्रेजी कंपनी समृद्धिशाली थी और फ्रांसीसी कंपनी का व्यापार सीमित था। अत: अंग्रेजों की समृद्धि से फ्रांसीसी ईर्ष्या रखते थे। यह भी सत्य है कि कर्नाटक के स्थानीय शासकों के विवाद में हस्तक्षेप सर्वप्रथम अंग्रेजों ने किया था। फ्रांसीसीयों ने हस्तक्षेप की नीति को व्यापक बना दिया और इसके द्वारा अपने प्रतिद्वंदियों को समाप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने अनेक अवसरों पर इस नीति का अनुसरण करके लाभ भी उठाया। फ्रेंच गवर्नर ड्यूमा ने दोस्तअली और निजाम को पांडिचेरी बुलाकर उनका स्वागत किया। निजाम तो इससे इतना प्रभावित हुआ था कि उसने गवर्नर ड्यूमा को 'नवाब' की पदवी प्रदान कर दी थी और कृष्णा नदी के दक्षिण क्षेत्र में भूमिकर एकत्रित करने का अधिकार भी दे दिया था। 1739 ई० ड्यूमा ने तंजौर के राजा की सहायता की थी जिसके बदले उसने फ्रांसीसीयों को कारीगल प्रदान कर दिया था। ड्यूमा ने सफदरअली और चाँदासाहब की सैनिक सहायता भी की थी और इसके बदले फ्रांसीसीयों को उन्होंने भूमि और धन दिया था। 1742 ई० में डूप्ले पांडिचेरी का फ्रेंच गवर्नर नियुक्त होकर आया। उसने स्थानीय शासकों के विवादों में हस्तक्षेप करने की नीति को व्यापक रुप दिया क्योंकि वह स्पष्ट जानता था कि फ्रांसीसी कंपनी अंग्रेजी कंपनी से व्यापारिक स्पर्द्धा करने में समर्थ नही थी। अत: राजनीतिक हस्तक्षेप द्वारा ही फ्रांसीसी अपनी शक्ति को सुदृढ़ कर सकते थे। डूप्ले की यह नीति भी कर्नाटक में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष का कारण बन गयी।

डूप्ले की नीति की प्रमुख विशेषताएँ—1. फ्रांसीसी व्यापार की सुरक्षा हेतु तथा समुद्र-तट पर शक्ति शाली आधार के लिए सशक्त जहाजी बेड़ा रखना आवश्यक था; 2. संघर्ष की स्थिति में फ्रांस की सरकार से सहायता मिलने की आशा धूमिल थी, इसलिए स्थानीय शासकों से सहायता उपलब्ध करना आवश्यक था; 3. स्थानीय शासकों के विवादों में हस्तक्षेप द्वारा फ्रांसीसी कंपनी को कर्नाटक में सर्वोच्च राजनीतिक और सैनिक शक्ति बनाना: 4. अंग्रजी कंपनी की शक्ति को पूर्णरुप से समाप्त करना।

कर्नाटक युद्ध (1744–1763 ई०) [Carnatic Wars (1744–1763 A.D.)]

I. प्रथम कनार्टक युद्ध (1744–1748 ई०) [First Carnatic War (1744–1748 A.D.)]

सन् 1744 में यूरोप में आस्ट्रियन उत्तराधिकार युद्ध आरंभ हो गया जो 1748 तक चला। इस युद्ध में इंग्लैंड और फ्रांस एक-दूसरे के विरोधी पक्षों में थे। युद्ध की घोषणा से पूर्व मारीशस का गवर्नर लाबूर्दोने फ्रांस की राजधानी पेरिस में था। वह पूरब में अंग्रेजों के व्यापारिक जहाजों को लूटने की योजना बनाने में व्यस्त था। इसके लिए उसने फ्रांस से जहाजी बेड़ा माँगा। कंपनी के संचालकों ने इस योजना का विरोध किया क्योंकि उन्हें पूरब में युद्ध का विस्तार होने से उनके व्यापार को हानि होने का भय था, लेकिन फ्रांस ने लाबूर्दोने की योजना तथा माँग को स्वीकृति दे दी। लाबूर्दोने जहाजी बेड़े के साथ मारीशस आ गया। अभी युद्ध आरंभ नहीं हुआ था और फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा मारीशस में बेकार पड़ा हुआ था। अत: संचालकों के दबाव में आकर फ्रांस की सरकार ने जहाजी बेड़ा वापस फ्रांस बुला लिया लेकिन। बेड़ा मारीशस पहुँचने से अंग्रेजी कंपनी के संचालक शंकित हो गये। उनके कहने पर ब्रिटिश सरकार ने बार्नेट की अध्यक्षता में एक जहाजी बेड़ा पूरब भेज दिया।

डूप्ले का तटस्थता प्रयास— अंग्रेजी बेड़े के आने का समाचार मिलने पर डूप्ले ने मद्रास के ल्फोयर को प्रस्ताव दिया कि पूरब में शांति बनाए रखी जाये। पहले भी तटस्थता रह चुकी थी। ल्फोयर प्रस्ताव को नहीं माना क्योंकि तटस्थता की गारंटी देना उसके लिए संभव नही था। इसका कारण यह समुद्र पर अंग्रेजी बेड़े पर शासक का नियंत्रण होता था।

डूप्ले ने फिर भी शान्ति कायम रखने का प्रयत्न किया। उसने कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन से माँगा। नवाब ने ल्फोयर को युद्ध न करने के लिए सचेत किया। इसके साथ की डूप्ले ने फ्रांसीसी जह को, जो लाबूर्दोने की अध्यक्षता में मारीशस में था, मद्रास पर आक्रमण करने के लिए बुला किया

नवाब के विरोध करने पर बार्नेट जहाजी बेड़े को लेकर मद्रास से मलक्का की ओर चला ग उसने फ्रांसीसी जहाजों को लूटना शुरु कर दिया जो चीन से आ रहे थे। इस प्रकार पूरब में आंग्ल–फ्रांस शुरू हो गया।

मद्रास पर फ्रांसीसियों का अधिकार— लाबूर्दोने 1746 ई० में पांडिचेरी पहुँच गया। लाबूर्दोने के पहले ही बार्नेट की मृत्यु हो चुकी थी और अंग्रेजी बेड़े का नेतृत्व पीटन के हाथों में चला गया था जो था और डरपोक था। लाबूर्दोने से पहली मुठभेड़ होने के बाद वह बंगाल चला गया और वहाँ रहकर सहायता आने की प्रतीक्षा करता रहा। उसके चले जाने से फ्रांसीसियों को मद्रास पर आक्रमण करने क मिल गया। डूप्ले ने नवाब से यह कहकर अनुमति प्राप्त कर ली कि मद्रास पर अधिकार करने के बाद नवाब को दे देगा। फ्रांसीसीयों ने जल और थल दोनों ओर से आक्रमण करके आसानी से मद्रास पर कर लिया। यहीं उनकी सफलता समाप्त हो गयी।

डूप्ले और लाबूर्दोने में मतभेद–डाडवेल लिखता है, "**इस महत्त्वपूर्ण सफलता के बाद फ्रांसीसी गवर्नरों, डूप्ले और लाबूर्दोने के मध्य इस स्थान को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गये।**" लक्ष्य अंग्रेजी उपनिवेशों को नष्ट करके उनके व्यापार को समाप्त कर देना था। दूसरी ओर, लाबूर्दोने लूट-मार करना था। वह अंग्रेजों के व्यापार को हानि पहुँचाकर स्वयं धन कमाना चाहता था। डूप्ले परामर्श दिया, प्रार्थना की, धमकी दी, विरोध किया लेकिन उसने एक न सुनी। लाबूर्दोने ने चार लाख बदले अंग्रेजों को मद्रास वापस करने का समझौता कर लिया। लेकिन समुद्री तुफान आने से उसका दुर्बल हो गयी। उसके अनेक जहाज डूब गये, अत: बिना धन मिले ही वह मारीशस लौट गया।

प्रथम कर्नाटक युद्ध का महत्त्व (Significance of First Carnatic War)

प्रो० डाडवेल के अनुसार यह युद्ध एक युगांतरकारी घटना थी। यद्यपि बाहरी तौर पर कुछ भी नहीं हुआ था और क्षेत्रीय सीमाएँ पहले के समान ही थीं, फिर भी आंतरिक रूप से पूरी स्थिति बदल प्रथम युद्ध के परिणाम इस प्रकार थे—(1) यूरोपीय व्यापारी एक राजनीतिक शक्ति बन गए थे। (2) भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने की पहली बार कल्पना की। (3) दोनों कंपनियों को शक्ति अवसर मिला। (4) भारत की राजनीतिक दुर्बलता प्रकट हो गयी। (5) नौसेना तथा प्रशिक्षित सैनिकों स्थापित हुआ। **मेलेसन** का मत है कि **इस युद्ध ने यूरोपियन शक्ति के द्वारा भारत विजय का मा रूप से सुगम कर दिया।**

II. दूसरा कर्नाटक युद्ध (1748–1754 ई०) [(Second Carnatic War (1748—175

पहला कर्नाटक युद्ध चार वर्ष तक चला था और यह आशा थी कि दोनों कंपनियाँ शांतिपूर्व व्यापार में लग जायेंगी, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। एक्सलाशेपेल की संधि के परिणामस्वरुप कर्नाटक और फ्रांसीसीयों के बीच युद्ध समाप्त हो गया किन्तु इससे स्थायी शांति नहीं हुई। **सरकार** और दत्ता कि यह युद्ध उनकी प्रतिस्पर्द्धा के नाटक का प्रथम अंक था, "**उसने केवल एक अंक को समाप्त कि**

-रा अंक एक वर्ष के अंदर ही प्रकट हुआ।'' यूरोप में इंग्लैंड तथा फ्रांस के मध्य शांति थी किन्तु कर्नाटक दोनों कंपनियों के मध्य युद्ध छिड़ गया।

कारण— द्वितीय कर्नाटक युद्ध के पांच कारण निम्नवत थे—

(1) दकन और कर्नाटक में फ्रांसीसी प्रतिष्ठा तथा शक्ति की स्थापना हो गयी थी। अंग्रेज इससे शंकित दोनों देशों के मध्य यूरोप में वैमनस्य था, अत: दोनों कंपनियाँ एक-दूसरे की शक्ति को समाप्त कर देना हती थी।

(2) दोनों पक्षों के पास काफी बड़ी संख्या में यूरोपियन तथा स्थानीय सैनिक एकत्रित हो गये थे। युद्ध माप्त हो जाने के बाद दोनों कंपनियों के सामने यह समस्या थी कि उन सैनिकों को कैसे व्यस्त रखा जाये। त: दोनों कंपनियों को स्थानीय विवादों में भाग लेना एक मात्र विकल्प रह गया जिससे वे उस पक्ष की हायता करने को तैयार हो गये जो उनके सैनिकों पर होने वाला खर्चा वहन कर सके।

(3) इस समय कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन तथा भूतपूर्व नवाब दोस्तअली के दामाद चाँदासाहब के च संघर्ष आरंभ हो गया। चाँदासाहब को नवाब बनने के लिए डूप्ले ने प्रोत्साहिन दिया था। इसका कारण था ; प्रथम कर्नाटक युद्ध के दौरान उसका नवाब अनवरुद्दीन से विवाद हो गया था और उसे भय था कि आगामी द्ध में अनवरुद्दीन अंग्रेजों की सहायता करेगा। अत: उसने चाँदासाहब को, जो मराठों की कैद में था, धन देकर ड़ा लिया। उसने चांदासाहब को सहायता देकर नवाब बनाने का आश्वासन भी दिया।

(4) इसी बीच हैदराबाद में भी उत्तराधिकार के लिए संघर्ष शुरू हो गया। 1748 ई० में निजामुल्मुल्क ो मृत्यु हो गयी। गद्दी के दो दावेदार थे, निजाम का पुत्र नासिरजंग और निजाम की पुत्री का पुत्र जफफरजंग। नासिरजंग ने गद्दी पर अधिकार जमा लिया। ऐसी स्थिति में मुजफ्फरजंग मराठों की सहायता ंगने के लिए पूना गया। यहाँ वह चांदासाहब से मिला। दोनों ने फ्रांसीसीयों से सहायता लेने का निश्चय किया। प्ले इसके लिए मान गया।

(5) तंजौर की समस्या के कारण भी अंग्रेज और फ्रांसीसीयों के बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया। 1738 ० में तंजौर के उत्तराधिकार में हस्तक्षेप करके फ्रांसीसी गवर्नर ड्यूमा को कारीकल मिल गया था। 1749 ई० तंजौर में फिर उत्तराधिकार के लिए विवाद हुआ। इस बार अंग्रेजों ने विवाद में हस्तक्षेप करके देवीकोटाई ान पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इससे फ्रांसीसी नाराज हो गये।

डूप्ले की नीति में परिवर्तन—प्रथम कर्नाटक युद्ध में डूप्ले को अंग्रेजों के विरुद्ध पूरी सफलता नहीं ली थी किन्तु इस युद्ध के अनुभव से उसे अपनी नीति निर्धारित करने में सहायता अवश्य मिली। जिस नीति ा निर्धारण डूप्ले ने किया, उसने भारत के इतिहास की गति को ही बदल दिया।

युद्ध से स्पष्ट हो गया था कि फ्रांसीसीयों की सफलता की संभावना बहुत कम थी। पहला तथ्य तो यह था ; संघर्ष में सामुद्रिक शक्ति की भूमिका निर्णायक थी। युद्ध से यह भी स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेजी नौसेना का मुद्र पर नियंत्रण था और फ्रांसीसी कंपनी का भविष्य अंधकारमय था। दूसरा तथ्य यह था कि फ्रांसीसी शक्ति र्नाटक तक ही सीमित थी। इसके विपरीत अंग्रेजों की शक्ति के केंद्र बंबई और बंगाल में भी स्थापित थे। इस कार किसी भी संघर्ष में अंग्रेजों को इंग्लैंड के साथ अपने भारतीय केंद्रों से भी साधन-सहायता प्राप्त हो कती थी। डूप्ले को ये दुर्बलताएँ स्पष्ट हो गयी थीं, लेकिन वह परम योग्य, साहसी तथा कुशल प्रशासक था। सकी प्रतिभा ने इस कठिन परिस्थितियों में नया मार्ग खोजने में सफलता प्राप्त की। उसकी नयी नीति म्नांकित तीन तथ्यों पर आधारित थी।

(1) अड्यार युद्ध से स्पष्ट था कि यूरोपीय ढंग से प्रशिक्षित सेना द्वारा भारतीय शासकों की विशाल सेना : विजय प्राप्त की जा सकती है।

(2) इस प्रकार की छोटी, साहसी और प्रशिक्षित सेना को एक प्रभावकारी अस्त्र बनाकर दो भार शासकों के मध्य विवाद बढ़ाकर हस्तक्षेप किया जा सकता था। अत: उन्होंने "Divide and rule" की अपनायी।

(3) उस समय भारतीय शासकों में अनेक प्रकार के विवाद हो रहे थे जो विदेशी सहायता प्राप्त कर लिए कोई भी कीमत देने को तैयार हो जाते थे।

इन तर्कों के आधार पर डूप्ले ने नवीन नीति का अनुसरण किया। स्पष्ट रूप से उसका उद्दे राजनीतिक था। इस प्रकार के हस्तक्षेप से फ्रांसीसियों को भारतीय राजा की प्रतिष्ठा तथा साधन प्राप्त जिससे अंतत: फ्रांसीसी कंपनी अंग्रेजी कंपनी से अधिक शक्तिशाली हो जायेगी। सौभाग्य से इस प्रका विवादों में हस्तक्षेप करने का अवसर उसे मिल भी गया।

डूप्ले द्वारा हस्तक्षेप—मार्च 1748 में डूप्ले को ज्ञात हुआ कि मराठों ने सात वर्ष के उपरान्त चाँदा को रिहा कर दिया था और चाँदासाहब कर्नाटक का नवाब बनने का प्रयास कर रहा था। इसी प्रकार 1748 में दक्षिण के मुख्य सूबेदार निजामुल्मुल्क की मृत्यु होने पर उसके पौत्र मुजफ्फरजंग ने निजाम–प लिए दावा पेश कर दिया था। इसमें फ्रांसीसीयों की सहायता प्राप्त करने के लिए चाँदासाहब ने अपने रजासाहब को डूप्ले के पास भेजा। डूप्ले ने उसको सहायता देना स्वीकार कर लिया। उसका विचार था कि विवाद शीघ्र ही हल हो जायेंगे और दोनों प्रत्याशियों को सफलता मिलेगी।

युद्ध की घटनाएँ— डूप्ले की योजना थी चाँदासाहब को पहले अर्काट का नवाब बनाने की और उसकी सहायता से मुजफ्फरजंग को हैदराबाद के सिंहासन पर बिठाने की। पूना से दोनों नवाब पांडिचेरी और डूप्ले ने उन्हें सैनिक सहायता दी जिससे उन्होंने अंबर के युद्ध में अनवरुद्दीन को परास्त किया (1 ई०)। युद्ध में अनवरुद्दीन मारा गया। उसके पुत्र मुहम्मदअली ने पलायन कर त्रिचनापल्ली में शरण ली। कर्नाटक पर चाँदासाहब का अधिकार हो गया। डूप्ले ने दोनों नवाबों से माँग की कि वे त्रिचनापल्ली आक्रमण करे और मुहम्मदअली को समाप्त कर दें, किन्तु उन्होंने डूप्ले की सलाह नहीं मानी और धन लूट लिए तंजौर पर आक्रमण कर दिया।

कर्नाटक का नवाब बनने में चाँदासाहब को जो सफलता मिली, उससे अंग्रेजों को भय उत्पन्न हो अत: वे मुहम्मदअली से मिल गए और उसे सहायता देने लगे। उन्होंने नासिरजंग को भी कर्नाटक पर आक्र करने के लिए प्रोत्साहन दिया। फलत: नासिरजंग ने विशाल सेना के साथ कर्नाटक पर आक्रमण कर दोनों नवाब तंजौर का घेरा उठाकर नासिरजंग का मुकाबला करने के लिए आये। फ्रांसीसीयों की सह मिलने के बावजूद दोनों नवाब बलूबदर नामक स्थान पर नासिरजंग से हार गये (1750 ई०)। चाँदा भागकर पांडिचेरी पहुँच गया लेकिन मुजफ्फरजंग को नासिरजंग ने बंदी बना लिया। डूप्ले इससे निराश हुआ। उसने इस प्रकार की सैनिक और कूटनीतिक चाल चली कि नासिरजंग ने चाँदासाहब को कर्नाटक नवाब मान लिया। इसके बाद भी डूप्ले नासिरजंग के सरदारों के बीच षड्यंत्र रचता रहा। जब नासि हैदराबाद वापस लौट रहा था, तब मार्ग में असंतुष्ट सरदारों ने उसे मौत के घाट उतार दिया और मुजफ्फ को निजाम घोषित कर दिया। उसने डूप्ले को धन, उपहार और विस्तृत क्षेत्र प्रदान किये। उसकी प्रार्थन डूप्ले ने बुसी के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना उसके साथ उसकी सुरक्षा के लिए दी, लेकिन मार्ग में पठान सरद मुजफ्फरजंग का वध कर दिया। इस संकट में बुसी ने साहस से काम लिया और निजामुल्मुल्क के तीसरे सलाबतजंग को निजाम घोषित कर दिया। उसने बुसी को स्थायी रूप से हैदराबाद में ही रोक लिया फ्रांसीसी सेना के रख-रखाव के लिये उत्तरी सरकार के जिले दे दिये।

III. तृतीय कर्नाटक युद्ध (1756–1763 ई०) [Third Carnatic War (1756–1763 A.D.)]

पांडिचेरी की संधि के पश्चात भी कर्नाटक में अनिश्चितता बनी रही। इसका कारण यह था कि यद्यपि फ्रांसीसी कर्नाटक में अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल नहीं हुए थे किन्तु हैदराबाद में उनकी शक्ति निश्चित रुप से स्थापित हो गयी थी। हैदराबाद का निजाम सलाबतजंग दुर्बल व्यक्ति था और बुसी के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना की उसको अपनी रक्षा के लिए आवश्यकता थी। बुसी दूरदर्शी और सफल व्यक्ति था। उसने बड़ी योग्यता से निजाम की रक्षा की और अपनी स्थिति को मजबूत बनाया। अंग्रेजों को भी पांडिचेरी की संधि में उसकी स्थिति को स्वीकार करना पड़ा था यद्यपि वे इससे संतुष्ट नहीं थे। दूसरी ओर, फ्रांसीसी भी कर्नाटक में अंग्रेजों के प्रभुत्व से असंतुष्ट थे। इस प्रकार कर्नाटक की राजनीतिक स्थिति अनिश्चित बनी हुई थी। इस समय मराठे उत्तर की राजनीति में संलिप्त थे और 1761 ई० में उन्हें पानीपत में घोर पराजय का सामना करना पड़ा था। इससे अंग्रेज और फ्रांसीसी तृतीय कर्नाटक युद्ध बिना उनके हस्तक्षेप के लड़े।

युद्ध का कारण—पांडिचेरी की संधि कर्नाटक में शांति स्थापित नहीं कर सकी। 1756 ई० में यूरोप में इंग्लैंड और फ्रांस में सप्तवर्षीय युद्ध आरंभ हो गया था। सप्तवर्षीय युद्ध मूल रूप में आस्ट्रिया और प्रशिया के बीच आरंभ हुआ था। इसमें फ्रांस आस्ट्रिया की और इंग्लैंड प्रशिया की सहायता कर रहा था, फलस्वरूप भारत में भी दोनों कंपनियों के बीच युद्ध आरंभ हो गया। अंग्रेज कर्नाटक में मुहम्मदअली को नवाब बनाकर संतुष्ट थे लेकिन उन्हें हैदराबाद में फ्रांसीसीयों का प्रभुत्व अखर रहा था। बुसी को हटाने के लिए वे 1754 ई० से ही प्रयत्नशील थे।

युद्ध की घटनाएँ—फ्रांस में अब डूप्ले की नीति को समझा जाने लगा था। अत: फ्रांस की सरकार डूप्ले की नीति का अनुसरण करना चाहती थी। उसने गोडेह्यू की शांति नीति को अस्वीकार कर दिया और उसने एक योग्य सेनापति काउंट डि लैली को विशाल सेना तथा एडमिरल डि अचे की अध्यक्षता में जहाजी बेड़ा भेजा। 1758 ई० में ये भारत पहुँचे। इसके पूर्व 1757 ई० में प्लासी के युद्ध को जीतकर अंग्रेज अपना प्रभुत्व बंगाल में स्थापित कर चुके थे। पांडिचेरी का गवर्नर डी लेरित एक अयोग्य तथा भ्रष्ट व्यक्ति था। उसने उस समय मद्रास को अधिकार में नहीं लिया जब वहाँ से सारी सेना बंगाल जा चुकी थी।

लैली का फोर्ट सेंट डेविड जीतना— लैली एक साहसी सेनापति था किंतु वह भारतीय स्थिति से अपरिचित था। फ्रांस की सरकार ने उसे अंग्रेजी बस्तियों पर आक्रमण करके उनके व्यापार को नष्ट करने का आदेश दिया था। पांडिचेरी पहुँचकर उसने फोर्ट सेंट डेविड पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् ही वह मद्रास पर आक्रमण करके कर्नाटक में अंग्रेजों की शक्ति नष्ट करना चाहता था लेकिन इसी बीच फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा अंग्रेजी बेड़े से पराजित होकर वापस चला गया। आर्थिक स्थिति इतनी विषम थी कि लैली को धन प्राप्त करने के लिए तंजौर के राजा पर आक्रमण करना पड़ा। यहाँ उसने राजा से 56 लाख रुपया प्राप्त किया लेकिन तंजौर का घेरा इतना लंबा चला कि अंग्रेजी बेड़ा बंबई से मद्रास आ गया। अत: लैली को तंजौर का घेरा उठाना पड़ा।

लैली को अपने प्रारंभिक अभियान में विशेष सफलता नहीं मिली। उसकी असफलता के निम्नलिखित कारण थे—

प्रथम—लैली कुशल और साहसिक सैनिक अवश्य था किन्तु राजनीतिक कार्य करने के लिए वह उपयुक्त नहीं था। वह हठी तथा उग्र प्रकृति का था। उसके असभ्य और उद्दंड व्यवहार से कंपनी के कर्मचारी रुष्ट हो गये थे। अत: उन्होंने उससे सहयोग नहीं किया।

द्वितीय—लैली को असैनिक और सैनिक सभी मामलों में पूर्ण अधिकार दिये गये थे लेकिन जल सेना पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था। उसका नायक डि अचे था। इस विभाजन का परिणाम विनाशकारी रहा। वास्तव में, डि अचे कायर था और कायर होने कारण वह मारीशस लौट गया।

तृतीय— फ्रांस की सरकार यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के युद्धों में संलिप्त थी, अत: समय पर लैली को सहायता न भेज सकी।

लैली फोर्ट सेंट डेविड पर अधिकार करने के तुरंत बाद मद्रास पर आक्रमण करना चाहता था, किन्तु धन की कमी के कारण उसे योजना में परिवर्तन करना पड़ा और उसने तंजौर पर आक्रमण किया।

तंजौर से लैली पांडिचेरी आया क्योंकि उसे खाद्य-सामग्री और गोला-बारुद आदि की व्यवस्था करनी थी।

मद्रास पर असफल आक्रमण—लैली ने अब मद्रास पर आक्रमण करने का निश्चय किया लेकिन उसकी स्थिति निराशाजनक और संकटग्रस्त थी। अत: संपूर्ण शक्ति से मद्रास पर आक्रमण करने के लिए उसने बुसी को हैदराबाद से बुला लिया। यह उसकी भयंकर भूल साबित हुई क्योंकि बुसी के हैदराबाद से हटते ही फ्रांसीसीयों का प्रभाव वहाँ समाप्त हो गया। क्लाइव के आदेश पर कर्नल फोर्ड ने उत्तरी सरकार पर अधिकार जमा लिया। अब सलाबतजंग भी अंग्रेजों से मिल गया। बुसी का आना भी व्यर्थ रहा क्योंकि वह अपनी सेना नहीं लाया था। फिर भी साहसपूर्वक लैली ने मद्रास का घेरा डाला लेकिन अंग्रेजी बेड़े के आ जाने पर उसे घेरा उठाना पड़ा।

वांडीवाश का युद्ध—मद्रास के घेरे के उपरान्त लैली को कोई सफलता नहीं मिली। उलटे उसकी कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं। उसके सैनिकों में गहरा असंतोष व्याप्त हो गया क्योंकि उनको वेतन नहीं मिल रहा था। उसने बसालतजंग और हैदरअली से सहायता माँगी लेकिन निराशा हाथ लगी। इस बीच अंग्रेजों ने काफी विशाल सेना एकत्रित कर ली और उसका नेतृत्व आयरकूट को दिया गया। उसने लैली को 1760 ई० में वांडीवाश नामक स्थान पर बुरी तरह पराजित कर दिया। पराजय के उपरांत लैली ने पांडिचेरी में शरण ली और एक वर्ष तक उसकी रक्षा करता रहा। अंत में रसद समाप्त हो जाने के कारण 1761 ई० में उसको आत्मसमर्पण करना पड़ा। वांडीवाश का युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ। मैलेसन लिखता है, "**वांडीवाश के युद्ध ने ड्यूमा और डूप्ले द्वारा निर्मित भवन को भूमिसात कर दिया और पांडिचेरी के भाग्य का भी निर्णय हो गया।**"

पेरिस की संधि—अंतत: कर्नाटक में आंग्ल-फ्रांसीसी स्पर्द्धा समाप्त हो गयी। 1763 ई० में पेरिस की संधि द्वारा यूरोप में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच भी युद्ध समाप्त हो गया। इस संधि के द्वारा भारत में फ्रांसीसीयों को पांडिचेरी, माही, चंद्रनगर लौटा दिये गये किन्तु इनकी किलेबंदी करने का उन्हें अधिकार नही था। फ्रांसीसीयों को केवल व्यापार का सीमित अधिकार दिया गया। फलस्वरुप उनकी राजनीतिक आकांक्षाएँ समाप्त हो गयीं।

इस संघर्ष में अंग्रेज पूर्णतय: सफल रहे। इसके पश्चात् भी फ्रांसीसी राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए हैदरअली, मराठे, जाट, मुगल सम्राट शाहआलम आदि की सहायता करते रहे। उन्होंने 1781-83 में बड़ी संख्या में सैनिक भारत भेजे। उन्होंने टीपू की सहायता की। अंग्रेजों ने 1803 ई० में पांडिचेरी पर अधिकार जमा लिया। 1814 ई० में अंग्रेजों ने फ्रांसीसीयों को पांडिचेरी वापस दे दिया। इसके बाद फ्रांसीसीयों ने राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने के लिये प्रयत्न नहीं किया। उनकी राजनीतिक चेष्टा अंतिम रूप से समाप्त हो गयी।

लैली की असफलता प्रारंभ से ही निश्चित थी। डूप्ले की तरह उसे भी फ्रांस से सहायता नहीं मिली। फ्रांस ं कंपनी के संचालक इस बात को नहीं समझ पाये कि भारत में राजनीतिक संघर्ष चल रहा था जिसके लिए ूरी सहायता की आवश्यकता थी। समुद्र पर अंग्रेजों का नियंत्रण भी लैली की असफलता का एक कारण था। थल तथा नौसेना के नायकों के मध्य एकमत न होना भी पराजय के लिए उत्तरदायी था। लैली में राजनीतिक था कूटनीतिक क्षमता का अभाव था। उसके उग्र स्वभाव ने भी उसके लिए समस्याएँ पैदा कीं। उसका अंत भी खदायी हुआ। वह दो वर्षों तक बास्तील के किले में बंदी रहा और अंतत: फाँसी पर लटकाया गया।

ंगाल में अंग्रेजों का आगमन (Arrival of Britishers in Bengal)

बंगाल प्रांत में सबसे पहले प्रवेश करने वाले यूरोपियन हॉलैंड निवासी थे जिन्होंने हुगली, बालासोर, चनसुरा, कासिमबाजार, पटना में अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित किये थे। उन्होंने नवाब से कुछ अधिकार प्राप्त कर लिये थे और चिनसुरा में एक दुर्ग का निर्माण भी कराया था। 1651 में अंग्रेजों ने हुगली में एक व्यापारिक कोठी स्थापित की। इसके बाद उन्होंने कासिमबाजार, पटना, ढाका आदि नगरों में भी अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित किये। उन्होंने बंगाल के गवर्नर शाहजादा शुजा से तीन हजार रुपये वार्षिक कर देने के बदले कर-मुक्त व्यापार करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया।

1696 में अंग्रेजों को कलकत्ता में किलेबंदी करने की अनुमति मिल गयी। 1698 में अंग्रेजों ने सुतनाती, कालीकटा और गोविंदपुर को 1200 रुपये वार्षिक लगान पर ले लिया। 1700 में उन्होंने एक दुर्ग का निर्माण किया जिसका नाम फोर्ट विलियम रखा। 1717 में अंग्रेजों ने मुगल सम्राट फर्रुखसियर से फरमान हासिल किया जिसमे बंगाल के गवर्नर को आज्ञा दी गयी थी कि वह 3,000 रुपये वार्षिक कर के बदले अंग्रेज कंपनी को कर-मुक्त व्यापार करने दे।

ंगाल के नवाब और अंग्रेज (1707–1756 ई०)
Nawabs of Bengal and the Britishers (1707–1756 A.D)

दक्षिण भारत के समान बंगाल भी मुगल साम्राज्य का एक प्रांत था। 1707 ई० में औरंगजेब की मृत्यु के समय बंगाल का सूबेदार मुर्शिदकुलीखाँ था। उसके दृढ़ शासन के अंतर्गत बंगाल प्रांत में, जिसमें उड़ीसा भी सम्मिलित था, औरंगजेब की मृत्यु के बाद भी शांति और समृद्धि बनी रही। मुर्शिदकुलीखाँ की सत्ता व्यावहारिक रूप से पूर्ण स्वतंत्र थी। वह केवल नाममात्र के लिए मुगल सम्राट की अधीनता में था। 1727 ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शौकतुद्दौला नवाब बना। उसने बिहार जीतकर बंगाल प्रांत में मिला लिया। उसने बिहार के प्रशासन के संचालन के लिए अपने एक विश्वासपात्र सेवक अलीवर्दीखाँ को नियुक्त किया। अलीवर्दीखाँ योग्य एवं महत्त्वाकांक्षी अधिकारी था। धीरे-धीरे वह इतना शक्तिशाली हो गया कि 1740 ई० में शौकतुद्दौला के पुत्र के उत्तराधिकारी सरफराजखाँ को मारकर वह स्वयं नवाब बन गया।

अलीवर्दीखाँ (1740–1756 ई०)—अलीवर्दीखाँ एक योग्य और दूरदर्शी व्यक्ति था। अपने शासनकाल में उसे मराठों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इस कारण वह बंगाल में पूर्ण शांति और व्यवस्था कायम नहीं कर सका। इससे बंगाल की जनता को अपार कष्ट होता था, अत: मजबूर होकर उसने 1751 ई० में मराठों को चौथ देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद भी बंगाल में आंतरिक अशांति बनी रही। इसका प्रमुख कारण बिहार के अफगान और ईरानी अधिकारियों द्वारा विद्रोह थे। अलीवर्दीखाँ ने इन विद्रोहों का कठोरता से दमन किया। उसकी सबसे बड़ी सफलता यह थी कि उसे बंगाल के हिंदू व्यापारियों और साहूकारों का समर्थन प्राप्त था। इस धनी वर्ग ने उसे सहयोग दिया था क्योंकि वे आश्वस्त थे कि वही बंगाल में शांति स्थापित करने में सक्षम था।

अलीवर्दीखाँ यूरोपीय व्यापारियों से बहुत संतर्क रहता था। कर्नाटक के समाचारों से उसे उनकी का आभास हो गया था। उसने विशेष सावधानी बरती कि अंग्रेज, फ्रांसीसी अथवा डच राजनीतिक हस्त करने पायें और न ही अपनी शक्ति दृढ़ करने पायें। उसने इन सभी पर पर्याप्त नियंत्रण रखा और अपने न तो इनको अपने किलों को मजबूत करने दिया और न आपस में लड़ने दिया। वह कहा करता था, व्यापारी हो। तुम्हें दुर्गों की क्या जरुरत है। तुम मेरे संरक्षण में हो और तुम्हें किसी शत्रु से नहीं डरना चा समय-समय पर वह उन्हें दंडित भी करता था। वस्तुत: वह इन व्यापारियों को कोई अधिकार नहीं देना था। जीन लाने लिखा है, "वह उनके अधिकारों के प्रति ईष्यालु था। वह अपने और यूरोपीय लोगों के संबंधों को लेकर स्वतंत्र रहने का प्रयास करता था। सम्राट द्वारा प्रदत्त फरमान या विशेषाधिकार की चर्चा क्रुद्ध हो जाता था।" किन्तु उसकी नीति विवेकपूर्ण और दूरदर्शितापूर्ण थी और उसके कठोर नियंत्रण के ही कर्नाटक के समान बंगाल में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष नहीं हआ।

नवाब सिराजुद्दौला (1756–1757 ई०) [Nawab Sirajuddaulla (1756–1757 A.

1756 ई० में अलीवर्दीखाँ की मृत्यु हो गयी। उसका कोई पुत्र नहीं था। उसकी तीन पुत्रियाँ थ उसके तीनों दामाद उसके जीवनकाल में ही समाप्त हो गये थे। उसके बड़े दामाद के कोई पुत्र नहीं था उसकी विधवा ने जो अलीवर्दीखाँ की बड़ी पुत्री घसीटी बेगम थी उसने मुरादउद्दौला को गोद ले लिया थ उसे नवाब बनाना चाहती थी। अलीवर्दीखाँ की दूसरी पुत्री का पुत्र शौकतजंग, जो पूर्णिया का गवर्नर था नवाब बनना चाहता था। उसकी तीसरी पुत्री का पुत्र मिर्जा मुहम्मद था जिसे अलीवर्दीखाँ ने गोद ले लि और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया। उत्तराधिकार के प्रश्न पर संघर्ष न हो इसके लिए अलीवर्दीखाँ ने अधिकारियों से शपथ ले ली थी वे मिर्जा मुहम्मद के उत्तराधिकार का समर्थन करेंगे। इन अधिकारियों ने का पालन किया और अलीवर्दीखाँ की मृत्यु के पश्चात मिर्जा मुहम्मद बिना किसी विरोध के नवाब ब उसने सिराजुद्दौला की उपाधि धारण की।

उत्तराधिकार का विवाद—गद्दी पर बैठने के अवसर पर सिराजुद्दौला का कोई विरोध नहीं हु लेकिन अन्य दावेदार गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। प्रथम दावेदार घसीटी बेगम थी जो मुरादुद्दौ नवाब बनाना चाहती थी। उसका समर्थन उसका दीवान राजवल्लभ कर रहा था, राजवल्लभ ने अपना और धन सुरक्षा के लिए अंग्रेजों के पास कलकत्ता भेज दिया था। द्वितीय दावेदार शौकतजंग था, जिसने का पद प्राप्त करने के लिए मुगल सम्राट को प्रार्थनापत्र भेजा था और युद्ध की तैयारी कर रहा था दावेदार मीरजाफर था। वह अलीवर्दीखाँ का बहनोई था। यद्यपि गद्दी पर उसका कोई अधिकार नहीं था वि महत्त्वाकांक्षी था और अवसर की प्रतीक्षा में था। वह नवाब की सेना का सेनापति था परंतु वह दुष्चक्र कायर था। उसने उत्तराधिकार के मामले में सिराजुद्दौला का साथ दिया था क्योंकि उसे आशा थी कि उसके परमार्श से शासन करेगा।

नवाब ने पहले घसीटी बेगम पर नियंत्रण स्थापित किया। सिराजुद्दौला ने उसे बंदी बनाकर अपने ग कैद कर दिया। इसके बाद शौकतजंग के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पूर्णिया की ओर कूच किया। अ मार्ग में ही था कि उसे ज्ञात हुआ कि अंग्रेजों ने उसकी आज्ञा के अनुसार कलकत्ता की किलेबंदी बंद न थी। नवाब के निषेध करने पर फ्रांसीसीयों ने चंद्रनगर की किलेबंदी बंद कर दी। इससे नवाब इतना हुआ कि वह अंग्रेजों को दण्ड देने के लिए मार्ग से ही लौट पड़ा।

सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच युद्ध—सिराजुद्दौला ने शीघ्रता से कार्य किया। वह 20 मई को राजमहल से लौटा और 1 जून को मुर्शिदाबाद पहुँच गया। 4 जून को उसने अंग्रेजों की कासिमबाजार की कोठी पर अधिकार कर लिया। 5 जून को वह कलकत्ता पर आक्रमण करने के लिए चला और 16 जून को वहाँ पहुँच गया। गवर्नर ड्रेक, सेनापति मिचेल, काउंसिल के सदस्य, महिलाएँ और बच्चे जहाजों पर बैठकर फुल्टा भाग गये जो हुगली नदी के तट पर समुद्र के निकट था। भूतपूर्व सर्जन हालवेल के नेतृत्व में उन अंग्रेजों ने जो भाग नहीं सके थे दुर्ग की रक्षा का प्रयत्न किया किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी, अत: निराश होकर उन्होंने दो दिन बाद 20 जून को फोर्ट विलियम नवाब को समर्पित कर दिया।

कालकोठरी की दुर्घटना-हालवेल लिखता है कि नवाब के अधिकारियों ने उसके 145 साथियों को जिनमें एक महिला भी थी, किले की एक कोठरी में बंद कर दिया जो 18 फुट लंबी और 14 फुट 10 इंच चौड़ी थी। इनमें से 123 व्यक्ति दम घुट जाने के कारण मर गये। प्रात: जब दरवाजा खोला गया, तब केवल 22 व्यक्ति जीवित निकले। हालवेल के अनुसार कोठरी में हवा आने की पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी और जून के महीने की भीषण गर्मी थी जिसके कारण बन्दियों की मृत्यु हो गयी। अंग्रेज इतिहासकारों ने घटना का इस प्रकार वर्णन किया है कि मानो वह एक वास्तविक घटना हो लेकिन आधुनिक शोध कार्यों से सिद्ध होता है कि यह एक केवल कल्पित घटना थी जिसका उद्देश्य नवाब की निंदा करना, उसे बदनाम करना तथा आक्रमण करने का बहाना खोजना था। जे०एच० लिटिल ने अपने लेखों में सिद्ध किया है कि 145 कैदी थे ही नहीं। कुछ भी हो, नवाब स्वयं इसके लिए उत्तरदायी नहीं था। अंग्रेजों में प्रतिशोध तथा रोष की भावना उत्पन्न करना इसका आशय था। अनेक इतिहासकर इस कथित घटना को सच नहीं मानते हैं।

क्लाइव का बंगाल आना (Arrival of Clive in Bengal)

कलकत्ता पर अंग्रेजों का पुन: अधिकार—नवाब ने कलकत्ता पर अधिकार करके उसका नाम अलीनगर रखा और अपने सेनापति मानिकचंद को वहाँ का प्रशासक नियुक्त करके मुर्शिदाबाद चला गया। इस बीच शौकतजंग ने नाममात्र के मुगल सम्राट से सनद प्राप्त कर ली और खुलकर नवाब होने की घोषणा करने लगा। अत: सिराजुद्दौला ने उस पर आक्रमण करके मोतीहारी के युद्ध में उसे परास्त कर दिया। इस युद्ध में शौकतजंग मारा गया। नवाब ने फुल्टा पर आक्रमण नहीं किया क्योंकि उसे विश्वास था कि अंग्रेज उससे पहले की भाँति क्षमा याचना करेंगे। लेकिन नवाब को धोखा देने के लिए फुल्टा से प्रार्थना करने लगे और दूसरी ओर, उन्होंने मद्रास से शीघ्र सहायता भेजने के लिए कहा। मद्रास काउंसिल ने क्लाइव के नेतृत्व में सुसज्जित सेना और एडमिरल वाटसन के नेतृत्व में जहाजी बेड़ा कलकत्ता भेज दिया। उन्होंने आते ही 2 जनवरी, 1757 को मानिकचंद को रिश्वत देकर कलकत्ता पर अधिकार कर लिया और हुगली को जी भरकर कर लूटा। यह सुनकर नवाब फिर सेना सहित कलकत्ता आया। इस बार उसने युद्ध न करके अंग्रेजों से अलीपुर की संधि 9 फरवरी, 1757 को कर ली। संभवत: उसे अफगानों के आक्रमण का भय था।

अस्थायी समझौता— अलीनगर की संधि में सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों की सभी मागें स्वीकार कर ली जिनका वह पहले विरोधी था। इस संधि के अनुसार—

1. नवाब ने कंपनी की छीनी गयी सारी संपत्ति लौटा दी और क्षतिपूर्ति का वचन दिया।

2. नवाब ने मुर्शिदाबाद में अंग्रेजों का एक प्रतिनिधि रखना स्वीकार कर लिया। उनको कलकत्ता की किलेबंदी करने तथा सिक्का ढालने का भी अधिकार दे दिया।

3. नवाब ने उन सभी सुविधाओं को स्वीकार कर लिया जो अंग्रेजों को मुगल सम्राट से प्राप्त हुई थीं। उनको दस्तक का माल बंगाल, बिहार और उड़ीसा में भेजने की अनुमति भी दे दी गयी।

4. इन अधिकारों की स्वीकृति के बदले अंग्रेज कंपनी ने नवाब के साथ रक्षात्मक संधि की।

नवाब के दृष्टिकोण में इस प्रकार का आमूल परिवर्तन क्यों हो गया, यह रहस्यपूर्ण है। संभवत: पर अहमदशाह अब्दाली की विजय से नवाब को भय हो गया था कि कहीं रुहेलों आदि की सहायता से पर आक्रमण न हो जाए। यह भी संभव है कि उसे ज्ञात हो गया था कि उसका दरबार षड्यंत्रों का केंद्र बन था और उसके अनेक अधिकारी अंग्रेजों से मिल गए थे। दूसरी ओर, इस समय क्लाइव के वाटसन से मधुर नहीं थे। वह यह भी नहीं चाहता था कि नवाब फ्रांसीसीयों से सहायता प्राप्त कर ले। साथ ही यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध आरंभ होने वाला था और क्लाइव पहले फ्रांसीसीयों से निपटना चाहता था अत: उस समय नवाब से संधि करना ही उचित समझा।

अंग्रेजों द्वारा चंद्रनगर पर अधिकार—यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध आरंभ हो गया था, अत: क्लाइव ने फ्रांसीसीयों की शक्ति को नष्ट करने को प्रथम वरीयता दी। इसके लिए उसको नवाब की अनुमति की आवश्यकता थी। उसने नवाब के अनेक अधिकारियों को रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर डॉ० ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं, "**भूतकाल में या वर्तमान काल में भारत में मीरजाफर जैसे देशद्रोही रहे धन के लिए अपने देश की स्वतंत्रता बेच देते हैं।**" किन्तु दरबारियों के आग्रह पर भी नवाब अनुमति लिए तैयार नहीं हुआ। वह इस समय फ्रांसीसीयों की सहायता करने का पक्षधर था। इसके लिए उसने हुग फौजदार नंद कुमार तथा दीवान दुर्लभराय को नियुक्त किया। अंग्रेजों ने इन्हें रिश्वत देकर अपने पक्ष लिया। इसके बाद क्लाइव ने चंद्रनगर पर आक्रमण कर दिया और मार्च 1757 ई० में चंद्रनगर पर अ कर लिया।

सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यंत्र—इस समय नवाब के दरबार में उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचा जा जिसका उद्देश्य उसे गद्दी से हटाना था। इसका कारण नवाब का अस्थिर और क्रोधी स्वभाव था। दुर्व्यवहार के कारण दरबार के तीन प्रमुख अधिकारी-सेनापति मीरजाफर, दीवान रायदुर्लभ और कोषाध्यक्ष जगत सेठ महताबराय-उससे नाराज हो गये। षड्यंत्र का प्रारंभ जगत सेठ ने किया। मीरजाफर नवाब बन तैयार हो गया। षड्यंत्रकारियों ने क्लाइव से सहायता माँगी, क्वाइव इसके लिए तैयार हो गया क्योंकि मीर नवाब के परिवार का था और उसके पास नवाब का विरोध करने की शक्ति थी। कलकत्ता की सिलेक्ट भी इसके पक्ष में थी। अत: षड्यंत्रकारियों तथा अंग्रेजों के बीच समझौता हो गया। इस समझौते के पालन समय संकट आ गया जब अमीचंद ने, जिसने मध्यस्थ का कार्य किया था, नवाब के कोष का पाँच प्रतिश रत्नों का एक-चौथाई भाग अपने हिस्से का माँगा। ऐसा न करने पर उसने सिराजुद्दौला को षड्यंत्र की देने की धमकी भी दी। क्लाइव ने उसे संतुष्ट करने के लिए फर्जी कागज बनाया जिसमें उसे धन देने क कही गयी थी। कंपनी के संचालकों तथा अंग्रेज इतिहासकारों ने इस जालसाजी को उचित ठहराया है। का भी कहना था कि ऐसी परिस्थितियों में वह सौ बार ऐसा कार्य करेगा।

प्लासी का युद्ध (Battle of Plassey) (23 जून, 1757 ई.)

नवाब सिराजुद्दौला को गद्दी से हटाने का षड्यंत्र कार्यान्वित करने के उपरान्त क्लाइव ने नव अलीनगर की संधि के उल्लंघन का आरोप लगाया और नवाब के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह सेना ले मुर्शिदाबाद की ओर चल दिया। वास्तव में नवाब ने कोई उल्लंघन नहीं किया था। यह तो युद्ध आरंभ क लिए क्लाइव का बहाना मात्र था। नवाब को भी षड्यंत्र का पता चल गया था। उसने भी युद्ध की तैयारी क्योंकि अब्दाली दिल्ली से वापस जा चुका था। अत: उसे भी अब अलीनगर संधि की आवश्यकता न संक्षेप में प्लासी के युद्ध के निम्नलिखित सात मुख्य कारण थे—

(1) उत्तराधिकार का विवाद—प्रारंभ से ही अंग्रेज बंगाल के उत्तराधिकार के विवाद में हस्तक्षे रहे थे। उन्होंने घसीटी बेगम को प्रोत्साहित किया था और उसके दीवान राजवल्लभ के परिवार तथा क

कलकत्ता में अपने संरक्षण में रखा था। बाद में उन्होंने शौकतजंग का खुलेआम समर्थन किया। कर्नाटक में सफलता प्राप्त करने के बाद उनका उद्देश्य बंगाल में भी ऐसा नवाब गद्दी पर बिठाना था जिस पर उनका पूर्ण नियंत्रण हो।

(2) अंग्रेजों द्वारा दस्तकों का दुरुपयोग—कंपनी को बंगाल प्रांत में चुंगी-मुक्त व्यापार का अधिकार मुगल सम्राट फर्रुखसियर ने दिया था लेकिन कंपनी के कर्मचारी व्यक्तिगत व्यापार में इन दस्तकों का दुरुपयोग करते थे। वे भारतीय व्यापारियों को भी दस्तक बेचते थे। सिराजुद्दौला इससे अत्यंत रुष्ट था क्योंकि इससे राजकोष की अपार हानि हो रही थी।

(3) सिराजुद्दौला के विरोधियों का अंग्रेजों को समर्थन—नवाब के विरोधी इस समय अंग्रेजों से मिल गये। इनमें मीरजाफर, मेहताबराय, रायदुर्लभ प्रमुख थे। इससे नवाब की स्थिति दुर्बल हो गयी और विरोधी पक्ष अंग्रेजी सहायता प्राप्त करके शक्तिशाली हो गया। अत: उन्होंने युद्ध आरंभ कर दिया।

(4) सिराजुद्दौला द्वारा अंग्रेजों पर नियंत्रण—गद्दी पर बैठने के तुरंत पश्चात् सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों पर नियंत्रण करने का प्रयास किया था। उसने उनकी कासिमबाजार कोठी पर अधिकार कर लिया था और कलकत्ता की किलेबंदी रोकने का आदेश दे दिया था। उसने कलकत्ता पर भी आक्रमण किया था। उसके इन कार्यों से अंग्रेज उसे अपना विरोधी मानने लगे थे और उसे गद्दी से हटाना चाहते थे।

(5) कालकोठरी की घटना—अंग्रेजों ने कालकोठरी की मनगढ़ंत और काल्पनिक घटना का व्यापक प्रचार करके नवाब को अत्याचारी और निर्दयी के रुप में प्रदर्शित करने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने यह भी प्रचारित किया कि ऐसे निर्दयी व्यक्ति को गद्दी पर रहने का कोई अधिकार नहीं था।

(6) चंद्रनगर पर अंग्रेजों का अधिकार—नवाब के स्वाभाविक मित्र फ्रांसीसी थे जो अंग्रेजों के विरुद्ध उसकी सहायता करने को तत्पर रहते थे। अत: अंग्रेजों की नीति थी कि नवाब से युद्ध करने से पहले फ्रांसीसीयों की शक्ति को पूर्णतया नष्ट किया जाये। सिराजुद्दौला ने फ्रांसीसीयों की सहायता का महत्व नहीं समझा। अत: चंद्रनगर पर अधिकार करने के उपरान्त प्लासी का युद्ध होना स्वाभाविक था।

7. सिराजुद्दौला की गलतियां—प्लासी के युद्ध के लिए नवाब की गलतियां भी उत्तरदायी थीं। उसने अलीनगर की संधि में अंग्रेजों की सभी शर्तों को स्वीकार कर लिया। इससे अंग्रेजों की हिम्मत बढ़ गयी। अपने अधिकारियों के विरुद्ध उसने विवेकपूर्ण नीति नहीं अपनायी जिससे वे रुष्ट होकर अंग्रेजों से मिले। अपने दुर्व्यवहार से उसने हिंदू व्यापारियों तथा साहूकारों को भी नाराज कर दिया। उसने फ्रांसीसीयों का विनाश होना नहीं रोका। षड्यंत्र की सूचना प्राप्त होने पर उसने मीरजाफर और अन्य षड्यंत्रकारियों को बन्दी नहीं बनाया बल्कि उनको उनके पदों पर बना रहने दिया। इसके फलस्वरुप उसके विरुद्ध एक गुट बन गया जो बलात् उसे गद्दी से हटाना चाहता था। **डॉ० रमेशचंद्र मजूमदार** लिखते हैं, **"यदि नवाब ने शीघ्रता से कार्य करके मीरजाफर को बंदी बना लिया होता तो अन्य षड्यंत्रकारी आतंकित हो जाते तथा षड्यंत्र असफल हो जाता। लेकिन नवाब के साहस ने उसका साथ छोड़ दिया। किसी सख्त कार्यवाही के स्थान पर वह स्वयं मीरजाफर से भेंट करने उसके स्थान पर गया और अलीवर्दीखाँ के नाम पर उससे मिन्नतें कीं।"**

प्लासी युद्ध के परिणाम तथा महत्व
(Consequences and Singnificance of the Battle of Plassey)

प्लासी का युद्ध इतिहास के निर्णायक युद्धों में से एक है। भारतीय इतिहास में यह परिवर्तन का केन्द्र बिंदु है। यद्यपि सैनिक दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है फिर भी यह आवश्यक है कि इस युद्ध के विभिन्न परिणामों को समीक्षात्मक दृष्टि से देखा जाए।

(1) बंगाल पर अंग्रेजी प्रभुता की स्थापना—इस युद्ध का विशेष रुप से राजनीतिक महत्त्व है युद्ध के परिणामस्वरुप बंगाल पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। यद्यपि मीरजाफर नवाब बना कि अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली मात्र रहा। वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के पास थी। अब वे इच्छानुसार नवा बदल सकते थे जैसा कि मीरकासिम के उदाहरण से सिद्ध होता है। अत: एक व्यापारिक कंपनी प्रशासक गयी। इससे कंपनी का स्वरुप ही बदल गया और वह एक राजनीतिक शक्ति बन कर उभरी। इस सं **के०एम० पणिक्कर** लिखते हैं, **''प्लासी एक ऐसा व्यापार था जिसमें बंगाल के धनवान सेठ मीरजाफर ने नवाब को बेच दिया था।''**

(2) कंपनी को क्षेत्रीय और आर्थिक लाभ—कंपनी को नवीन क्षेत्र प्राप्त हुए। नये नवाब कलकत्ता के निकट चौबीस परगना की जमींदारी भेंट कर दी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में कंप कर-मुक्त व्यापार करने का अधिकार फिर प्राप्त हो गया। कंपनी को आर्थिक लाभ भी प्राप्त हुए। वास्त बंगाल की लूट आरंभ हो गयी। ओरमे का अनुमान है कि कंपनी को क्षतिपूर्ति के रूप में डेढ़ करोड़ रुपए हुआ। नवाब ने क्लाइव को बीस लाख रुपये से अधिक तथा चौबीस परगने की जागीर 'भेंट' के रुप मे की। उसने वाटसन को बीस लाख रुपये तथा काउंसिल के प्रत्येक सदस्य को अस्सी हजार रुपये अर्पित इस प्रकार एक वर्ष के भीतर नवाब ने तीन करोड़ रुपये कंपनी और उसके कर्मचारियों को लुटा दि

(3) कंपनी की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि—इन विभिन्न लाभों के अतिरिक्त नैतिक दृष्टि से युद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। नवाब का सफलतापूर्वक प्रतिरोध करने से कंपनी की प्रतिष्ठा में वृ सरकार और दत्ता के अनुसार, **''प्लासी ने उन्हें दिखा दिया कि बंगाल का राजनीतिक जीवन पूर्ण भ्रष्ट अवस्था में है और मुसलमान साहसिकों के पतनोन्मुख शासन के विरुद्ध हिंदू जमींदारें सौदागरों का असंतोष बढ़ रहा है। इसका लाभ उठाकर अंग्रेजों ने व्यापारिक उन्नति तथा प्रादेशिक का एक नया युग आरंभ किया।''** इस युद्ध का नैतिक महत्व यह था कि, ''एक विदेशी कंपनी के द्व प्रांतीय सूबेदार को अपमानित किये जाने ने कंपनी की शक्ति तथा गौरव में असाधारण वृद्धि कर दी

(4) दक्षिण के आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष पर प्रभाव—प्लासी के युद्ध के परिणामस्वरुप अंग्रेज को बंगाल का समृद्ध प्रांत हाथ लग गया। इससे परिणामस्वरुप उसके आर्थिक तथा सैनिक संसा आशातीत वृद्धि हो गयी। अब दक्षिक भारत में फ्रांसीसी उनका सामना करने की स्थिति में नहीं रहे। कन तृतीय युद्ध में क्लाइव ने कर्नल फोर्ड को बंगाल से कर्नाटक भेजा था। बंगाल के साधनों से ही अ फ्रांसीसीयों को अंतिम और निर्णायक रुप से परास्त कर दिया।

(5) भारत विजय का मार्ग प्रशस्त होना—प्लासी युद्ध ने ही अंग्रेजों द्वारा भारत वि आधारशिला रखी। इस विजय ने ही अंग्रेजों को भारत विजय की चाबी प्रदान की तथा उनका मार्ग किया। उनको भारत के मुस्लिम शासकों की राजनीतिक, आर्थिक व सैनिक दुर्बलताएँ उजागर हो गयीं भारत के अन्य भागों पर भी अधिकार करने का स्वप्न देखने लगे। इस प्रकार उनकी महत्त्वाकांक्षा में वृ बंगाल में अपनी सर्वोच्चता बनाये रखने के लिए क्लाइव ने चिनसुरा के डचों की शक्ति नष्ट करने के लि पर आक्रमण कर दिया और उनको परास्त किया।

(6) बंगाल में अन्य क्रांतियों का सूत्रपात—प्लासी के युद्ध के फलस्वरुप सिराजुद्दौला को मीरजाफर को नवाब बनाया गया था। अंग्रेज इतिहासकारों ने इस 'प्रथम क्रांति' माना है। इस परिवर्तन के कर्मचारियों को रिश्वत या भेंट के रुप में अपार धनराशि प्राप्त हुई थी। इससे कंपनी के अन्य कर्मच इसी प्रकार परिवर्तन करके नये नवाब से धन प्राप्त करने का लालच बढ़ने लगा। इसी लालच के कारण क्लाइव के जाने के बाद मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम को नवाब बनाकर उपहारस्वरुप रिश्वत प्राप्त कीं।

(7) बंगाल का शोषण—प्लासी से बंगाल की वह लूट और शोषण आरंभ हुआ जिसने बंगाल जैसे धनी प्रांत को भिखारी बना दिया। अगले आठ वर्षों में कंपनी के कर्मचारियों ने 15 करोड़ रुपये का लाभ व्यापार से प्राप्त किया। **मेलिसन** के शब्दों में, "**जितना हो सके उतना हड़प लें, मीरजाफर को एक सोने के बोरे के रुप में इस्तेमाल करें और जब इच्छा हो उसमें हाथ डाल दें।**" 1757 ई० के पूर्व कंपनी को भारतीय माल खरीदने के लिए इंग्लैंड से सोना और चाँदी लाना पड़ता था। वह बंद हो गया और अब बंगाल से ही जो धन रिश्वत और लूट से प्राप्त होता था, उस से ही भारतीय माल खरीदकर इंग्लैंड भेजा जाने लगा। कंपनी के डायरेक्टरों ने आदेश दिया कि मद्रास और बंबई प्रेसीडेंसियों का व्यय भी बंगाल उठायेगा। इस प्रकार हर प्रकार की चालाकी से बंगाल का आर्थिक शोषण हुआ।

इंग्लैंड में क्लाइव की उपलब्धि को असाधारण माना गया। इसकी सराहना इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री पिट ने की। डायरेक्टरों ने भी कृतज्ञता के भाव से उसे बंगाल का गवर्नर नियुक्त कर दिया। अल्फ्रेड लायल ने लिखा है, "प्लासी में क्लाइव की सफलता ने बंगाल में युद्ध और राजनीति का अत्यंत विस्तृत प्रदेश अंग्रेजों के लिए खोल दिया।" वास्तव में प्लासी से ही भारत की राजनीतिक तथा आर्थिक गुलामी का युग प्रारंभ हुआ।

के०एम० पणिक्कर का मत है कि यह एक ऐसा कार्य था जिसमें बंगाल के धनी सेठों और मीरजाफर ने अंग्रेजों को बंगाल की नवाबी बेच दी।

एडमिरल वाटसन के शब्दों में, "प्लासी का युद्ध कंपनी के लिए ही नहीं बल्कि सामान्य रूप से अंग्रेज जाति के लिए भी असाधारण महत्त्व रखता था।"

प्लासी के युद्ध के महत्व के बारे में डॉ० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, "अगर किसी का बंगाल पर अधिकार हो जाता है तो उसका संपूर्ण गंगा क्षेत्र पर, जो सभी राजवंशों की शक्ति का प्रमुख स्रोत रहा था जिनका भारतीय उपमहाद्वीप पर राज्य था, नियंत्रण स्थापित हो जायेगा।"

नवाब मीरजाफर एवं मीरकासिम (1757–1763 ई०) [Nawab Mir Jafar and Mir Kasim (1757–1763 A.D.)]

नवाब मीरजाफर (1757–1760 ई०) [Nawab Mir Jafar (1757–1760 A.D.)]

प्लासी के युद्ध के बाद मीरजाफर नवाब बना। उसकी सत्ता केवल नाममात्र को थी। वास्तव में समस्त सत्ता क्लाइव के हाथों में थी। इस स्थिति के लिए मीरजाफर स्वयं उत्तरदायी था। वह डरपोक तथा अयोग्य था। वृद्धावस्था, विलासिता तथा अफीम ने उसे अकर्मण्य बना दिया। था। अनेक अधिकारी और जमींदार उससे घृणा करते थे क्योंकि उसने अपने भांजे के साथ विश्वासघात किया था। अनेक स्थानों पर जमींदारों के विद्रोह हो रहे थे। इनके दमन तथा अपनी सुरक्षा के लिए वह क्वाइव तथा अंग्रेजी सैनिक शक्ति पर निर्भर था। काफी समय तक क्वाइव मुर्शिदाबाद में रुका रहा और उसने जगतसेठ के धन तथा प्रभाव का प्रयोग करके मीरजाफर को मुगल सम्राट से उसको मान्यता दिलाई।

1759 ई० में जब मुगल सम्राट शाहआलम ने आक्रमण किया तो क्लाइव ने बंगाल की रक्षा की। इन सब कार्यों से मीरजाफर क्वाइव को अपना हितैषी समझने लगा। क्लाइव के आग्रह पर उसने कंपनी को शोरे के व्यापार का एकाधिकार प्रदान कर दिया। उसने चौबीस परगने की मालगुजारी भी क्लाइव को भेंट कर दी। अंग्रेजों के बढ़ते हुए आर्थिक नियंत्रण से डचों के व्यापारिक हितों को हानि पहुंच रही थी। अत: अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करने तथा नवाब को अंग्रेजों के नियंत्रण से मुक्त करने के लिए वे जावा से अपने कुछ जहाजों तथा सैनिकों को हुगली ले आये। क्लाइव के कहने पर भी मीरजाफर ने डचों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। अंत में क्लाइव ने शीघ्रता से कार्यवाही करके डचों को बेदारा के युद्ध में पराजित किया। दोनों के बीच संधि हुई और संधि के अनुसार डचों ने वचन दिया कि "वे कभी युद्ध की ओर ध्यान न देंगे, सैनिक भरती नहीं

करेंगे और न देश में किलेबंदी करेंगे, वे चिनसुरा, कासिम बाजार और पटना की फैक्ट्रियों में से वा हेतु नहीं रखेंगे।" शर्तों का उल्लंघन होने पर अंग्रेजों को अधिकार दिया गया कि वे डचों को बंगाल से निक इस समय अंग्रेजों के अंतिम प्रतिद्वंद्वी को समाप्त करने से क्लाइव की प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि हु फरवरी, 1760 ई० को हालवेल को गवर्नर का उत्तरदायित्व सौंपकर वह इंग्लैंड वापस चला गया।

मीरजाफर का पद से हटना— क्लाइव के पश्चात् वेनसिटार्ट (1760–1764) फोर्ट विलि गवर्नर नियुक्त हुआ। नियुक्ति के समय वह मद्रास में था इसलिए कुछ समय के लिए हालवेल ने अ गवर्नर का कार्य किया। वह और उसके साथी क्लाइव के समान नवाब से धन प्राप्त करना चाहते थे उन्होंने मीरजाफर को हटाकर उसके स्थान पर उसके दामाद मीरकासिम को नवाब बनाने का षड्यंत्र र प्रकार मीरजाफर की असहाय अवस्था तथा दुर्भाग्य में वृद्धि हुई। राजकोष खाली था और वह अंग्रेजों द को पूरा करने में समर्थ नहीं था। हालवेल ने मीरजाफर के विरुद्ध आरोपों की सूची तैयार कर ली। मीरजा आरोप लगाया था कि उसने सिराजुद्दौला की माँ तथा अन्य संबंधियों की हत्या करायी थी और उसने अं विरुद्ध डचों, शाहआलम और अवध के नवाब शुजा से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया था किन्तु षड्यंत्रकारियों को यह ज्ञात था कि जब तक मीरजाफर का पुत्र मीरन जीवित है, मीरकासिम को नव बनाया जा सकता। अत: मीरन की हत्या का षड्यंत्र रचा गया। 3 जुलाई, 1760 को उसकी कैंप में गयी जब वह एक विद्रोही का पीछा कर रहा था। कहा यह गया कि बिजली गिरने से उसकी मृत्यु हुई थी

27 जुलाई, 1760 को वेनसिटार्ट ने औपचारिक रुप से बंगाल के गवर्नर का कार्यभार संभाल बंगाल में स्थान-स्थान पर विद्रोह हो रहे थे। इससे कंपनी के व्यापार को हानि पहुँच रही थी। अत: वेनरि एक बड़ी सेना रखने का निश्चय किया। उसे मीरजाफर से कुशल प्रशासन की आशा नहीं थी। मीरन की पश्चात् मीरजाफर प्रशासन के मामले में और लापरवाह हो गया था। सच्चाई यह थी कि कर्मचारि हस्तक्षेप इतना बढ़ गया था कि मीरजाफर शांति और अनुशासन स्थापित करने में असमर्थ था। इन परि में एक बड़ी सेना रखना आवश्यक हो गया था और वेनसिटार्ट चाहता था कि इस सेना का व्यय नवा करे। उसकी योजना थी कि सेना के व्यय के लिए नवाब से कुछ जिले ले लिए जायें और मीरकासिम क नवाब बनाकर प्रशासन का उत्तरदायित्व उसे दे दिया जाये। इससे प्रशासन में कुशलता आने की संभाव इसके लिए उसने मीरकासिम से गुप्त संधि की जिसके अनुसार मीरकासिम ने अंग्रेजों को सेना के व्यय बर्दवान, मिदनापुर तथा चिटगांव के जिले देना स्वीकार किया। साथ ही मीरकासिम ने सेना पर व्यय का ऋण भी चुकाने का वचन दिया।

19 अक्टूबर, 1760 को वेनसिटार्ट ने मीरजाफर से माँग की कि वह मीरकासिम को नवाब नियु दे। मीरजाफर ने यह माँग अस्वीकार कर दी क्योंकि उसे भय था कि मीरकासिम उसकी हत्या करव प्रयत्न करेगा। अत: मीरजाफर ने नवाब पद त्याग दिया। उसे 15,000 रुपये मासिक पेंशन देकर कलक दिया गया (20 अक्टूबर, 1760) तथा मीरकासिम को नवाब बना दिया गया।

मीरकासिम (1760–1763) [Mir Kasim (1760–1763)]

मीरकासिम कर्मठ, योग्य, साहसी और दूरदर्शी व्यक्ति था। वह सच्चरित्र और योग्य शासक भी पर बैठते ही वह प्रशासन को सुव्यवस्थित करने में लग गया। उसके सामने भी वही समस्यायें आयी मीरजाफर को सामना करना पड़ा था। सबसे ऊपर आर्थिक संकट था। राजकोष खाली था। कर्मचारियों द नहीं मिल रहा था, कंपनी के कर्मचारी दस्तक का दुरुपयोग कर रहे थे, नवाब अंग्रेजों की धनलिप्सा करने में असमर्थ था, प्रशासन में अराजकता थी, नवाब की प्रतिष्ठा धूल में मिल चुकी थी। मीरक साहसपूर्वक इन समस्याओं का सामना किया। वह प्रशासन का संचालन स्वयं करने का इच्छुक था। वह

की कठपुतली बनने को तैयार नहीं था। पूर्णिया और रंगपुर के फौजदार के रूप में वह अपनी प्रशासनिक कुशलता का परिचय दे चुका था। उसने निम्नलिखित कार्यों को अंजाम दिया था—

(1) उसने कंपनी के शेष धन का भुगतान करने के लिए कंपनी को बर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के जिले दे दिये और कर्नाटक युद्ध के लिए अंग्रेजों को पाँच लाख रुपया दिया। भेंट के रुप में उसने वेनसिटार्ट को 90,000 पौंड, हालवेल को 27,000 पौंड और काउंसिल के अन्य सदस्यों को 20,000 पौंड दिये।

(2) आर्थिक दशा सुधारने के लिए उसने हिसाब की जाँच करायी। उसने बेईमान कर्मचारियों को हटा दिया और उनसे गबन किया हुआ धन वसूला। उसने ईमानदार कर्मचारी नियुक्त किये। दरबार की विलासिता पर अपव्यय बंद कर दिया। लगान वसूली के लिए आमिल नियुक्त किये।

(3) प्रशासन को दुरुस्त करने के लिए उसने समुचित उपाय किये। वीरभूम के जमींदार आजादजमाँ के विद्रोह को दबा दिया गया। बिहार के विद्रोही भोजपुरिया जमींदारों की जमींदारियाँ जब्त कर ली गयीं।

(4) प्रांत की सुरक्षा के लिए नवाब ने युरोपियन ढंग पर सेना को पुनर्गठित किया। इसके लिए उसने गुर्गिखाँ नामक आर्मीनियन को नियुक्त किया। तोपों तथा बंदूकों के निर्माण के लिए मुंगेर में भट्टियाँ बनवायी गयीं।

(5) प्रशासन में अंग्रेजों के बढ़ते हुए हस्तक्षेप को रोकने के लिए, नवीन सेना गठित करने के लिए तथा बिहार के विद्रोहियों का दमन करने के लिए मीरकासिम अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से मुंगेर ले गया। वह नवाब के निवास के लिए सुरक्षित स्थान चाहता था। मुर्शिदाबाद षड्यंत्रों का केंद्र बन गया था। यह अफवाह भी थी कि अंग्रेज मीरजाफर को फिर नवाब बनाना चाहते थे।

(6) इस प्रकार थोड़े समय में ही मीरकासिम ने एक योग्य प्रशासक तथा संगठनकर्ता के गुणों का परिचय दिया। इसमें उसे वेनसिटार्ट से भी सहयोग मिला। वेनसिटार्ट ने हस्तक्षेप की नीति को छोड़ कर नवाब की प्रतिष्ठा और शक्ति में वृद्धि की नीति अपनायी। उसका विचार था कि इस प्रकार ही नवाब सुव्यवस्था स्थापित करने में सफल हो सकेगा। किन्तु काउंसिल के अन्य सदस्य उसकी नीति का विरोध करते थे। उन्हें भय था कि शक्तिशाली होकर नवाब अंग्रेजों के नियंत्रण से मुक्त होने का प्रयास कर सकता है।

(7) 1760 ई० में अलीगौहर ने, जिसने शाहआलम की उपाधि धारण कर ली थी, पटना पर आक्रमण कर दिया। मीरकासिम उसका मुकाबला करने के लिए गया लेकिन उसके पहुँचने के पहले ही पटना फैक्ट्री के गवर्नर ने शाहआलम को पीछे लौटा दिया था। शाहआलम ने मीरकासिम को 'नवाब' की उपाधि दी और मीरकासिम ने बारह लाख रुपये भेंट किये। शाहआलम ने अंग्रेजों से दिल्ली सिंहासन प्राप्त करने के लिए सहायता माँगी। अंग्रेजों ने उसको सम्मान दिया, बिहार की सीमा तक उसे छोड़ने गये और समय आने पर उसे सहायता का आश्वासन दिया। इस घटना से अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बढ़ी और नवाब की प्रतिष्ठा में कमी अयी। वास्तव में कार्नक और आयरकूट ने नवाब के प्रति निन्दनीय व्यवहार किया।

मीरकासिम और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष–

सरकार और दत्ता लिखते हैं, मीरकासिम को "उचित मौका नहीं दिया गया।" उसका आर्थिक, सैनिक तथा प्रशासनिक संगठन का कार्य पूरा नहीं हो पाया था कि अंग्रेजों से उसका संघर्ष आरंभ हो गया। वे लिखते हैं, "यह आरंभ से ही संदेहजनक था कि क्या ब्रिटिश, प्रभावी प्रशासन स्थापित करने के लिए नवाब को आवश्यक शक्ति प्राप्त करने के लिए अवसर देंगे।" अंग्रेजों की नीति थी नवाब को दुर्बल रखने की, काउंसिल के सदस्य उसके विरोध में थे, अत: अनेक विषयों पर अंग्रेजों का नवाब से संघर्ष शुरु हो गया।

मीरकासिम ने मुर्शिदाबाद छोड़कर मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया। इसके अनेक कारण बताये गये हैं जैसे—बिहार में जमीदारों के विद्रोहों का दमन करने के लिए यह आवश्यक था। संभवत: नवाब को अपने

स्थायी निवास के लिए एक किलेबंद, सुरक्षित स्थान की आवश्यकता थी। मुंगेर का किला मजबूत था, नव को उम्मीद थी कि वह अंग्रेजों के नियंत्रण से आजाद होकर प्रशासन चला सकेगा। मुर्शिदाबाद भ्रष्टाचार त अव्यवस्था का केंन्द्र बन गया था। यह भी कहा गया है कि मीरकासिम की नवाब की गद्दी सुरक्षित नहीं थ काउंसिल के कई सदस्य उसके विरोध में थे। उसे भय था कि वे लोग कभी न कभी मीरजाफर को पुनः नव बना देंगे। कादाचित उसे आशा थी कि मुंगेर में रहकर वह नयी सेना का गठन कर सकेगा और अंत में अंग्रे को उखाड़ फेंकेगा।

1. **चुंगी का विवाद** सबसे प्रमुख था। कंपनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार के लिए 'दस्तक' प्रयोग द्वारा कर-मुक्त व्यापार कर रहे थे, जबकि शाही फरमान से केवल कंपनी को ही यह अधिकार दि गया था। उन्होंने तंबाकू और नमक पर कर-मुक्त एकाधिकार स्थापित कर लिया था। राज्य को राजस्व की ह हो रही थी। मीरकासिम ने अनेक बार वेनसिटार्ट से इसकी शिकायत की, किन्तु सब व्यर्थ रहा। अंत में नव को अंतिम साहसिक कदम उठाना पड़ा। उसने सारे आंतरिक कर (चुंगी) समाप्त कर दिये। डॉ० दत्ता लिख हैं- "उसने अपने राजस्व की तिलांजलि दे दी जिससे उसकी प्रजा अंग्रेजों के साथ बराबरी पर व्यापार क सके।" इससे अंग्रेज कर्मचारियों को अनुचित लाभ मिलना बंद हो गया और वे नवाब के शत्रु बन गये।

चुंगी के विवाद की समीक्षा समीचीन है क्योंकि यही तो युद्ध होने का तात्कालिक कारण था। कंपनी कर्मचारी चुंगी दिये बिना व्यापार कर रहे थे। आंतरिक व्यापार पर उन्होंने प्राय: पूर्ण एकाधिकार स्थापित क लिया था। भारतीय व्यापारी भी उनसे 'दस्तक' खरीदकर मुक्त व्यापार करने लगे। इससे नवाब की आय में भ कमी आ गयी थी।

दस्तक से जुड़ा हुआ कंपनी के कर्मचारियों (गुमाश्तों) का घोर अत्याचार था। वे बलात कम मूल्य वस्तुएँ खरीदते और अधिक मूल्य पर बेचते थे। जो विरोध करते थे, उनको वे निर्दयता से पीटते और बंदी ब लेते थे, इससे नवाब की सत्ता का अपमान होता था।

नवाब के बार-बार आग्रह करने पर वेनसिटार्ट सन् 1763 में मुंगेर गया। उसने अभी तक सभी कार्यों मीरकासिम का साथ दिया था और वह नवाब के प्रशासन में कंपनी द्वारा हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। उ नवाब से समझौता कर लिया जिसके अनुसार निश्चित किया गया कि (i) कंपनी के कर्मचारी आंतरिक व्याप पर 9% चुंगी देंगे और (ii) फौजदार गुमाश्तों का अत्याचार रोकने के लिए उन्हें दंडित करेंगे। यह भी बता दें भारतीय व्यापारियों को 25% चुंगी देनी पड़ती थी। स्पष्टत: यह समझौता कंपनी के कर्मचारियों के हित में थ काउंसिल ने इस समझौते को अस्वीकार कर दिया।

डाडवेल लिखता है कि इस समय यह समझा जाता था कि वेनसिटार्ट ने सात लाख रुपये नवाब से स्वरुप लेकर अंग्रेजों के अधिकारों को त्याग दिया था। इसीलिये काउंसिल ने समझौते को स्वीकार नहीं किया था।

(2) नवाब पर व्यापार अवरोध का आरोप—कंपनी के कर्मचारियों ने कम्पनी अधिकारियों शिकायत की कि नवाब के आदेश के कारण कारीगर और रैयत अंग्रेजों के लिए काम नहीं कर रहे थे। जब वास्तविकता यह थी कि कंपनी के कर्मचारियों के अत्याचारों तथा लूट के कारण कारीगर काम करने से म कर रहे थे। इन कारीगरों को भयाक्रांत करने के लिए इन कर्मचारियों ने नवाब के उन गुमाश्तों को बंदी बन आरंभ कर दिया जो कारीगरों की सुरक्षा करते थे।

(3) कंपनी के गुमाश्तों द्वारा लूट—नवाब ने अनेक बार कंपनी से शिकायत की कि उसके कर्मच जनता को लूट रहे थे। वे बलपूर्वक रैयत का माल कम दामों पर खरीदते थे और ऊँचे दामों पर अपना म उनको बलपूर्वक बेचते थे। इतना ही नहीं, भेंट के नाम पर वे रैयत का माल छीन लेते थे और कोड़ों से अ लोगों को मारते थे। वे नवाब के अधिकारियों की सत्ता को नहीं मानते थे।

(4) नवाब के प्रति संदेह—काउंसिल के सदस्यों को संदेह हो गया कि नवाब अपनी शक्ति को संगठित कर रहा था और वह अंग्रेजों के नियंत्रण से मुक्ति चाहता था। वे चाहते थे कि नवाब उनकी इच्छा के अुनसार कार्य करे क्योंकि उन्होंने ही उसे गद्दी पर बिठाया था।

अंग्रेजों से संघर्ष—इस प्रकार संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी। कलकत्ता काउंसिल ने अब नवाब से माँग रखी कि वह भारतीय व्यापारियों के माल पर चुंगी लगा दे। इसको नवाब ने अस्वीकार कर दिया। इस पर काउंसिल ने मीरजाफर को नवाब बनाने का निश्चय किया। पटना कोठी के गवर्नर एलिस ने आक्रमण करके पटना पर अधिकार करने का प्रयास किया जिसमें वह असफल रहा। इससे युद्ध आरंभ हो गया। अंग्रेजी सेना ने नवाब को युद्धों में पराजित किया। कंपनी ने मुंगेर पर अधिकार करके मीरजाफर को नवाब घोषित कर दिया। मीरकासिम पटना भाग गया। यहाँ से भागकर वह अवध के नवाब शुजाउद्दौला के पास शरण माँगने के लिए चला गया।

युद्ध आरंभ होते ही काउंसिल ने मीरकासिम को गद्दी से हटाने की घोषणा कर दी। मीरजाफर को फिर गद्दी पर बिठाया गया (जुलाई, 1763)। उसने काउंसिल की सभी शर्तें मान लीं। चुंगी फिर लगा दी गयी और अंग्रेजों को कर-मुक्त व्यापार का अधिकार मिल गया। उनको केवल नमक पर 2% चुंगी देनी पड़ती थी। मीरकासिम द्वारा चुंगी हटाने से अंग्रेजों की जो हानि हुई थी, उसकी पूर्ति करने का वायदा भी मीरजाफर ने किया।

इन घटनाओं से स्पष्ट हो गया कि नवाब को हटाने या गद्दी पर बिठाना अंग्रेजों की इच्छा पर निर्भर था और वे केवल एक दुर्बल और आज्ञाकारी कठपुतली नवाब चाहते थे।

बक्सर का युद्ध –1764 ई० (Battle of Buxar-1764 A.D.)

मीरकासिम ने नवाब की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न किये थे, उनके फलस्वरूप उसका अंग्रेजों से संघर्ष हुआ था। कई युद्धों में पराजित होकर मीरकासिम अवध के नवाब शुजाउद्दौला की शरण में चला गया। इस समय मुगल सम्राट शाहआलम नवाब शुजाउद्दौला का अतिथि था। इन तीनों ने मिलकर संयुक्त रुप से अंग्रेजों से युद्ध करने का निश्चय किया। फलस्वरूप 23 अक्टूबर, 1764 को बक्सर नामक स्थान पर युद्ध हुआ।

युद्ध के कारण—बक्सर के युद्ध के निम्नलिखित कारण थे—

(1) मीरकासिम और अंग्रेजों का संघर्ष—अंग्रेजों ने मीरकासिम को नवाब बनाया था। उन्हें आशा थी कि मीरकासिम उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करेगा और वे खुलकर बंगाल को लूट सकेंगे, किन्तु मीरकासिम अपनी स्वतंत्र सत्ता चाहता था। अत: अंग्रेजों ने उसकी नीतियों का विरोध किया, विशेष रूप से अपने निजी व्यापार में हस्तक्षेप का। उन्होंने मीरकासिम को कुछ सैनिक मुठभेड़ों के पश्चात् पराजित कर दिया और मीरजाफर को नवाब बना दिया। मीरकासिम नवाब का पद पुन: प्राप्त करना चाहता था। अत: उसने युद्ध करने का निर्णय लिया।

2. पटना हत्याकांड—मीरकासिम मुंगेर से भागकर पटना आया। यहाँ उसने क्रोध और आवेश में आकर 200 अंग्रेज बंदियों की हत्या करा दी। अंग्रेज इससे उत्तेजित हो गये और उन्होंने इसे 'पटना हत्याकांड' नाम दिया। इसका प्रतिशोध लेने के लिए अंग्रेज प्रतिबद्ध थे। अत: युद्ध आवश्यक हो गया था।

3. नवाब शुजा की नीति— युद्ध के लिए नवाब शुजाउद्दौला भी जिम्मेदार था। अवध के नवाबों की सदैव यह नीति रही थी कि पूरब की ओर विस्तार किया जाये, विशेष रूप से वे बिहार पर अधिकार करना चाहते थे। सरकार और दत्ता के अनुसार, "पिछले तीन दशकों से अवध के नवाब अपने प्रभाव में वृद्धि करने

के उद्देश्य से बंगाल की ओर गिद्ध दृष्टि लगाये हुए थे। इसी कारण शुजाउद्दौला द्वारा अपने एक बंधु शासक उसके सिंहासन पुन: प्राप्त करने में सहायता करना अपने व्यक्तिगत लाभ की भावना से अधिक था मीरकासिम ने नवाब शुजाउद्दौला को ग्यारह लाख रुपये प्रतिमाह उसकी सेना का व्यय देना स्वीकार कि इसमें शुजा के तीन उद्देश्य थे— (i) बिहार प्राप्त करना, (ii) मीरकासिम के पास दस करोड़ रुपये का कोष उसे प्राप्त करना, और (iii) मीरकासिम की गद्दी प्राप्त करने में सहायता करना।

4. मुगल सम्राट शाहअलाम का उद्देश्य— शाहआलम इस समय प्राणों के भय के कारण दिल्ली भाग आया था और इलाहाबाद में रुका था जहाँ मीरकासिम उससे मिला। मुगल सम्राट भी अंग्रेजों से नाराज क्योंकि उसने तीन अवसरों पर बंगाल और बिहार पर आधिपत्य जमाने का प्रयत्न किया था और तीनों ब अंग्रेजों ने उसे असफल कर दिया था। अत: वह भी अंग्रेज विरोधी संघ में सम्मिलित हो गया।

मित्रों में एकता का अभाव—मीरकासिम ने नवाब शुजाउद्दौला तथा सम्राट शाहआलम के सहयोग अंग्रेज विरोधी संघ बना लिया था। किन्तु इस संघ में एकता नहीं थीं। शुजा का उद्देदश्य बिहार और मीरकासि का कोष प्राप्त करना था। शाहआलम अंग्रेजों की सहायता से दिल्ली सिंहासन प्राप्त करना चाहता था। दोनों गुप्त रुप से अंग्रेजों से बात चला रहे थे। सम्राट चाहता था कि मीरजाफर दोबारा नवाब बनने पर 28 लाख भेंट दे। सम्राट मीरजाफर को नवाब स्वीकार करने को तैयार था। सम्राट ने अंग्रेजों को गुप्त रुप से सूचित कि कि वह शुजाउद्दौला का साथ छोड़ने तथा बंगाल अंग्रेजों को देने के लिए तैयार था बशर्ते अंग्रेज शुजाउद्दौला विरुद्ध उसकी सहायता करें और उसको आर्थिक सहायता दें। वह अंग्रेजों की सहायता से दिल्ली जाना चाह था। अत: प्रारंभ से ही यह संघ दुर्बल था और मीरकासिम का कोई भी पक्ष हृदय से समर्थन नहीं कर रहा जब सम्राट को 'नजर' और शुजाउद्दौला को बिहार मिलने की कोई आशा नहीं रही तो उन्होंने अंग्रेजों अल्टीमेटम दिया कि वे समस्त राजनीतिक कार्यवाहियों को बंद कर दें और केवल व्यापार तक अपने आप सीमित रखें। ऐसा न करने पर युद्ध की धमकी भी दी गयी।

बक्सर के युद्ध का महत्त्व (Importance of the Battle of Buxar)

बक्सर का युद्ध, प्लासी के युद्ध की अपेक्षा अधिक निर्णायक साबित हुआ। इसने **प्लासी के अधूरे क को पूरा कर दिया** और अंग्रेज कंपनी को एक पूर्ण प्रभुतासंपन्न शक्ति बना दिया। जेम्स स्टीफेन के अनुस भारत में अंग्रेजी राज्य का सूत्रधार प्लासी की अपेक्षा बक्सर को मानना चाहिए। रेमजे म्योर लिखता है, "बक युद्ध के अंत में बगाल पर कंपनी का शासन अंतिम रूप में जकड़ गया।"

सैनिक दृष्टि से भी बक्सर का युद्ध अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तथा निर्णायक था। प्लासी का युद्ध अंग्रेजो विश्वासघात करके जीता था। उसमें अंग्रेजों के केवल 65 और भारतीय पक्ष के 500 सैनिक काम आये बक्सर के युद्ध में 847 अंग्रेज तथा 2,000 भारतीय सैनिक मारे गये थे। दोनों पक्षों ने सैनिक तैयारी तथा ए पूरी शक्ति से लड़ा था। इस विजय से अंग्रेजों की भारत में सैनिक शक्ति और प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी

बक्सर युद्ध की विजय से बंगाल पर अंग्रेजों की पकड़ अधिक मजबूत हो गयी। मीरकासिम को गद्दी उतारकर उन्होंने दिखा दिया कि बंगाल के वास्तविक शासक वह स्वयं थे। भविष्य में संघर्ष से बचने के लि उन्होंने नवाब को पूरी तरह शक्तिहीन कर दिया।

संक्षेप में, बक्सर युद्ध के निम्नलिखित परिणाम थे—

(1) बंगाल में मीरजाफर ने अपनी नाममात्र की स्थिति को स्वीकार कर लिया।

(2) अवध का नवाब अंग्रेजों के पूर्ण नियंत्रण में आ गया।

(3) सम्राट शाहआलम पूरी तरह अंग्रेजी सहायता पर आश्रित हो गया।

(4) इससे प्लासी की कमी पूरी हो गयी। अब अंग्रेज बंगाल के हर प्रकार से स्वामी थे। प्लासी ने उनको वास्तविक सत्ता दी। बक्सर ने इस सत्ता को वैधानिक रूप प्रदान कर दिया। कंपनी अब एक राजनीतिक सत्ता में परिवर्तित हो गयी और उसकी सैनिक प्रतिष्ठा भी स्थापित हो गयी। उत्तर भारत में उनकी शक्ति को चुनौती देने वाली कोई शक्ति नहीं बची। इसके बाद अवध या बंगाल के नवाब ने उसकी सर्वोच्च सत्ता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया। बक्सर ने अंग्रेजों की भारत में सर्वोच्च सत्ता बनने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

इलाहाबाद की संधि, 12 अगस्त 1765—मीरकासिम से युद्ध का समाचार सुनकर कंपनी के डाइरेक्टर चिंतित हो गये और उन्होंने स्थिति को सँभालने तथा शांति की स्थापना के लिए क्लाइव को फिर से गवर्नर बनाकर बंगाल भेजा। जब वह कलकत्ता पहुँचा, युद्ध समाप्त हो चुका था। उसके सामने मुख्य समस्या मुख्य संधि करना था। शाहआलम इलाहाबाद में था। क्लाइव ने शुजाउद्दौला को वहीं बुला लिया। उसने अवध प्रांत शाहआलम को देना अस्वीकार कर दिया क्योंकि इससे बंगाल के लिए संकट उत्पन्न हो सकता था। अत: उसने अवध शुजाउद्दौला को वापस देने का निर्णय लिया और शाहआलम के साथ हुए पिछले समझौते को रद्द कर दिया। इस प्रकार उसने शाहआलम तथा शुजा से इलाहाबाद में निम्नलिखित शर्तों पर सन्धि की—

- मुगल सम्राट शाहआलम के साथ सन्धि
- अवध के नवाब शुजाउद्दौला के साथ सन्धि
- बंगाल के नवाब के साथ सन्धि

(1) शाहआलम के निवास के लिए इलाहाबाद का दुर्ग दिया गया।

(2) शाहआलम के व्यय के लिए कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले और बंगाल की आय से 26 लाख रुपया दिया गया।

(3) शाहआलम ने कंपनी को बंगाल की दीवानी अर्पित की।

(4) शुजाउद्दौला को कड़ा और इलाहाबाद के जिलों को छोड़कर पूरा अवध वापस दे दिया गया।

(5) शुजाउद्दौला का सामंत बलवंतसिंह कंपनी द्वारा अपने संरक्षण में ले लिया गया।

(6) शुजाउद्दौला ने अंग्रेजों को क्षतिपूर्ति के लिए 50 लाख रुपया देना स्वीकार किया।

(7) अंग्रेजों ने अवध के नवाब को सैनिक सहायता देना स्वीकार किया किंतु इस सेना पर होने वाला व्यय नवाब को देना था।

(8) कंपनी को अवध के प्रदेशों में बिना कर दिये व्यापार करने की अनुमति दी गयी। ये संधियाँ क्लाइव की कूटनीतिक योग्यता की प्रतीक थीं। दीवानी प्राप्त होने से बंगाल में कंपनी को वैधानिक स्थिति प्राप्त हो गयी। नवाब और सम्राट में फूट हो गयी। बनारस को अंग्रेजों के संरक्षण में लेने से नवाब का बंगाल पर आक्रमण करना कठिन हो गया। सम्राट के साथ उदारता का व्यवहार करके क्लाइव ने उसे कृतज्ञता के बंधन में आबद्ध कर लिया।

बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना (Establishment of Dual Government in Bengal)

क्लाइव ने अपनी दूसरे गवर्नरी के काल (1765–1767) में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जिस प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित की थी, उसे द्वैध शासन प्रणाली कहा जाता है। इस प्रणाली के अनुसार बंगाल प्रांत की जनता को अपार कष्ट उठाने पड़े। अंत में कंपनी के संचालकों के आदेश पर 1772 ई० में वारेन हेस्टिंग्स ने इस प्रणाली को समाप्त किया और संपूर्ण प्रशासन कंपनी ने अपने अधिकार में ले लिया।

द्वैध शासन की रूपरेखा— बंगाल प्रांत के सूबेदार को दो प्रकार के प्रशासनिक कार्य करने पड़ते थे। प्रथम, **दीवानी** कर्तव्य जिनके अंतर्गत भूराजस्व संग्रह तथा न्याय संबंधी कार्य आते थे। द्वितीय, **निजामत** के

कर्तव्य जिनके अंतर्गत सैनिक कार्य तथा फौजदारी अपराधों से संबंधित न्याय प्रणाली के कार्य थे। मुग़ प्रशासन में निजामत सूबेदार के तथा दीवानी दीवान के कर्तव्य होते थे, किन्तु जब सूबेदार स्वतंत्र हो गये त उन्हें दोनों प्रकार के अधिकार मिल गये।

कंपनी ने अपना अधिकार स्थापित करने के लिए पहले तो प्रशासनिक शक्ति अपने हाथों में ली। फरव 1765 ई० में जब नवाब मीरजाफर की मृत्यु हुई, तब मीरजाफर के पुत्र नज्मुद्दौला को अंग्रेजों ने गद्दी बिठाया और उसको एक संधि करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार उसने प्रशासन का पूरा प्रबंध नायब सूबेदार हाथों में छोड़ दिया जिसकी नियुक्ति अंग्रेजों को करनी थी। उसे शांति, व्यवस्था आदि पुलिस कार्य करने जिसके लिए अंग्रेजों ने नवाब को रु० 53 लाख प्रतिवर्ष देना निश्चित किया। नवाब क्योंकि अल्पवयस्क इसलिए अंग्रेजों ने मुहम्मद रजाखाँ को नायब नाजिम नियुक्त कर दिया। इस प्रकार निजामत के अधिकार कंप को अप्रत्यक्ष रुप से प्राप्त हो गये, यद्यपि प्रत्यक्ष रुप से ये नवाब के अधीन थे।

इलाहाबाद की संधि के अंतर्गत क्लाइव ने मुगल सम्राट शाहआलम से बंगाल प्रांत के दीवानी अधिक भी हस्तगत कर लिए। इस प्रकार कंपनी को अपने कर्मचारियों द्वारा लगान वसूल करने का अधिकार भी ि गया। डॉ० ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं, "शाहआलम सैद्धांतिक और वैधानिक दृष्टि से सम्राट था जिससे कंपनी इस संधि को वैधता का स्वरुप प्राप्त हो गया।" इस प्रकार निजामत और दीवानी के अधिकारों को प्राप्त कर बंगाल में कम्पनी की शक्ति सर्वोच्च हो गयी थी। फिर भी, उसने नाममात्र की सत्ता वाले नबाव को बनाये रख इस प्रकार बंगाल में सत्ता के दो केन्द्र हो गये-एक वास्तविक और दूसरा काल्पनिक। कंपनी के पास निज तथा दीवानी दोनों प्रकार के अधिकार थे लेकिन इनको उसने भारतीय कर्मचारियों द्वारा क्रियान्वित कराय वास्तविक सत्ता कंपनी के पास रही और उत्तरदायित्व भारतीय कर्मचारियों का था। नवाब नाममात्र के लि नाजिम था। वास्तविक निजामत के अधिकार कंपनी के पास थे। इस द्विविधापूर्ण प्रणली को द्वैध शासन क जाता है। संक्षेप में, इस प्राणाली के अंतर्गत कर्तव्य और उत्तरदायित्व को पृथक कर दिया गया था लेकिन कंप लगान वसूली का काम अपने कर्मचारियों से नहीं कराना चाहती थी। इसलिए कंपनी ने दो दीवान नियु किये-मुहम्मद रजाखाँ को बंगाल के लिए और राजा शिताबराय को बिहार के लिए। इस प्रकार मुहम्मद रजाख को नायब नाजिम के साथ साथ बंगाल का दीवान भी नियुक्त किया गया।

आंग्ल-मैसूर संबंध—मैसूर एक शक्ति राज्य था जिसे 18 वीं शताब्दी में महत्वपूर्ण बनाया हैदरअल ने। दक्षिण में फैली अव्यवस्था का लाभ उठाकर हैदरअली ने 1761 में नन्दराज की सत्ता समाप्त करके मैस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। हैदराबाद के निजाम की अयोग्यता और पानीपत के तृतीय युद्ध मराठों की शक्ति को लगे आघात का लाभ उठाकर उसने बड़ी तेजी से अपने राज्य का विस्तार कर दिय हैदरअली के शीघ्र उदय एवं प्रसार ने मराठों, निजाम एवं अंग्रेजों तीनों को उसकी ओर से आशंकित कर दिय इसलिये मराठों, निजाम और अंग्रेजों ने हैदरअली के विरूद्ध एक गुट बना लिया।

प्रथम आंग्ल मैसूर युद्ध में हैदरअली वीरता से लड़ा और 1769 में मद्रास के निकट तक पहुँच ग था। इस स्थिति में अंग्रेज संधि के लिये बाध्य हुए। अप्रैल 1769 में दोनों के बीच संधि हुई जिसके द्वारा दोनों एक-दूसरे के जीते प्रदेश और युद्धबंदी वापिस कर दिये। प्रथम आंग्ल मैसूर युद्ध यद्यपि अनिर्णीत रहा पर उसने हैदरअली की प्रतिष्ठा में वृद्धि की।

द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध—उपर्युक्त संधि दोनों के बीच अधिक समय तक नहीं चल सकी। मराठे ए निजाम अंग्रेजों से प्रसन्न नहीं थे और भारत के बाहर भी इंग्लैण्ड के विरुद्ध कई ओर से युद्ध की सम्भावना बढ़ रही थी। जुलाई 1780 में हैदरअली एक विशाल सेना लेकर आगे बढ़ा और एक अंग्रेज सैन्य दल क परास्त किया। अक्टूबर में वह अर्काट पर भी अधिकार करने में सफल रहा। सर आयरकूट ने हैदर अली क पोर्टो नावों में बुरी तरह परास्त किया। फ्रांसीसियों ने भी हैदरअली की मदद की, परन्तु कोई परिणाम न

निकला। इसी बीच दिसम्बर 1782 ई० में हैदरअली की मृत्यु हो गई। यद्यपि हैदरअली के पुत्र टीपू सुल्तान ने युद्ध जारी रक्खा, परन्तु मार्च 1784 में, अंग्रेजों ने टीपू से मंगलौर की संधि कर ली। इस संधि के द्वारा दोनों पक्षों ने एक, दूसरे के जीते हुए प्रदेश लौटा दिए तथा बंदियों को मुक्त कर दिया। इस प्रकार द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध समाप्त हुआ।

तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध—अंग्रेजों और टीपू के बीच परस्पर असंदेह और अविश्वास था तथा मंगलौर की संधि एक 'खोखली विराम संधि' थी क्योंकि दोनों ही दक्षिण में अपनी सर्वोच्चता के दावों को तय करने के लिये अत्यधिक लालायित थे। इस समय यूरोप में फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच संघर्ष की सम्भावना थी जिसका लाभ टीपू उठाना चाहता था। टीपू ने फ्रांस से सहायता की मांग की और अंग्रेजों ने निजाम और मराठों से पृथक-पृथक संधिया करके उन्हें टीपू के विरूद्ध अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार टीपू और अंग्रेजों के बीच युद्ध की परिस्थितियां बनने लगी। टीपू के द्वारा 19 दिसम्बर 1789 को ट्रावनकोर पर किया गया आक्रमण अंग्रेजों के साथ युद्ध का तात्कालिक कारण बना

1790 में तृतीय मैसूर युद्ध प्रारम्भ हो गया। यद्यपि टीपू बड़ी वीरता से लड़ता रहा परन्तु टीपू की समझ में शीघ्र आ गया कि और अधिक प्रतिरोध सम्भव नहीं है तथा परिस्थितियां भी उसके प्रतिकूल है। इसलिये उसने 1792 में अंग्रेजों से श्री रंगपट्टम की संधि कर ली। इस संधि के परिणामस्वरूप टीपू को अपने राज्य के एक बहुत बड़े भाग से हाथ धोनों पड़ा और चौथा युद्ध अंग्रेजों और टीपू के बीच निर्णायक युद्ध होना बाकी था।

चतुर्थ आंग्ल मैसूर युद्ध—तीन आंग्ल-मैसूर युद्धों के बाद भी अंग्रेजों और टीपू के बीच निर्णायक युद्ध होना बाकी था। टीपू ने अपनी सेना भी सशक्त कर ली और अपनी राजधानी की किलेबन्दियों में भी वृद्धि कर ली। उसने फ्रांस से भी सहायता के प्रयास शुरू कर दिये। मार्च 1799 में अंग्रेजों ने टीपू के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

चतुर्थ मैसूर युद्ध संक्षिप्त परन्तु निर्णायक था। अंग्रेजी सेनायें टीपू की राजधानी श्रीरंगपट्टम जा पहुँची, परन्तु फिर भी टीपू ने गवर्नर जनरल वेलेजली के द्वारा रक्खी गई अपमानजनक शर्तों को मानने से इंकार कर दिया। अपनी राजधानी की वीरतापूर्वक रक्षा करता हुआ वह 4 मई 1799 को मारा गया। अंग्रेजों, निजाम और मराठों ने मैसूर के प्रदेशों को आपस में बांट लिया तथा बचा-खुचा मैसूर पुराने हिन्दू वंश के एक अवयस्क लड़के को प्रदान कर दिया गया। 1831 में कुशासन के आधार पर मैसूर को कम्पनी के शासन में ले लिया गया, यद्यपि बाद में 1881 में पुराने राजपरिवार को मैसूर में सत्तारूढ़ कर दिया गया।

आंग्ल-मराठा युद्ध (1775–1818 ई०) [Anglo-Maratha Wars (1775–1818 A.D.)]

प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775–1782 ई०) [First Anglo-Maratha War (1775–1782 A.D.)]

कारण— प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध 1775 ई० से 1782 ई० तक (सात वर्ष पर्यन्त) हुआ था। इस युद्ध के निम्नलिखित कारण थे—

(1) पेशवा नारायणराव की हत्या के उपरान्त राघोवा पेशवा बना। क्योंकि इस हत्या में राघोवा का हाथ था, इसलिये उसे पेशवा पद से हटा दिया गया। राघोवा ने अंग्रेजों के साथ सूरत की संधि करके उनकी सहायता से फिर से पेशवा पद प्राप्त करने का निश्चय किया।

(2) बंबई सरकार सालसती, बेसीन तथा अन्य टापूओं को प्राप्त करके बंबई की स्थिति दृढ़ करना चाहती थी, अत: उसने राघोबा को सहायता देने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

(3) युद्ध के लिए मोस्टिन की नीति भी उत्तरदायी थी जिसने राघोबा और बंबई की सरकार को प्रोत्साहन देकर सूरत की संधि करायी थी।

(4) नाना फड़नवीस की राघोबा के प्रति कठोर नीति भी युद्ध के लिए उत्तरादायी थी जिससे राघो अंग्रेजों की शरण लेने को मजबूर हो गया।

युद्ध की घटनाएँ— राघोबा की सहायता हेतु बंबई सरकार ने कर्नल कीटिंग के नेतृत्व में सेना पूना विरुद्ध भेजी। राघोबा तथा कीटिंग की सम्मिलित सेना ने पूना को, जिसका सेनापति हरिपंत फड़के था, आरा नामक स्थान पर पराजित कर दिया। इसके उपरांत संयुक्त सेना ने सालसती पर अधिकार कर लिया। पू दरबार राघोबा से बहुत क्रोधित था। मराठों की दृष्टि में राघोबा ने मराठा स्वतंत्रता को बेच दिया था और अंग्रेज को उनके घर में 'आग लगाने का अवसर' प्राप्त हो गया था। आरास के युद्ध के पश्चात् गुजरात का मरा शासक फतेहसिंह गायकवाड़ अंग्रेजों तथा राघोबा से मिल गया। मराठों के गृह-युद्ध का लाभ उठाकर हैदरअ ने कर्नाटक पर अधिकार कर लिया। इस समय मराठे संकटग्रस्त थे, लेकिन अंग्रेजों में मतभेद हो जाने से उ सँभलने का अवसर मिल गया।

पुरंदर की संधि, 1776— कलकत्ता सरकार ने बंबई सरकार की युद्ध नीति का विरोध किया। कंप की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी, अत: वह युद्ध से बचना चाहती थी। वारेन हेस्टिंग्स इससे भी नाराज था कि बंबई सरकार ने बिना उससे सलाह किये राघोबा से संधि कर ली थी। रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार बंब सरकार को उसकी स्वीकृति लेनी चाहिए थी। हेस्टिंग्स पेशवा से संधि करने के पक्ष मे था। अत: उसने बंब सरकार को युद्ध बंद करने का आदेश दिया। लेकिन गवर्नर हार्नबी ने उसके आदेशों का पालन नहीं किय हेस्टिंग्स ने पूना दरबार से वार्ता करने के लिए विशेष दूत अपटन को भेजा। नाना भी संधि के पक्ष में था, अ दोनों पक्षों के मध्य 1 मार्च, 1776 ई० को पुरंदर की संधि हो गयी। इस संधि की निम्नलिखित शर्तें थीं——

(1) सालसती अंग्रेजों के अधिकार में बना रहेगा। भड़ौच जिले की आय का कुछ भाग अंग्रेजों को मिलेगा।

(2) पूना सरकार ने अंग्रेजों को 12 लाख रुपया युद्ध क्षति के रुप में देना स्वीकार किया।

(3) अंग्रेज राघोबा की कोई सहायता नहीं करेंगे।

(4) राघोबा शासन के कार्य से पूर्णरुप से अलग हो जायेगा। पेशवा की सरकार राघोबा को 25 हज रुपया प्रतिमाह पेंशन देगी।

सालबाई की संधि (17 मई, 1782)— हेस्टिंग्स ने पहले मुधोजी भोंसले से संधिवार्ता आरंभ व इसके उपरान्त हेस्टिंग्स ने महादजी सिंधिया से संधि वार्ता की। हेस्टिंग्स जानता था कि महादजी नाना पर दब डाल सकता था। महादजी संकट में था। यद्यपि उसने अंग्रेज सेनापति कामक को पराजित कर दिया था, कि इससे उसकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। कर्नल म्योर उसकी सहायता के लिए आ गया था। सिंधिया मालवा उन प्रदेशों को वापस चाहता था जिनको अंग्रेजों ने जीत लिया था। इसके अतिरिक्त वह दिल्ली में मुगल सम्र का रीजेंट बनना चाहता था। अत: वह भी अंग्रेजों से संधि करने के लिए उत्सुक था। इस वातावरण में सं वार्ता प्रारंभ हुई। सालसती पर प्रमुख विवाद था। अंत में माहदजी ने सालसती की माँग छोड़ दी और हेस्टिंग्ज आश्वासन दिया कि वह उसके रीजेंट बनने का विरोध नहीं करेगा।

संधि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

(1) सालसती के अतिरिक्त समस्त जीते हुए क्षेत्र अंग्रेजों ने मराठों को वापस कर दिये।

(2) अंग्रेजों ने फतेहसिंह गायकवाड़ के साथ हुई संधि को भंग कर दिया जिसके फलस्वरुप वह पु पेशवा की अधीनता में आ गया।

(3) अंग्रेज राघोबा का समर्थन नहीं करेंगे किन्तु पूना दरबार उसे 25,000 रु० मासिक पेंशन देग

(4) हैदरअली छ: मास के अंदर विजित प्रदेशों को छोड़ देगा। ऐसा न करने पर पेशवा अंग्रेजों क सहायता करेगा।

(5) पेशवा के राज्य में अंग्रेजों को पूर्व के समान सुविधाएँ मिलती रहेंगी। पेशवा किसी अन्य यूरोपियन कम्पनी से सहायता नहीं लेगा।

(6) संधि का पालन करने का उत्तरदायित्व महादजी सिंधिया का होगा।

एक अन्य संधि के द्वारा भड़ौंच सिंधिया को दे दिया गया।

संधि का महत्त्व— नाना फड़नवीस इस संधि से संतुष्ट नहीं था। दिसंबर, 1782 ई० में हैदरअली की मृत्यु के उपरान्त उसने संधि पर हस्ताक्षर किये थे। हेस्टिंग्स ने इसे "आपत्तिकाल की सफल शांति वार्ता" नाम दिया था। यह युद्ध अंग्रेजों ने अपनी महत्त्वाकांक्षा के कारण आरंभ किया था और उन्हें ज्ञात हो गया था कि मराठे शक्तिशाली थे और वे मराठों के विरुद्ध सफल नहीं हो सकते थे। इस संधि से महादजी की प्रतिष्ठा और शक्ति में वृद्धि हुई।

सरदेसाई के अनुसार सालबाई की संधि का महत्त्व इस प्रकार था—"यह संधि जो लगभग एक वर्ष से बन रही थी, भारतीय इतिहास में बड़ी महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेजों ने मराठों के विरुद्ध अपनी शक्ति की परीक्षा की और ऐसी हार खाई कि उन्हें अपनी स्थिति सँभालना कठिन हो गया। नाना महादजी के इस निकृष्ट फायदे (संधि) की त्रुटियाँ और न्यूनताएँ बताता रहा और इस पर जोर देता रहा कि पुरन्दर और बडगाँव की संधियों पर पूरा अमल होना चाहिए। किंतु महादजी के पास और कोई चारा नहीं था और यह बात मानने योग्य है कि उसने इस सौदे में अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा की।"

हेस्टिंग्स की निगाह में महादजी उत्तर भारत में सबसे बड़ी शक्ति था। अत: उसकी ओर उसने मित्रता का हाथ बढ़ाया।

नाना फड़नवीस इस संधि से असंतुष्ट हुआ और उसने इसमें परिवर्तन की माँग की। अंत में सन् 1782 में हैदरअली की मृत्यु के पश्चात उसने संधि को मान लिया।

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1803-1805 ई०)
[Second Anglo-Maratha War (1803–1805 A.D.)]

सालबाई की संधि, 1782 ई० के पश्चात् अंग्रेजों तथा मराठों के बीच बीस वर्ष तक शांति बनी रही। इस के दो कारण थे-प्रथम, इस दौरान अंग्रेज अनेक मामलों में व्यस्त रहे। कंपनी के डाइरेक्टर तथा बंगाल के गवर्नर जनरल सामान्यत: युद्ध में नहीं फँसना चाहते थे। द्वितीय, महादजी सिंधिया ने उत्तर भारत का अधिकांश क्षेत्र अपने नेतृत्व में संगठित कर लिया था। अंग्रेज उससे युद्ध नहीं करना चाहते थे। महादजी भी अंग्रेजों से युद्ध नहीं चाहता था क्योंकि उसे उनकी शक्ति का अनुमान हो गया था। उसने मराठा शक्ति के संगठन पर अधिक ध्यान दिया किन्तु 1794 ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात मराठों के बीच विघटनकारी प्रवृत्ति शक्तिशाली हो गयीं। दक्षिण भारत में नाना फड़नवीस ने मराठा शक्ति को संगठित करने का कोई ध्यान नहीं दिया। उसने पेशवा पद को इतना दुर्बल बना दिया कि वह संकट के समय मराठा राज्य की रक्षा करने में सक्षम नहीं रहा। 1796 ई० में पेशवा माधवराव नारायण की मृत्यु हो गयी।

नाना नहीं चाहता था कि बाजीराव पेशवा बने क्योंकि उसने बाजीराव के पिता रघुनाथराव को पेशवा पद से हटवाया था। नाना ने बाजीराव को कारागार में रखा था। अत: उसे भय था कि बाजीराव उससे बदला लेगा। उसने बाजीराव से वार्ता की और बाजीराव ने उसे आश्वस्त करने का प्रयास भी किया, लेकिन नाना जानता था कि बाजीराव धूर्त है और उसके आश्वासनों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। लेकिन नाना के सभी कुचक्र और षड्यंत्र असफल हुए और बाजीराव दौलतराव सिंधिया की सहायता से पेशवा बन गया। इस प्रकार पूना सरकार पर नाना के स्थान पर सिंधिया का प्रभाव हो गया। नाना के अंतिम दिन भय और आतंक में बीते।

बाजीराव अपने पिता रघुनाथराव के समान व्यभिचारी था और जनता में उसका कोई सम्मान नहीं था। वास्त मराठों के लिए बाजीराव एक अमंगल ग्रह सिद्ध हुआ।

मराठों की आंतरिक कलह— दौलतराव सिंधिया का प्रभाव भी मराठों के लिए विनाशकारी हुआ के प्रभाव के कारण बाजीराव द्वितीय पेशवा बना था। एक अन्य मामले में भी सिंधिया की दोषपूर्ण नी मराठा राज्य में संकट पैदा हो गया। सन् 1797 में तुकोजी होल्कर की मृत्यु हो गयी। उसका ज्येष्ठ काशीराव आधा पागल था। सिंधिया ने उसे पेशवा से उत्तराधिकार दिलवा दिया। काशीराव के अन्य मल्हारराव द्वितीय, बिठोजी तथा यशवंतराव ने इसका विरोध किया क्योंकि उन्हें शंका थी कि काशीराव रि की अधीनता स्वीकार कर लेगा। युद्ध में मल्हारराव मारा गया और उसका अल्पवयस्क पुत्र सिंधिया का बं गया। यशवंतराव नागपुर चला गया। बिठोजी ने महाराष्ट्र में विद्रोह कर दिया। यशवंतराव ने छापामार आरंभ कर दिया और वह पेशवा तथा सिंधिया के राज्यों में लूटमार मचाने लगा। उसने फ्रांसीसी अफस सेना में रख लिया और उनसे अपनी सेना को प्रशिक्षित कराया। ऐसे अंतर्कलह गृहयुद्ध की स्थिति मे फड़नवीस की मृत्यु हो गयी।

नाना फड़नवीस की मृत्यु की सूचना वेलेजली को देते हुए रेजीडेंट पामर ने लिखा, "नाना के साथ सरकार की सारी बुद्धि और उदारता समाप्त हो गयी।"

पेशवा का अंग्रेजों की शरण में जाना— नाना फड़नवीस की मृत्यु के उपरान्त सिंधिया और होल्क समझौता कठिन हो गया। नाना समझौता करा सकता था। दौलतराव होल्कर राज्य पर अधिकार जमाने दे दृढ़ प्रतिज्ञा था। वह नवयुवक था। उसमें दूरदर्शिता तथा उदारता का अभाव था। उस पर सर्जाराव का प्रभा बाजीराव भी पाखंडी, स्वार्थी तथा दुश्चरित्र था। अत: दौलतराव सिंधिया तथा बाजीराव द्वितीय की नीति मराठा संघ का विघटन तथा पतन शुरु हुआ। यशवंत राव बहादुर किंतु जोशीला और अहंकारी था। ऐसी में किसी प्रकार के समझौते की संभावना नहीं थी।

बेसीन की संधि— पेशवा बाजीराव ने काफी समय तक सहायक संधि को मानने से असहमति थी किन्तु इस असहाय अवस्था में अब कोई दूसरा विकल्प उसके पास नहीं था। उसने अंग्रेजों से शरण रक्षा की प्रार्थना की। वेलेजली तो इस अवसर की तलाश में था। उसने इसका स्वागत किया जिसके फल बेसीन की संधि हुई। इस संधि के अनुसार—

(1) एक सहायक सेना पेशवा के राज्य के भीतर रखी जायेगी जिसमें कम-से-कम 6,000 सैनिक

(2) इस सेना के खर्च के लिए पेशवा 26 लाख रुपये की आय वाले विभिन्न जिले अंग्रेजों को देगा

(3) सेना के लिए जिस सामग्री की आवश्यकता होगी, उसके आयात पर चुंगी या कोई अन्य ट लिया जायेगा।

(4) पेशवा किसी अन्य राज्य से अंग्रेजों की अनुमति के बिना संधि अथवा युद्ध नहीं करेगा।

(5) पेशवा अंग्रेजों की अनुमति के बिना किसी यूरोपियन को अपनी सेवा में नहीं रखेगा।

(6) पेशवा के जो विवाद निजाम या गायकवाड़ से होंगे, उनमें वह अंग्रेजों की मध्यस्थता स्वीकार क

(7) पेशवा ने सूरत पर अपना अधिकार छोड़ दिया।

संधि के महत्त्व के बारे में डीन हटन ने लिखा है, "यह निर्विवाद रुप से ऐसा कदम था जिसने उ को बदल दिया जिस पर हम लोग पश्चिमी भारत पर खड़े था। इसने एक ही क्षण में अंग्रेजी उत्तरदायि तिगुना कर दिया। इससे मराठा संघ औपचारिक रुप से अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गया।" ओवेन लिर "इस संधि ने अपने प्रत्यक्ष और परोक्ष कार्यों द्वारा कंपनी को भारत का साम्राज्य दे दिया।" मराठों के लि संधि एक घोर अपमान थी। बाजीराव ने मराठों की स्वतन्त्रता का सौदा किया और अंग्रेजों की दासता स्व कर ली थी, अत: अंग्रेजों तथा मराठों के मध्य युद्ध अनिवार्य हो गया।

कार्नवालिस की शांति नीति (Cornwallis' Peace Policy)

1790 ई० में मराठों से संधि करने के कारण कार्नवालिस मराठों में लोकप्रिय हो गया था। कार्नवालिस ने मराठों से शांति स्थापना को प्राथमिकता दी क्योंकि स्थिति बिगड़ती जा रही थी। दुर्भाग्य से 5 अक्टूबर, 1805 ई० को गाजीपुर में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके उत्तराधिकारी जार्ज बार्लो ने उसके द्वारा बनाई योजना के अनुसार होल्कर और सिंधिया से संधियाँ कर ली।

सिंधिया से नवीन संधि—21 नवंबर, 1805 ई० को सिंधिया से मुस्तफापुर नामक स्थान पर नवीन संधि हुई, इस सन्धि के अनुसार—

(1) अंग्रेजों ने ग्वालियर और गोहद के किले सिंधिया को लौटा दिये।

(2) अंग्रेजों ने राजस्थान के राजाओं पर से अपना संरक्षण हटा लिया।

(3) चंबल नदी को सीमा मान लिया गया। इसके उत्तर में सिंधिया ने अपना स्वामित्व छोड़ दिया और इसके दक्षिण में अंग्रेजों का कोई अधिकार नहीं रहा।

(4) कंपनी ने जयपुर, जोधपुर तथा उदयपुर को सिंधिया का प्रभाव क्षेत्र मान लिया।

होल्कर के साथ संधि— 24 दिसंबर, 1805 ई० को होल्कर के साथ राजघाट नामक स्थान पर संधि की गयी। इस संधि की निम्नांकित शर्तें थी—

(1) होल्कर ने चंबल नदी के उत्तर में (गंगा-यमुना दोआब में) अपने सभी अधिकार छोड़ दिये।

(2) होल्कर ने बुदेलखंड तथा पूना पर भी अपना स्वामित्व त्याग दिया।

(3) होल्कर को चंबल नदी के दक्षिण में उसका राज्य वापस मिल गया।

(4) होल्कर ने माना कि वह अंग्रेजों के अतिरिक्त किसी यूरोपियन को अपनी सेना में नहीं रखेगा।

(5) अंग्रेजों ने रामपुरा तथा टोंक पर अपना अधिकार त्याग कर उन्हें होल्कर को वापस कर दिया।

(6) अंग्रेजों ने माना कि वे होल्कर के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

एडवर्ड्स ने इस नीति का कटु आलोचना की है। वह लिखते हैं कि "1805 ई० में मराठों के साथ की गयी संधि दुर्भाग्य से दुर्बलता से पूर्ण थी और अंतत: तेरह वर्ष बाद हेस्टिंग्स को वेलेजली के उस कार्य को पूरा करना पड़ा जो इंडिया हाउस के नेताओं की साहसहीनता के कारण पूरा नहीं किया जा सका था।"

तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817–1818 ई०)
[Third Anglo-Maratha War (1817-1818 A.D.)]

वेलेजली के वापस चले जाने के पश्चात् अंग्रेजों ने अग्रगामी तथा साम्राज्यवादी नीति का परित्याग कर दिया। कार्नवालिस, जार्ज बार्लो और लार्ड मिंटो हस्तक्षेप न करने की नीति पर चले थे। 1813 ई० में लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल नियुक्त हो कर भारत आया। उसने साम्राज्य विस्तार की नीति अपनायी जिसके परिणामस्वरुप तीसरा आंग्ल-मराठा युद्ध अवश्यभावी हुआ और मराठा शक्ति अंतिम रुप से बिखर गयी।

मराठों की स्थिति— मराठों ने इस मध्य काल का सदुपयोग करके अपनी शक्ति को संगठित करने का कोई प्रयास नहीं किया। मराठा संघ रसातल में पहुँच चुका था और पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और शत्रुता के कारण वे इस पर भी सहयोग करने को तत्पर नहीं थे। सरकार और दत्त लिखते हैं, "किसी शक्ति का विकास होने के लिए आंतरिक बल का होना आवश्यक है। चूँकि 19 वी शताब्दी के आरंभ में मराठों में कोई वास्तविक शक्ति नहीं थी, इसलिए वे तटस्थता की ब्रिटिश नीति का लाभ नहीं उठा सके। तेजी से वे पतन की ओर बढ़ते गये।"

मराठा राजनीति—होल्कर राज्य आंतरिक कलह से नष्ट भ्रष्ट हो रहा था। 1811 ई० में जसव पागल होकर चल बसा। उत्तराधिकार के विवाद के कारण होल्कर राज्य में अराजकता फैल गयी। सिंधि राज्य की दशा और भी खराब थी, लेकिन अंग्रेजों को अब भी उसकी सैनिक शक्ति से ईर्ष्या थी। भोंस राज्य में दुर्बलता और अशांति फैली थी। मराठे और पिंडारी उसे परेशान कर रहे थे। इस स्थिति से जाहिर वे अंग्रेज-विरोधी मोर्चा नहीं बना सकते थे। लेकिन 1804–1805 ई० की पराजयों से पेशवा, सि होल्कर और भोंसले सभी आहत थे और अंग्रेजों के विरुद्ध व्यापक रूप से रोष फैला हुआ था। वे कि समय अंग्रेजों से बदला ले सकते थे। पेशवा को बेसीन की संधि पर पश्चात्ताप था और वह पुनः मराठा स नेतृत्व प्राप्त करना चाहता था। मराठा सरदार भी उस पर स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए दबाव डाल रहे अपनी स्वामिभक्ति प्रकट कर रहे थे। आरंभ में पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेज रेजीडेंट एलफिंस सहयोग से अपनी शक्ति गठित करने का प्रयास किया किन्तु इसमें असफल रहा। उसके उपरान्त उसने ई०में सिंधिया, होल्कर और भोंसले से मिलकर मराठा संघ को पुनर्जीवित करने का निर्णय लिया। 18 तक पेशवा मराठा संघ को संगठित करके अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया।

हेस्टिंग्स की नीति—इस समय परिस्थितियाँ हेस्टिंग्स की विस्तारवादी नीति के पूर्णतया अनुकू नेपोलियन को बंदी बनाकर सेंट हेलीना द्वीप भेज दिया गया था। सिक्ख राजा रणजीतसिंह से स्थायी मि जाने से उत्तर-पश्चिम से आक्रमण का भय जाता रहा था। सतलज के पूर्व में कोई ऐसा राज्य नहीं था जो से टक्कर ले सके। हेस्टिंग्स ने मराठों पर कठोर नियंत्रण स्थापित करने का निर्णय लिया क्योंकि मराठे स होने का प्रयास कर रहे थे। पिंडारियों की शक्ति बढ़ती जा रही थी। उनको नष्ट करने के लिए मराठों की को भी नष्ट करना प्रथम आवश्यकता थी। मराठों को दुर्बल करने के लिए उसने पहले पिंडारियों की शक्ति नष्ट लिया, इसके साथ ही तीसरा आंग्ल-मराठा युद्ध आरंभ हो गया।

तृतीय मराठा युद्ध के कारण (Reasons for the Third Maratha War)

तीसरे आंग्ल-मराठा युद्ध के निम्नलिखित कारण थे—

(1) पेशवा का असंतोष— पेशवा बाजीराव प्रारंभ से ही अंग्रेजों से नाराज था। उसने विवश बेसीन की संधि की थी। आंतरिक प्रशासन में अंग्रेजों के हस्तक्षेप से भी वह नाराज हो गया था। अंग्रेजों ने अनेक जागीरदारों को उसके नियंत्रण से आजाद कर दिया था। अतः पेशवा अंग्रेजों से मुक्ति पाने के सैनिक संगठन करने में लग गया। उसने सिंधिया और होल्कर को भी अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए तैय लिया। अंग्रेज उस पर कठोर नियंत्रण रखना चाहते थे क्योंकि उन्हें पेशवा की समस्त गतिविधियों का ज्ञ अतः ऐसी स्थिति में युद्ध अनिवार्य हो गया था।

(2) पिंडारियों की समस्या— पिंडारी एक लुटेरी जाति थी। ये लोग मराठा सेना के साथ लूटमा के लिए चलते थे। सिंधिया और होल्कर इनके आश्रयदाता थे। इनके दल शिंदेशाही और होल्कर शाही व थे। मराठों की संगठित सेना के छिन्न-भिन्न हो जाने के फलस्वरुप अनेक मराठा सैनिक पिंडारियों में सम्मि हो गये थे। इन पिंडारियों ने 1812 ई० में बुंदेलखंड, 1815 ई० में हैदराबाद और 1816 ई० में उत्तरी में भयंकर लूटपाट मचाई थी। अंग्रेज सोचते थे कि मराठों के उकसाने पर ये लोग लूटमार करते थे। इस के कारण अंग्रेजों तथा मराठों में संघर्ष आवश्यम्भावी हो गया।

(3) नागपुर के भोंसले का असंतोष— हेस्टिंग्स ने मराठा संघ के सरदारों तथा पेशवा की शक्ति करने की नीति अपनायी ताकि अंग्रेज उन पर कठोर नियंत्रण स्थापित कर सकें। इस समय नागपुर म अंतईद चल रहा था जिससे हेस्टिंग्ज को अवसर मिल गया। रघुजी की 1816 ई० में मृत्यु हो उत्तराधिकार के लिए उसके पुत्र परसोजी भोंसले और उसके भतीजे अप्पा साहब में प्रतिस्पर्धा हुई। हेस्टि

अप्पा साहब का समर्थन किया और उससे सहायक संधि पर हस्ताक्षर करा लिए। इससे नागपुर राज्य की भी स्वतंत्रता समाप्त हो गयी।

नागपुर की संधि द्वारा अंग्रेजों को नागपुर में सेना रखने का अधिकार प्राप्त हो गया। इस सेना का खर्चा वहन करना अप्पा साहब ने स्वीकार कर लिया। उसने स्वीकार किया कि वह केवल अंग्रेजों के माध्यम से अन्य राज्यों से संबंध रखेगा। माल्कम लिखता है कि "इस संधि ने व्यावहारिक रुप से मराठा संघ को समाप्त कर दिया।" इस प्रकार अप्पा साहब भोंसले का असंतोष भी युद्ध का एक कारण बन गया।

(4) पेशवा पर नियंत्रण : पूना की संधि—इस बीच गंगाधर शस्त्री की हत्या से वारेन हेस्टिंग्स को पेशवा पर नियंत्रण स्थापित करने का अवसर प्राप्त हो गया। पेशवा की गायकवाड़ पर कुछ आर्थिक देनदारी थी। इनको हल करने के लिए गायकवाड़ ने अंग्रेजों के परामर्श पर, गंगाधर शास्त्री को पूना भेजा। यहाँ उसकी हत्या कर दी गयी। अंग्रेजों को संदेह था कि इसमें पेशवा के परामर्शदाता त्रियंबकजी का हाथ था। उन्होंने त्रियंबकजी को बंदी बना लिया। त्रियंबकजी बंदीगृह से भाग निकला। अंग्रेजों को संदेह था कि इसमें पेशवा का हाथ है। अत: पेशवा पर नियंत्रण करने के लिए हेस्टिंग्स ने उस पर एक संधि थोप दी जिसकी निम्नलिखित शर्तें थी—

(क) पेशवा ने मराठा संघ के प्रमुख का पद छोड़ दिया और मराठा संघ को भंग कर दिया।

(ख) 4 लाख रुपये वार्षिक प्राप्त करने के बदले में पेशवा ने गायकवाड़ पर अपने सभी दावे त्याग दिये।

(ग) पेशवा ने अहमदनगर का दुर्ग अंग्रेजों को समार्पित कर दिया और बुंदेलखंड तथा मालवा में अपने सभी अधिकार व क्षेत्र अंग्रेजों को देना स्वीकार कर लिया।

(घ) पेशवा ने आश्वासन दिया कि वह त्रियंबकजी को बंदी बनाकर अंग्रेजों के समझ पेश करेगा और अब तक अपने परिवार का एक सदस्य अंग्रेजों के पास बंधक रखेगा।

(5) सिंधिया पर नियंत्रण : ग्वालियर की संधि—अंग्रेजों के पिंडारी-विरोधी अभियान से सिंधिया लाभ उठाने के लिए प्रयास कर रहा था। सिंधिया ने अपने क्षेत्र से अंग्रेजी सेना के निकलने में भी बाधा डाली थी। अत: अब उसे नियंत्रण में लाने के लिए वारेन हेस्टिंग्स ने उस पर ग्वालियर की संधि थोप दी जिससे सिंधिया असंतुष्ट हो गया। इस संधि की शर्तें थीं—

(क) सिंधिया पिंडारियों के विरुद्ध युद्ध में 500 सैनिक देगा। युद्ध काल में अंग्रेज असीरगढ़ तथा हंडिया में अपनी सेना रख सकेंगे।

(ख) सिंधिया को उदयपुर, जयपुर, कोटा, जोधपुर, बूँदी आदि राजपूत राज्यों से संधि करने से रोक दिया गया।

(6) होल्कर को दुर्बल करना—हेस्टिंग्स ने होल्कर राज्य पर भी सहायक संधि लादकर उसे भी दुर्बल कर दिया। 1817 ई० जसवंतराव होल्कर की मृत्यु के पश्चात् उसने उसकी विधवा तुलसीबाई को अंग्रेजी संरक्षण प्रदान किया। उसने अमीरखाँ को टोंक का नवाब बनाने का वायदा करके उसे होल्कर और पिंडारियों से अलग कर दिया। उसने उसका तोपखाना छीन लिया और उसकी सेना का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया।

(8) गायकवाड़ से संधि—बड़ौदा का मराठा सरदार गायकवाड़ अंग्रेजों का मित्र था। हेस्टिंग्स ने अक्तूबर, 1817 ई० को उससे भी एक नयी संधि की। इस संधि का आशय गायकवाड़ तथा उसकी सेनाओं को अंग्रेजों के लिए अधिक लाभदायक बनाना था।

(9) तात्कालिक कारण—इन संधियों के द्वारा हेस्टिंग्स ने पिंडारियों को मराठों से अलग कर दिया और मराठा सरदारों पर नियंत्रण और कठोर कर दिया। इसके साथ-साथ उसने युद्ध की तैयारी भी जारी रखी। जैसी उसे आशंका थी, पिंडारियों के दमन के साथ मराठों से भी युद्ध आरंभ हो गया जिनकी शुरुआत पेशवा ने

की थी। उसके लिए पूना की संधि अमान्य थी। दशहरा के अवसर पर पेशवा ने पूना में अपनी समस्त एकत्रित की, रेजीडेंट एलफिंस्टन ने अपनी सुरक्षा के लिए अंग्रेजी दस्ते किर्की से बुलवा लिए थे। पेशवा ने दस्तों को वापस भेजने की माँग की। एलफिंस्टन ने यह माँग नहीं मानी, इस पर पेशवा ने रेजीडेंसी पर बोल दिया।

युद्ध की घटनाएँ—पेशवा का आक्रमण होने पर एलफिंस्टन वहाँ से किर्की चला गया। किर्की पेशवा की सेना ने आक्रमण किया, किन्तु पराजित हो गयी। इसके बाद अंग्रेजी सेना ने पूना पर अधिकार लिया। पेशवा संगमनेर भाग गया जहाँ त्रियंबकजी सेना सहित उससे मिल गये। पेशवा के युद्ध का सम्म सुनकर अप्पा साहब भोंसले ने रेजीडेंसी पर धावा बोला दिया। लेकिन सीताबल्दी के युद्ध में पराजित हो इंदौर में होल्कर की सेना ने भी युद्ध के लिए प्रयास किया। इसे हिस्लाय के सेनापतित्व में अंग्रेजी से महीदपुर के निकट पराजित किया। इसके बाद होल्कर ने सहायक संधि मान कर राज्य में अंग्रेजी सेना र स्वीकार कर लिया और सतपुड़ा के दक्षिण का प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया। दूसरी ओर, पेशवा भी कोरेगाँव आष्टा के युद्धों में हार गया था। अंततः उसने आत्मसमर्पण कर दिया। अप्पा साहब भोंसले, जो पेशव सहायता के लिए आया था, पंजाब की ओर पलायन कर गया। इस प्रकार पेशवा, भोंसले और होल्कर तीन हार के साथ आंग्ल-मराठा युद्ध सदैव के लिए समाप्त हो गया।

परिणाम—इस युद्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम मराठा शक्ति की पूर्ण समाप्ति था। पेशवा का प समाप्त कर दिया। पेशवा बाजीराव को 8 लाख रुपये वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के पास बिठूर नामक स्थ रहने के लिए निष्कासित कर दिया गया। उसका राज्य अंग्रेजी राज्य में शामिल कर लिया गया। त्रियंबकजी आजीवन कारावास का दंड मिला। होल्कर ने कंपनी की अधीनता स्वीकार कर ली। सतपुड़ा के दक्षिण के अंग्रेजों ने हथिया लिए। नागपुर में परसोजी की विधवा को एक पुत्र गोद लेने को तैयार किया गया। उसका राघोजी बापू रखा गया और उसे गद्दी पर बिठा दिया गया। यद्यपि सिंधिया और गायकवाड़ ने युद्ध में भाग लिया था फिर भी उनसे भी नवीन संधियाँ की गयीं। सिंधिया से अजमेर छीन लिया गया। गायकवाड़ सहायक सेना में वृद्धि की गयी और इस सेना के व्यय के लिए अहमदाबाद उससे ले लिया गया। पि अमीरखाँ और गफूरखाँ की सेनायें समाप्त कर दी गयीं। इस प्रकार मराठा संघ को नष्ट करके हेस्टिंग वेलेजली के अधूरे कार्य को पूरा कर दिया।

ब्रिटिश शासन की प्रारम्भिक संरचना

ब्रिटिश सरकार ने समय-समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किये जिनके आधार पर भारत में ब्रि शासन चलाया गया। इन सबमें प्रथम था रेग्यूलेटिंग एक्ट।

रेग्यूलेटिंग एक्ट—1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया जिसके लिये बहुत सारी परिस्थि उत्तरदायी थी। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी मूलतः एक व्यापारिक कम्पनी थी जो बक्सर के युद्ध के बाद राजनैतिक शक्ति बन गई थी। इस पर संसद का नियन्त्रण कम होता जा रहा था। कम्पनी पर संसद का निय बनाये रखने के लिये एक नया कानून बताना आवश्यकता हो गया। कम्पनी के अधीन मद्रास, कलकत्त बम्बई तीनों प्रेसीडेन्सियों में परस्पर कोई ताल-मेल और सहयोग नहीं था। इन तीनों के प्रशासन को एक नीति के अधीन लाना भी इस नये कानून को पारित करने का एक उद्देश्य था।

रेग्यूलेटिंग एक्ट की धाराएँ—रेग्यूलेटिंग एकट की निम्नलिखित धारायें थी—

(1) बंगाल के गवर्नर को अब बंगाल का गवर्नर जनरल बनाया गया गया तथा बम्बई और मद्रास गवर्नरों को उसके अधीन कर दिया गया।

(2) गवर्नर जनरल की सहायता के लिये 4 सदस्यों वाली एक परिषद बनाई गई।

(3) अब तक डायरेक्टर एक वर्ष के लिये चुने जाते थे परन्तु अब उन्हें चार वर्षों के लिये चुना जाना था। इनमें से एक चौथाई को प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करना था।

(4) मतदान के सम्बन्ध में तय किया गया कि अब केवल उन्हीं हिस्सेदारों (Share Holders) को मताधिकार दिया गया जिसके पास चुनाव तिथि से कम से कम 12 महीने पूर्व 1 हजार पौंड के शेयर थे। चुनाव के लिये डायरेक्टरों की योग्यता भी 1000 पौंड से बढ़ा कर 2000 पौंड कर दी गई।

(5) बंगाल के गवर्नर जनरल से यह अपेक्षा की गई कि वह काउन्सिल के बहुमत के आधार पर ही निर्णय लेगा, परन्तु मतों के बराबर होने की स्थिति में उसे निर्णायक मत (casting vote) देने का अधिकार होगा।

(6) बंगाल के गवर्नर जनरल को यह भी अधिकार दिया गया कि वह मद्रास तथा बम्बई की प्रेसीडेन्सियों की व्यवस्था करे तथा उन्हें अपने नियन्त्रण में रक्खे।

(7) इस कानून के द्वारा समस्त उच्च अधिकारियों के वेतन निर्धारित कर दिये गये।

(8) इस कानून के द्वारा कम्पनी के अधीन समस्त नागरिक एवं फौजी कर्मचारियों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भेंट, उपहार, दान, पारितोषिक अथवा कोई भी वस्तु लेने की मनाही कर दी गई तथा इसका उल्लंघन करने वालों के विरूद्ध सख्त कार्यवाही की जाएगी।

(9) इस कानून के द्वारा कलकत्ता में सम्राट के अधीन सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन अन्य न्यायाधीश होंगे।

रेग्यूलेटिंग एक्ट का मूल्यांकन—रेग्यूलेटिंग एक्ट में निस्संदेह कुछ कमियां रह गई थी तथा उसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ताज अथवा संसद को कम्पनी पर न तो कोई निश्चित नियन्त्रण प्राप्त हुआ और न ही डायरेक्टरों को कम्पनी के कर्मचारियों पर। कुछ कमियां होने के बावजूद भी रेग्यूलेटिंग एक्ट का ब्रिटिश भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरी बात इस एक्ट के द्वारा कम्पनी को व्यापारिक संस्था के साथ-साथ राजनैतिक संस्था मानते हुए उसके राजनैतिक कार्यों को भी स्वीकार कर लिया गया।

पिट्स इंडिया एक्ट, 1784—रेग्यूलेटिंग एक्ट के बाद अगला संवैधानिक कदम था पिट्स इंडिया एक्ट। इस एक्ट से पहले फॉक्स ने इंडिया बिल प्रस्तुत किया। इसके अनुसार कम्पनी की राजनैतिक एवं सैनिक शक्ति 7 आयुक्तों के बोर्ड को सौंप दी जानी थी और व्यापारिक कार्य उनके अधीनस्थ 9 उपनिदेशकों को। यह बिल हाउस आफ कॉमर्स में पारित हो गया परन्तु हाउस ऑफ लार्डस से बिल पारित न हो सका। फलस्वरूप लार्ड नार्थ और फॉक्स की मिली-जुली सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा। यह पहला और अंतिम अवसर था जबकि एक अंग्रेजी सरकार भारतीय मामले पर गिर गई।

अगला जो कानून पारित किया गया वह था पिट्स इंडिया एक्ट। इस अधिनियम के द्वारा 6 कमिश्नरों का बोर्ड गठित किया गया जिसे 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल' कहा गया। इसमें एक चांसलर ऑफ एक्सचेकर, एक राज्य सचिव तथा उसके द्वारा नियुक्त किये गये 40 व्यक्ति प्रिवी कैंसिल के सदस्य होते थे। सभी सैनिक, असैनिक तथा राजस्व सम्बन्धी मामलों को इस नियन्त्रण बोर्ड के अधानी कर दिया गया। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का अध्यक्ष ब्रिटिश मंत्रिमंडल का एक सदस्य होता था। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार का कम्पनी के मामलों पर तथा उसके भारतीय प्रशासन पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। इस प्रकार शासन की द्वैध प्रणाली एक कम्पनी द्वारा और दूसरी संसदीय बोर्ड द्वारा 1858 तक चलती रही।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में परिवर्तन किया गया। इसके सदस्यों की संख्या घटाकर तीन कर दी गई तथा बम्बई एवं मद्रास की सरकारें इसके अधीन कर दी गई।

पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का प्रारम्भ

जिस समय भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी अपना प्रसार कर रही थी उस समय हिन्दूओं और मुसलम के अपने-अपने शिक्षण संस्थान थे। यद्यपि वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ता मदरसा की स्थापना की परन्तु कम्प- भारतीय शिक्षा पद्धति में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। 1854 के पूर्व की शिक्षा नीति की एक प्रमुख विशेषता थी कि यह काल प्रयोगों का काल था। कुछ लोग मिशनरी विद्यालयों का समर्थन कर रहे थे तो कुछ अन्य द देशी विद्यालयों को प्रोत्साहन देने के समर्थक थे क्योंकि वे मिशनरियों की धर्म प्रचार की नीति के विरोधी कुछ ऐसे लोग भी थे जो देशी विद्यालयों को समाप्त कर उनके स्थान पर कम्पनी द्वारा नियन्त्रित नये विद्याल की स्थापना की सलाह दे रहे थे।

शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधारायें प्रचालित थी। कुछ लोग यह मानते थे कि इंग्लै का कर्त्तव्य है कि वह अपनी भारतीय प्रजा को शिक्षित करे। एक अन्य विचारधारा के समर्थक इसलिये भारत को शिक्षा देना आवश्यक मानते थे कि वह कम्पनी की सेवा में छोटा पद संभाल सके। जनता में शिक्षा प्रसार लिये दो प्रकार की प्रणालियां रक्खी गई। एक विचारधारा के अुनसार शिक्षा उच्च वर्गों से छन-छन कर सर्वसाधारण तक पहुँचाई जाये। यह प्रसिद्ध 'अधोमुखी निस्यंदन सिद्धान्त' (डाउनवर्ड फिल्टरेशन थ्योरी) इसके विपरीत दूसरा वर्ग यह चाहता था कि सर्वसाधारण को शिक्षित करने के लिये कम्पनी को सीधे प्रय करने चाहिये। इस सब विवादों को 1854 के आज्ञापत्र में सुलझाने का प्रयत्न किया गया और उसके पश्चात शिक्षा नीति का निर्धारण हुआ।

प्राच्य-पाश्चात्य विवाद—भारतीय शिक्षा सम्बन्धी नीति निर्धारण के पक्ष में दो प्रमुख दल उत्पन्न गये थे—प्राच्यवादी (Orientalists) एवं पाश्चात्यवादी (Occidentalists और Anglicists)। प्र विचारधारा को मानने वालों में कम्पनी के पुराने बंगाली कर्मचारी थे जिनका सामान्यत: यह विश्वास था शिक्षा के सम्बन्ध में संस्कृत और अरबी के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाए और भारत में पाश्चात्य शि स्थानीय देशी भाषाओं के माध्यम से दी जानी चाहिये। आंग्लवादी भारत पर पश्चिमी मानदंडों को पूर्ण आरोपित करना चाहते थे और पूर्वी सभ्यता के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखते थे। इस प्रकार के विचारकों **लार्ड मैकॉले** प्रमुख थे जिसका विचार था कि प्राच्य शिक्षा पद्धति मरणासन्न है और उसको पुनर्जीवित क असम्भव है। उसका मानना था कि अरबी-फारसी और संस्कृत साहित्य में रूढ़िवादी और संकुचित विचारो अतिरिक्त कोई लाभप्रद ज्ञान नहीं हैं। वह भारतीय संस्कृति के स्थान पर पाश्चात्य संस्कृति की स्थापना क चाहता था। वह भारतीयों के एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना चाहता था जो रंग और खून में तो भारतीय हो प रूचि, विचार, नैतिकता और बुद्धि से अंग्रेज हो। शिक्षा के माध्यम से वह चाहता था। कि अपने व्यापारिक औ प्रशासनिक कार्यों के लिये अंग्रेजों को जिस 'बाबू वर्ग' की आवश्यकता थी उसके लिये भारतीयों को शिक्षि करके तैयार किया जाये। गवर्नर जनरल के कौंसिल के विधि सदस्य के रूप में फरवरी 1835 में उसने अ विवरण पत्र प्रस्तुत किया जिसमें उसने आंग्लवादी दल की पूर्ण वकालत की। भारत में अंग्रेजों की शिक्षा न के सम्बन्ध में इसका विशेष महत्व है।

1854 का वुड का घोषणा पत्र (Wood's Despatch of 1854)—1853 में एक संसद समिति नियुक्त की गई जिसके संचालकों ने अपनी शिक्षा नीति की घोषणा की। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के प्रध चार्ल्स वुड के नाम पर यह आदेश पत्र 'वुड का घोषणापत्र' कहा गया है। घोषणापत्र के अनुसार शिक्षा सम्बन्ध में कहा गया कि इसके माध्यम से ऐसे व्यक्ति उत्पन्न होंगे जिन्हें विश्वास के साथ सरकारी पदों पर रख जाएगा।

इस घोषणा पत्र में तीन बातों को महत्व दिया गया—(1) अधोमुखी निस्यंदन सिद्धान्त को अस्वीकार करना (2) माध्यमिक शिक्षा स्तर पर आधुनिक भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाना, (3) देशी विद्यालयों को राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का आधार माना जाना।

वुड के घोषणा पत्र में भारतीय शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों की व्याख्या की गई और भविष्य के लिये शिक्षा नीति निर्धारित की गई। घोषणा पत्र में कहा गया, "अब हमारा ध्यान इस महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर जाना चाहिये जिसकी अभी तक अवहेलना की गई है, अर्थात् जीवन के सभी अंगों के लिये लाभदायक और व्यावहारिक शिक्षा उस विशाल जनसमूह को किस प्रकार दी जाये, जो किसी सहायता के बिना स्वयं लाभदायक शिक्षा पाने में पूर्णत: असमर्थ है।" यद्यपि वुड के घोषणा पत्र को 'भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा' कहा गया है परन्तु वास्तव में यह घोषणा पत्र भारत के कल्याण की भावना से प्रेरित नहीं था। इसने भारत को ब्रिटिश उद्योगों के लिये कच्चे माल का संभरक तथा इग्लैण्ड के तैय्यार माल के उपभोक्ता के रूप में माना। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय ब्रिटिश माल के उपभोक्ता बनेगें और उनको सरकारी नौकरियां देकर अंग्रेजी सरकार के प्रति उनकी निष्ठा एवं स्वाभिभक्ति प्राप्त हो जाएगी। वुड का घोषणा पत्र इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित था।

हंटर शिक्षा आयोग, 1882 (Hunter Eduction Commission, 1882)—1854 के वुड के शिक्षा घोषणा पत्र में जो संस्तुतियां की गई थी और तदनुसार जो कदम उठाये गये थे उनके मूल्यांकन के लिये एक आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग के अध्यक्ष वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य सर विल्सन हंटर थे जिनके नाम पर यह आयोग हंटर आयोग के नाम से जाना जाता है।

हंटर शिक्षा आयोग का कार्य तथा सुझाव क्षेत्र केवल प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा तक ही सीमित था। इस आयोग ने देश के विभिन्न स्थानों पर जाकर जांच-पड़ताल की और शिक्षा की स्थिति और प्रगति के सम्बन्ध में उपाय बताते हुए 1883 में अपनी विशालकाय रिपोर्ट प्रस्तुत की। आयोग की संस्तुतियों में कहा गया कि प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुधार किया जाये और उसके विकास की ओर ध्यान दिया जाए। प्राथमिक शिक्षा स्थानीय भाषा में तथा उपयोगी विषयों में दी जानी चाहिये अर्थात् प्रारम्भिक शिक्षा में उन विषयों पर अधिक जोर दिया गया जो बच्चों को काम-धन्धे के लिये तैयार कर सके। प्राथमिक शिक्षा का नियन्त्रण स्थानीय शासन संस्थाओं, जिला तथा नगर बोर्डों को सौंप देने की बात कही गई। प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में निजी प्रयत्न तथा स्थानीय सहयोग का स्वागत करने की बात कही गई। स्कूली बच्चों के शारीरिक व्यायाम और नैतिक उत्थान की ओर ध्यान देने का सुझाव भी दिया गया। छात्रों के स्वास्थ्यवर्धन के लिये खेल और व्यायाम पर बल दिया गया। अध्यापकों से यह भी कहा गया कि वे छात्रों के चरित्र-निर्माण के लिये अपना अच्छा प्रभाव डाले।

हंटर आयोग ने यद्यपि बहुत सारी सिफारिशें की, परन्तु इसमें बहुत सारी कमियां भी थी। विद्वानों ने लिखा है कि हंटर आयोग की सिफारिशों ने बडें परिवर्तन करने की दिशा में कोई पहल नहीं की और न ही उनसे शिक्षा का स्तर सुधारने के काम में कोई तेजी आई। वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार के लिये कोई ठोस प्रस्ताव नहीं थे। माध्यमिक स्कूलों में व्यावहारिक विषय पढ़ाकर उन्हें और उपयोगी बनाने की सिफारिशें वास्तव में व्यावहारिक सिद्ध नहीं हुई। इसलिये प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली के लिये जो परिवर्तन सुझाये गये थे उनसे बहुत लाभ नहीं हुआ। परन्तु इन सब कमियों के बावजूद भी हंटर आयोग का महत्व इस दृष्टिकोण से है कि अगले बीस वर्षों तक सरकार की शिक्षा नीति इसकी सिफारिशों पर ही आधारित रही।

भारतीय पुनर्जागरण (Indian Renaissance)

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् भारत में धार्मिक ओर सामाजिक सुधारों की लहर सी आ गई। 19वीं शताब्दी भारतीय जनजागरण के काल के रूप में उभर कर सामने आई। भारत पर पाश्चात्य सम्पर्क के प्रभाव हानिकारक तो थे परन्तु इसी के परिणामस्वरूप भारतीय जनता में राष्ट्रीयता के भाव भी जाग्रत हुए।

भारतीय पुनर्जागरण तथा आधुनिक भारतीय चिन्तन पर पाश्चात्य सम्पर्क का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अ शिक्षा और साहित्य का सम्पर्क, यूरोप का पुनर्जागरण आदि ऐसे कारण थे जिन्होंने भारतीय पुनर्जागरण जन्म भी दिया और गति भी। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास ने आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण राष्ट्रवाद को आगे बढ़ाने में शक्तिशाली तत्व का काम किया। एक नये मध्यम वर्ग के उदय ने भी भार पुनर्जागरण की प्रक्रिया को बल और प्रोत्साहन प्रदान किया। इन्हीं सबके परिणामस्वरूप 1857 के स्वत संग्राम के पश्चात् भारत में धार्मिक और सामाजिक सुधारों की लहर सी आ गई।

राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज—19वी शताब्दी के सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों में सर्व था ब्रह्म समाज आन्दोलन, जिसके संस्थापक थे राजा राममोहन राय, जिन्हें भारत के 'पुनर्जागरण का अग्र कहा जाता है। राजा राम मोहनराय भारतीय समाज को अन्धविश्वास और कुरीतियों से छुटकारा दिलाना च थे। 1828 में इन्होंने ब्रहमसमाज की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य या समाज में प्रचलित ज भेदभाव की समाप्ति, छुआछूत का अंत, बाल-विवाह, बहु विवाह तथा कन्या बाल हत्या का अंत, वि विवाह का प्रचलन और रूढ़िवादिता की समाप्ति। उन्होनें उस समय के हिन्दू समाज में व्याप्त लगभग स बुराईयों पर सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया तथा अंधविश्वासों, कुरीतियों एवं समाज में प्रचलित बुद्धि व्यवस्थाओं का पुरजोर विरोध किया।

राजा राममोहन राय स्त्री के अधिकारों के प्रति अत्यधिक सचेष्ट थे तथा उन्होंने स्त्रियों को पुरुष समान अधिकार दिलाने की जबर्दस्त वकालत की। उन्होंने सती प्रथा को अत्यधिक क्रूर और अमानवीय क हुए यह दावा किया कि भारत के किसी भी धर्मशास्त्र के अनुसार सतीप्रथा स्वीकार्य नहीं हैं। उनके अ प्रयासों का ही यह परिणाम था कि 1829 में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने प्रथा के विरूद्ध के कानून पारित करके इसको गैर-कानूनी घोषित कर दिया। यह राजा राममोहन राय की अत्यधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी जिसके लिये वे सदैव स्मरण किये जाते रहेंगें।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज—ब्रह्म समाज के बाद 19वीं शताब्दी के आन्दोलन हिन्दू समाज एवं धर्म में सुधारों के दृष्टिकोण से आर्य समाज को एक महत्वपूर्ण स्थान है, जिसकी स्थापन श्रेय स्वामी दयानन्द सरस्वती को है।

समस्त देश का भ्रमण करने के बाद उन्होनें हिन्दू धर्म में आई कुरीतियों का अनुभव किया। उनका वि था कि स्वार्थी और अज्ञानी पुरोहितों ने हिन्दू धर्म को दूषित कर दिया है। उन्होंने अपनी शिक्षाओं के लिये का सहारा लिया तथा वेदों में छिपी हुई भारतीय संस्कृति की ओर हिन्दू समाज का ध्यान आकर्षित वि उन्होंने भारतीयों का यह बताया कि भारतीय को अपने पुनरूत्थान के लिये पाश्चात्य शिक्षा का नहीं वरन् का आश्रय लेना चाहिए। इसलिये उन्होनें भारतीयों को 'वेदों की ओर लौटो' (Back to Vedas) का दिया। अपने विचारों को व्यवस्थित रूप से प्रचारित करने के लिये स्वामी जी ने बम्बई में 1875 में आर्य स की स्थापना की।

स्वामी दयानन्द का विचार था कि वैदिक वर्ण व्यवस्था उचित है, परन्तु उन्होंने वर्ण को जन्म के अ पर न मानकर कर्म के आधार पर स्वीकार किया। वे जाति-प्रथा को सामाजिक कोढ़ मानते थे और छुआछूत सामाजिक महामारी। वह नारी उद्धार के प्रबल समर्थक थे तथा सती प्रथा, दहेज एवं पर्दा प्रथा के सख्त वि थे। समाज सुधार और जागरण के लिये वे स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना चाहते थे।

हिन्दी को वे राष्ट्रभाषा का दर्जा देते थे तथा शिक्षा को वह राष्ट्र के विकास के लिये अनिवार्य मानते उनका दृढ़ विश्वास था कि समुचित शिक्षा के अभाव में देशवासी कभी प्रगति न कर सकेंगे। अज्ञान के ति को हटाने के लिये स्वामी दयानन्द ने गुरूकुल जैसे विद्यालयों की स्थापना की योजना दी। आर्य समाज स्थापित की गई शिक्षण संस्थाये-गुरूकुल और डी.ए.वी. कॉलेज-वस्तुत: स्वामी दयानन्द के सच्चे स्मारक

राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान करने के स्वामी दयान्द की भूमिका महत्वपूर्ण रही। उन्होने एक ऐसे समय में देश में रष्ट्रवादी विचारधारा का अभ्युदय कराया जिस समय भारतीय जनता विदेशी शासन के अधीन पराधीनता का जीवन-यापन कर रही थी। सम्भवत: वही पहले भारतीय थे जिन्होंने 'भारत भारतवासियों के लिये' का संदेश दिया। सम्पूर्ण आर्य समाज आन्दोलन **स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेशी एवं स्वराज्य के स्तम्भों** पर आधारित है। पाश्चात्य आदर्शों और विचारों के प्रति घृणा उत्पन्न करने तथा स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात करने में आर्य समाज तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती की भूमिका स्मरणीन्य हैं।

स्वामी विवेकानन्द एवं रामकृष्ण मिशन—19वी शताब्दी के पुनर्जागरण में स्वामी विवेकानन्द एवं रामकृष्ण मिशन की भी अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है स्वामी विवेकानन्द एक सम्पन्न परिवार में जन्में थे, परन्तु उनके हृदय में समाज के कमजोर वर्ग, दीन दुखियों एवं बेसहारा लोगों के प्रति करूणा का भाव हर समय रहता था। स्वामी राकृष्ण परमहंस से इनकी भेट इनके जीवन में एक क्रांतिकारी मोड़ लाई। अपने गुरू की मृत्यु के पश्चात उन्होनें अपना स्पूर्ण जीवन गुरू के संदेश और शिक्षाओं के प्रसार एवं प्रचार में लगाया।

स्वामी विवेकानन्द 1893 में अमेरिका के शिकागो नगर में सर्वधर्म सम्मेलन (Parliament of Religions) में भाग लेने पहुँचे। वहाँ पर स्वामी जीं ने भारत की सार्वदेशिकता तथा विशाल हदयता तथा भारतीय आध्यात्म ज्ञान पर जो प्रभावशाली भाषण दिया उससे वहाँ उपस्थित प्रत्येक श्रोता मंत्रमुग्ध रह गया।

अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द ने उनके संदेश एवं शिक्षाओं के प्रसार के उद्देश्य से रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। भारत लौटने के बाद उन्होंने रामकृष्ण मिशन का नये सिरे से संगठन करके जगह-जगह पर उसकी शाखायें स्थापित की। स्वामी जी ने जिन सिद्धान्तों का उपदेश दिया वे उनके जीवन के अनुभवों पर आधारित थे। वे धर्म को एक प्रबल शक्ति मानते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि मानव जाति के भाग्य निर्माण में जितनी शक्तियों ने योगदान दिया है उन सबमें धर्म से अधिक कोई महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने धर्म का व्यापकतम अर्थ लेते हुए सार्वभौम धर्म का प्रतिपादन किया जिसको प्राप्त करने का मार्ग किसी एक धर्म विशेष को अपनाकर दूसरे धर्म की निन्दा करना नहीं था, वरन् उन्होंने धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठने का उपदेश दिया।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों, सामाजिक बुराईयों एवं कुप्रथाओं, जाति-पाति, छुआछूत एवं सम्प्रदायवाद का कड़ा विरोध किया। इन सब बुराईयों को वे भारतीय समाज के पतन का प्रमुख कारण मानते थे। उन्होंने रूढ़िवादिता पर प्रहार किया तथा समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को ठुकराकर प्रत्येक बात को तर्क और बुद्धि की तराजू में तौल लेने के पश्चात ही ग्रहण करने का उपदेश दिया। वह जाति प्रथा के अत्यधिक विरुद्ध थे और जातिवाद को देश और समाज के लिये घातक मानते थे।

स्वयं सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के बाद भी स्वामी विवेकानन्द के हृदय में गरीबों, दीन दुखियों और दलितों के लिये असीम सहानुभूति थी। वह झोपड़ी में रहने वाले लोगों को निर्धनता और भुखमरी से छुटकारा दिलाना चाहते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि भूख से पीड़ित समाज का कोई धर्म हो ही नहीं सकता और भूखे लोगों को धर्म का पाठ नहीं पढ़ाया जा सकता।

स्वामी विवेकानन्द शिक्षा को भी अत्यधिक आवश्यक मानते थे, परन्तु उनकी दृष्टि में तत्कालीन शिक्षा प्रणाली उपयुक्त नहीं थी। उनका यह विचार था कि शिक्षा ऐसी नहीं होनी चाहिये जो संकीर्ण भेदभाव और संकीर्णता की भावना को उत्पन्न करे। वे शिक्षा की गुरुकुल पद्धति को उपयोगी मानते थे जहाँ छात्र शिक्षक के निकटतम सम्पर्क में रहकर पवित्रता, धैर्य, विनम्रता आदि गुणों का विकास कर सकता था और ज्ञान का अथाह भंडार संचित कर सकता था।

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक युग के एक महान विचारक थे जिन्होंने अपने विचारों और लेखों से भारत की जनता में स्वतन्त्रता का मंत्र फूँका। जिस समय राष्ट्र उदासीनता, निष्क्रियता और निराशा में डूबा हुआ था

उस समय उन्होंने देश में जनजागरण की चेतना उत्पन्न की तथा देशवासियों को शक्ति एवं निर्भयता के मार्ग अग्रसर किया। भारतीय जनजागरण में स्वामी विवेकानंद एवं रामकृष्ण मिशन की महत्वपूर्ण भूमिका है

भारतीय प्रेस एवं उसका प्रभाव

आधुनिक युग में हमारे जीवन में समाचार पत्रों का अत्यधिक महत्व है तथा हम उनके बिना जीवन कल्पना ही नहीं कर सकते। जनतन्त्र में प्रेस और समाचार पत्रों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

समाचार पत्रों की स्थापना—आधुनिक भारतीय प्रेस का प्रारम्भ बोल्ट्स के द्वारा 1766 में समाचार पत्र के प्रकाशन से हुआ। 1780 में जे० के० हिक्की ने 'बंगाल गजट' नामक समाचार पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। यद्यपि उसका पत्र तो जब्त कर लिया गया परन्तु नवम्बर 1780 में 'इंडिया गजट' नाम एक अन्य भारतीय पत्र के प्रकाशन के साथ भारतीय प्रेस का तीव्र गति से विकास दृष्टिगोचर होता है। 18 शताब्दी के अंत तक बहुत सारे समाचार पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिनमें बंगाल से प्रकाशित होने व 'कलकत्ता कैरियर', 'एशियाटिक मिरर', 'ओरियन्टल स्टार', बम्बई के 'बॉम्बे गजट' तथा 'हेराल्ड' एवं मद्र से प्रकाशित होने वाले 'मद्रास कैरियर' तथा 'मद्रास गजट' आदि प्रमुख थे।

पत्रकारिता के इतिहास में जे० एस० बकिंघम का महत्वपूर्ण स्थान है जिन्होंने प्रेस को जनता भावनाओं का प्रतिबिम्ब बनाया तथा प्रेस को वह रूप प्रदान किया जिसमें उसे हम आज देखते हैं। समाचार प तथा प्रेस के विकास में राजा राममोहन राय की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही जिन्हें राष्ट्रीय प्रेस की स्थाप का श्रेय भी दिया जाता है। उन्होंने बंगाली में 'संवादकौमुदी', फारसी में 'मिरात-उत् अखबार', अंग्रेजी 'ब्राह्मनिकल मैगजीन', गुजराती में 'दैनिक बम्बई समाचार' आदि प्रकाशित किये।

19वीं शताब्दी के प्रेस की विशेषतायें—19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में प्रेस की अपनी कुछ विशेषत थीं। समाचार-पत्रों का वितरण अत्यधिक सीमित होने के कारण पत्रकारिता एक घाटे का व्यवसाय था अं इसका क्षेत्र अत्यधिक सीमित था। परन्तु सीमित क्षेत्र होते हुए भी जनता में जागृति उत्पन्न करने के दृष्टिकोण समाचार पत्रों का अपना अलग महत्व था।

प्रेस पर प्रतिबन्ध—प्रेस के माध्यम से अंग्रेजी सरकार की आलोचना की जाती थी जिसके कार समय-समय पर सरकार द्वारा प्रेस पर प्रतिबंध लगाये जाते रहे। 1857 तक समाचार पत्रों के प्रति उद दृष्टिकोण अपनाया जाता रहा, परन्तु 1857 के विद्रोह के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों के कारण प्रे के सम्बन्ध में सरकारी नीति में परिवर्तन आया और प्रतिबन्ध बढ़ने लगे। परन्तु ये प्रतिबन्ध न तो कड़े थे और ही अधिक समय के लिये लगाये जाते थे। इसी दौरान लिटन गवर्नर जनरल होकर भारत आया जिसका य विचार था कि यदि जनसामान्य पर समाचार पत्रों के दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रभाव को नहीं रोका गया त ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष इतना बढ़ सकता है जो ब्रिटिश राज्य के लिये अत्यधिक घातक सिद्ध ह सकता है। लिटन के बाद लार्ड रिपन ने भारतीय प्रेस पर लगे प्रतिबन्धों को हटाया। इस प्रकार कुछ वायसरा प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाते रहे जबकि कुछ गवर्नर जनरल उदार विचारों के तथा प्रेस की स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे परन्तु सरकारी दमनकारी प्रतिबन्धों के बावजूद प्रेस जनजागरण का कार्य करता रहा तथा भारतवासियों क जागृत करने तथा राष्ट्रीयता के विकास के कार्य में सक्रिय रहा।

प्रेस की भूमिका एवं प्रभाव—इस सम्पूर्ण युग में प्रेस की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही तथा प्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के समस्त पहलुओं को प्रभावित किया। प्रेस ने सरकार की कटु आलोचना की और उसकी शोषणात्मक गतिविधियों से जनता को अवगत कराया तथा तत्कालीन समस्त ज्वलंत समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर जनसाधारण को उद्बुद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। लोगों को राजनैतिक शिक्षा देने

में प्रेस का महत्वपूर्ण योगदान रहा। जनजीवन में जो असंतोष व्याप्त था उसको सरकार तक पहुँचाने का कार्य प्रेस ने ही किया। इतना ही नहीं अंग्रेजी शासकों का वास्तविक रूप जनता के समक्ष लाने का श्रेय भी प्रेस को ही है।

अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले भारत के आर्थिक शोषण के विरुद्ध भी आवाज उठाने का श्रेय प्रेस को ही है। इस सम्पूर्ण काल में प्रेस ने ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों, तरह-तरह से किये जाने वाले शोषण तथा भारत से धन की निकासी आदि विषयों पर विस्तृत, ब्योरेवार तथा आँकड़े सहित लेख लिखकर जनता को भारत में ब्रिटिश शासन के वास्तविक उद्देश्यों से परिचित कराया। स्वदेशी एवं बायकाट का प्रचार करके इनको अखिल भारतीय चर्चा का विषय बनाने का श्रेय भी प्रेस और समाचार पत्रों को ही है।

समाज सुधार करने तथा सामाजिक रुढ़ियों, अंधविश्वासों आदि को समाप्त करने में भी समाचार पत्रों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। समय-समय पर समाचार पत्र विभिन्न सामाजिक समस्याओं और कुप्रथाओं के विषय में सारगर्भित लेख छापकर विभिन्न सामाजिक विषयों पर जनता में जागरुकता उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। भारत में राष्ट्रीय महत्व के कुछ मुद्दों पर राजनैतिक उथल-पुथल मचाने में भी प्रेस की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। उदाहरणार्थ लार्ड लिटन के द्वारा पारित वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट तथा लार्ड कर्जन के विभिन्न दमनात्मक कार्यों के विरुद्ध जनमानस को उद्वेलित करने में प्रेम की भूमिका महत्वपूर्ण रही। इसका सबसे ज्वलंत प्रमाण यह है कि जन आन्दोलन के समक्ष झुककर ही सरकार को 1911 में बंगाल को पुनः एक प्रांत बनाना पड़ा।

हिन्दू-मुस्लिम एकता लाने में भी प्रेस ने सराहनीय प्रयास किये। एक ओर तो समाचार-पत्रों ने हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव पर बल देते हुए राष्ट्रीय एकता के लिये उसका महत्व बताया तथा दूसरी ओर हिन्दू-मुस्लिम दंगों के दौरान सरकार द्वारा मुसलमानों को उकसाने के जो प्रयास किये गये उनके प्रति भी जनता को सचेत किया।

समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय घटनाओं के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से भी जनता को अवगत कराया। समाचार पत्रों ने विभिन्न युद्धों में अंग्रेजों की पराजय तथा जापान जैसे बौने देश की रूस जैसे दैत्य के विरुद्ध विजय के समाचार को इस रूप में छापा जिससे भारतीयों को अंग्रेजी शासन से मुक्त होने की प्रेरणा मिले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान जनता को शिक्षित करने, जनता को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संगठित करने आदि के माध्यम से स्वतन्त्रता आन्दोलन को मजबूत करने में प्रेस की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही।

आधुनिक साहित्य का विकास

विद्वानों ने 19वीं शताब्दी को 'भारतीय साहित्य के इतिहास का रचनात्मक युग' कहा है। इस युग में विभिन्न भाषाओं के पर्याप्त साहित्य का सृजन तो हुआ ही, साथ ही साहित्य की बहुत-सी विधाओं का भी विकास हुआ। 19वीं शताब्दी में भारत का पुनर्जागरण और साहित्य का विकास दोनों साथ-साथ चले। प्रेस के विकास ने भी विभिन्न भाषाओं के साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। साहित्य के विकास में ईसाई मिशनरियों की भूमिका भी अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी को पाश्चात्य शिक्षा का माध्यम बनाया जाना भी भारतीय भाषाओं के साहित्य के विकास का एक महत्वपूर्ण कारण बना। साहित्य के विकास में राष्ट्रीय आन्दोलन और देशभक्ति की भावनाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। विद्वानों ने लिखा है कि देशभक्ति की भावनाओं को साहित्य में अभिव्यक्ति मिली।

1. संस्कृत साहित्य—संस्कृत भारत की प्राचीनतम भाषा है। यह प्राचीन आर्यों की एकमात्र भाषा थी और हिन्दुओं के सभी धर्म ग्रंथ इसी भाषा में मिलते हैं। मध्य युग में एक लम्बे समय तक मुस्लिम आधिपत्य के

कारण इसका महत्व जाता रहा। आधुनिक युग में संस्कृत भाषा और साहित्य का पुन:विकास हुआ जिसक पाश्चात्य विद्वानों को है। इन पाश्चात्य विद्वानों में एक महत्वपूर्ण नाम है एशियाटिक सोसायटी के संस विलियम जोन्स का। उन्होंने मनु की मनुसंहिता, कालिदास के संस्कृत नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् और ज की प्रसिद्ध कृति गति गोविन्द का अनुवाद दिया। जोन्स ने संस्कृत के अध्ययन की एक ऐसी परम्परा जिसके कारण आगे तक पाश्चात्य विद्वानों की अभिरुचि संस्कृत में बनी रही। बहुत सारे पाश्चात्य विद्वान में जिन्होंने विश्व को संस्कृत साहित्य का परिचय दिया और इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अंग्रेजों के साथ-साथ फ्रांसीसी एवं जर्मन विद्वान भी थे जिनमें से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जेम्स ि डब्ल्यू सी० टेलर, डब्ल्यू एच० मिल, फ्रांसिस विलफोर्ड, सैमुअल डेविस आदि। जर्मन विद्वानों में दो प्रेडरिक श्लेगल और आगस्टस श्लेगल के नाम महत्वपूर्ण है। जर्मन विद्वानों में सर्वाधिक उल्लेखनीय न मैक्समूलर का जिनका संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक विशेष स्थान है। उन्होंने वेदों पर अत्यधिक किया तथा जर्मन जाति को संस्कृत साहित्य की महानता से परिचित कराया।

संस्कृत भाषा और साहित्य में पाश्चात्य विद्वानों की अभिरुचि का प्रभाव भारतीय विद्वानों पर भी ि पड़ा। परिणामस्वरूप संस्कृत में बड़ी संख्या में नाटक, उपन्यास, कविताओं और कहानियों की रचना विभिन्न विद्वानों ने संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाने में तरह-तरह से योगदान दिया। जिस प्रकार पाश विद्वानों ने संस्कृत के ग्रंथों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करके संस्कृत साहित्य के विकास में योगदान उसी प्रकार संस्कृत के विद्वानों ने पाश्चात्य साहित्य के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं वैज्ञानिक ग्रन्थों का संस्कृ अनुवाद किया। विश्वविद्यालय स्तर पर उच्च अध्ययन के लिये संस्कृत के अध्यापन ने इस भाषा को अ लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। संस्कृत के उत्थान और प्रचार में आर्य समाज जैसे संगठनों भूमिका भी उल्लेखनीय रही।

2. हिन्दी साहित्य—हिन्दी भाषा का साहित्य अत्यधिक प्राचीन है, परन्तु इसकी साहित्यिक उ 19वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई। हिन्दी के आधुनिक विकास की प्रक्रिया 19वीं शताब्दी के साथ प्रारम्भ

(i) गद्य का विकास—18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में 'रानी केतकी की कहानी' और 'सुख स आदि ग्रंथों की रचना हुई जिन्हें हिन्दी गद्य की आदितम पुस्तकें माना जाता है तथा जिनके साथ हिन्दी गद्य विकास प्रारम्भ हुआ। हिन्दी को विकसित करने में लल्लू लाल और सदल मिश्र की भूमिका अत्य महत्वपूर्ण रही। लल्लू लाल ने 'प्रेम सागर', 'सिंहासन बत्तीसी' और 'वेताल पच्चीसी' तथा सदल मि 'नासिकेतोपाख्यान' नामक ग्रन्थ लिखकर हिन्दी साहित्य में एक नई गद्य शैली का प्रारम्भ किया। हिन्दी क गद्य शैली को लोकप्रिय बनाने में प्रेस, पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों की भूमिका भी अत्यधिक महत्वपूर्ण समाचार पत्रों ने नई प्रारम्भ हुई गद्य शैली को विकसित करने तथा लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दि

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। एक कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार तथा निबन्ध लेखक थे तथा इन सभी रूपों में उन्होंने सा में अपनी महान सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने भाषा में मधुरता, सरलता, सरसता लचीलापन उत्पन्न किया तथा शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करके हिन्दी साहित्य की बड़ी महत्वपूर्ण सेवा की। उ प्रसिद्ध नाटक 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी' तथा 'चन्द्रवली' हैं और ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं 'कश्मीर कुसुम' 'बादशाह दर्पण'। भारतेन्दु जी का इस दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक महत्व है कि इनकी लेखन शैली का उ लेखकों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा जिन्होंने हिन्दी को समृद्ध और आधुनिक बनाने में योगदान दिया। अपनी इ सेवाओं एवं योगदान के कारण इन्हें 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का पितामह' तथा 'हिन्दी गद्य का प्रवर्तक' क जाता है।

हिन्दी गद्य को समृद्ध बनाने में जिन अन्य विद्वानों की भूमिका महत्वपूर्ण रही उनमें प्रताप नारायण मिश्र, बाबू तोताराम, बालकृष्ण भट्ट, गदाधर सिंह उपाध्याय, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसके पश्चात 19वीं शताब्दी के कुछ दशकों में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का द्वितीय युग प्रारम्भ हुआ जो 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक चला। उस युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास को प्रशस्त किया तथा आधी शताब्दी तक इसको प्रभावित किया। उन्हें उचित ही 'आधुनिक हिन्दी गद्य का शिल्पी' कहा जाता है।

मिश्र बंधुओं और पद्म सिंह शर्मा ने कई आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना की तथा देवकी नन्दन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी ने मौलिक इतिहासों की रचना की। देवकी नन्दन खत्री ने चन्द्रकांता संतति एवं भूतनाथ आदि उपन्यास लिखे जो जनता में अत्यधिक लोकप्रिय हुए। 1894 में रामनारायण मिश्र, बाबू श्याम सुन्दर दास और ठाकुर शिव कुमार सिंह के प्रयत्नस्वरूप काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई जिसने हिन्दी साहित्य की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया और इसकी गति को तीव्र किया।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ-साथ हिन्दी साहित्य अधिक पुष्ट तथा प्रौढ़ हो गया और उसमें मौलिकता भी आने लगी। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र कुमार, विश्वम्भर शर्मा, सुदर्शन, चण्डी प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा आदि ने इस समय के साहित्य को अपनी मौलिक रचनाओं से पल्लवित और समृद्धशाली बनाया। सामाजिक विषयों में उपन्यासों के क्षेत्र में प्रेमचन्द सर्वश्रेष्ठ थे और ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में वृन्दावन लाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन एवं जयशंकर प्रसाद उल्लेखनीय हैं। आलोचनात्मक रचनाओं के क्षेत्र में रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास और लाला भगवान दीन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य के विकास में प्रगतिवाद और देशभक्ति की भावनाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही। देशभक्ति की भावनाओं ने तत्कालीन हिन्दी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। तत्कालीन जीवन और समाज की परिस्थितियों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में राहुल सांकृत्यायन, भगवत शरण उपाध्याय, रांगेय राघव तथा रामधारी सिंह दिनकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(ii) पद्य का विकास—आधुनिक युग में गद्य के साथ-साथ काव्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ब्रजभाषा में कविता का सूत्रपात किया। उनके समवर्ती पुरानी कविता के प्रमुख कवि थे बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर, श्रीधर पाठक, वियोगी हरि, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि, जिन्होंने अपनी सरस और भावभीनी कविताओं और खंड काव्यों के द्वारा हिन्दी काव्य साहित्य को समृद्ध किया।

20वीं सदी में खड़ी बोली में कवितायें हुईं। मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य साहित्य को अत्यधिक समृद्ध किया। हरिऔध जी ने 'प्रिय प्रवास' की रचना की। परन्तु 1920 के पश्चात कविता की नई शैलियों छायावाद औश्र रहस्यवाद का विकास हुआ। इस नवीन विचारधारा के प्रमुख कवि थे जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा आदि। जयशंकर प्रसाद ने कामायनी, आँसू, लहर, महादेवी वर्मा ने यामा तथा पंत जी ने पल्लव और युगान्त आदि कृतियों के माध्यम से अपनी काव्य साधना और कवित्व शक्ति का परिचय दिया।

3. उर्दू साहित्य—उर्दू भाषा का प्रादुर्भाव मध्य युग में हुआ और मुगल काल में उर्दू की उन्नति हुई। आधुनिक युग में उर्दू साहित्य के विकास का श्रेय फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रधानाचार्य जॉन गिल्क्रिस्ट को है जिन्होंने उर्दू गद्य की ओर पर्याप्त ध्यान दिया तथा कुछ भारतीय विद्वानों को एकत्रित करके उर्दू के प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना करवायी। अन्य भाषाओं के कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करवाया गया और कुछ भारतीय विद्वानों को हिन्दुस्तानी व्याकरण तैयार करने को रखा। छापेखाने के प्रसार ने उर्दू साहित्य में वृद्धि की और यह जनसाधारण तक पहुँचने लगा।

उर्दू गद्य और पद्य के विकास में मिर्जा मुहम्मद गालिब एवं सर सैय्यद अहमद खाँ की भूमिका महत्व रही। सैय्यद अहमद खाँ तथा उनके अलीगढ़ आन्दोलन ने आधुनिक ढंग के उर्दू साहित्य के पुनर्लेखन के लेखकों को प्रेरित करने तथा उर्दू साहित्य की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। नई भाषा के कुछ प्रमुख बन गये जैसे—दिल्ली, लाहौर, लखनऊ, हैदराबाद आदि जहाँ से उर्दू साहित्य को विकसित और समृद्ध जाने लगा।

19वीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में उर्दू साहित्य को नई प्रेरणा देने का कार्य किया मुशाय इसकी शुरुआत करने का श्रेय शायर हाली को है जिनकी कृतियों ने उर्दू शायरी को एक नई दिशा प्रदा उर्दू कविता के क्षेत्र में अकबर इलाहाबादी का भी अपना एक उच्च तथा विशिष्ट स्थान है। इकबाल, मुहानी तथा असगर जैसे शायरों ने गज़ल के दायरे को और अधिक विस्तृत किया।

प्रगतिवाद का प्रभाव हिन्दी साहित्य के साथ-साथ उर्दू साहित्य पर भी परिलक्षित होता है। प्रगतिवा शायरों ने अपनी रचनाओं में यथार्थवाद का चित्रण किया और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विषमत अन्यान्य दोषों को उजागर किया। इस क्षेत्र में कवियों और कहानीकारों दोनों की ही भूमिका महत्वपूर्ण कवियों में प्रमुख थे जोश, फैज़, फिराक, मकदूम जाँ निसार अख्तर, सरदार जाफरी आदि। प्रमुख प्रगा कहानीकार थे हयातुल्ला, गुलाम अब्बास, मुमताज मुफ्ती, हसन असकरी, अहमद अली, कृष्ण चन्दर, ब सिंह आदि जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से मनुष्य पर अत्याचारों, अन्याय एवं अमानुषिकता एवं की बुराईयों का पर्दाफाश किया।

उर्दू उपन्यास के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास हुआ। प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द ने अभिव्यक्ति को उपन्यासों का विषय बनाया जबकि कुछ ने देश की तत्कालीन घटनाओं को। उदाहरणार्थ 'और इंसाफ मर में रामानन्द सागर ने देश के विभाजन के समय में हुए साम्प्रदायिक दंगों की भीषणता और भारत की तत्क स्थिति का बड़ा सजीव वर्णन किया है। इस प्रकार के उपन्यासकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं आदिल रशीद अख्तर, इंतजार हुसैन, जमनादास, शौकत थानवी और ख्वाजा अहमद अब्बास।

गम्भीर विषयों तथा आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक लेखन के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हुई। ग विषयों के क्षेत्र में लिखने वालों में विशेष उल्लेखनीय थे मौलाना अशरफ अली, मौलाना अब्दुल मजीद, स अहमद, आबिद हुसैन, जाकिर हुसैन और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक युग में संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू भाषाओं तथा इनके साहित्य पर्याप्त विकास हुआ। इन सभी में प्रचलित विधाओं के साथ-साथ नई-नई विधायें भी विकसित हुईं।

देशी भाषाओं के साहित्य का विकास—19वीं शताब्दी भारतीय साहित्य के इतिहास का रचना युग माना जाता है। इसमें हिन्दी, संस्कृत और उर्दू के साथ-साथ विभिन्न देशी भाषाओं के साहित्य क पर्याप्त सृजन हुआ। यहाँ पर हम विभिन्न देशी भाषाओं में हुई साहित्यिक गतिविधियों का संक्षेप में वर्णन क

1. असमिया—ब्रिटिश नीति के कारण असमिया भाषा का अत्यधिक अहित हुआ, परन्तु इस कम पूरा करने का कार्य किया अंग्रेज मिशनरियों ने, जिन्होंने अपने छापेखानों से स्कूल के लिये पाठय पुस्तकें की तथा साथ ही असमिया भाषा में 'अरुणोदय' नामक पत्रिका भी प्रकाशित की। मिशनरियों ने धार्मिक सा का प्रचार किया जिसके परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अंत तक असमिया भाषा के साहित्य का रू आधुनिक होने लगा।

(i) कविता—बहुत सारे असमिया लेखको ने स्वछंद रूप से विभिन्न विषयों पर काव्य रचनायें असमिया कवियों में लक्ष्मी नाथ बेजबरुआ एक उल्लेखनीय कवि थे जिन्होंने 'असम संगीत', 'मोरे 'आमार जन्मभूमि' आदि देशभक्ति सम्बन्धी श्रेष्ठ रचनायें की। देशभक्ति सम्बन्धी काव्यात्मक रचना

ले अन्य महत्वपूर्ण कवि थे चन्द्रकुमार अग्रवाल तथा कमलकान्त भट्टाचार्य। असमिया के अन्य उल्लेखनीय वि और कवयित्री थे देवकांत बरुआ, रघुनाथ चौधरी, रत्नकांत बड़काकती, नलिनी बालादेवी, यतीन्द्रनाथ गरा, अम्बिका गिरि राय चौधरी, धर्मेश्वरी देवी आदि। हेम बरुआ, नवकांत बरुआ तथा अन्य अनेक कवियों प्रगतिवादी कविता के क्षेत्र में नई आशाओं के युग का सुभारम्भ किया।

(ii) उपन्यास—असमिया में उपन्यासों का लेखन 20वीं शताब्दी की देन है। इस क्षेत्र में शुरुआत की नीकांत बारडोलाई ने, जिन्होंने 'मिरीजियारो', 'मानोमाटी', 'दंडुआ द्राह' तथा 'राहा दाई लिगिरि' नामक सिद्ध उपन्यासों की रचना की। पद्मनाथ गोहैन बरुआ ने 'लहरी' तथा 'भानुमति' तथा दैवचन्द्र तालुकदार ने नदर्श पीठ' तथा दण्डीनाथ कालीता ने 'साधना' नामक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखे। इसके अतिरिक्त आद्यनाथ र्मा का 'जीवनार तीन अध्याय', गोविन्द महंत का 'कृणकारनटी', चन्द्रकांत गोगुई का 'सोनार नंगल' तथा ेष देय का 'अजीर मनुह' आदि विभिन्न सामाजिक विषयों एवं समस्याओं पर लिखे गये उपन्यास थे।

(iii) लघुकथा—लघुकथा के क्षेत्र में सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान रहा लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ तथा त् चन्द्र गोस्वामी का, जिन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं पर लघुकथाओं की रचना की। अन्य लघु कथा खकों में त्रेलोक्यनाथ गोस्वामी, बीमा बरुआ और लक्ष्मीनाथ शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने विभिन्न यों पर लघुकथायें लिखीं।

(iv) नाटक—मनोरंजन के साधन के रूप में नाटकों की लोकप्रियता के कारण असमिया नाटकों का विकास हुआ। पश्चिमी ढंग के नाटक लिखने की शुरुआत हेमचन्द्र बरुआ, गुणाभिराम बरुआ और रुद्रराम रडोलोई ने की। ऐतिहासिक घटनाओं पर पद्मनाथ गुहैन बरुआ तथा देशभक्ति की भावनाओं वाले ितिहासिक नाटकों की रचना की नकुल चन्द्र भूयान, देवचन्द्र ताल्लुकदार तथा प्रसन्न लाल चौधरी ने।

2. बंगला—अंग्रेजी साहित्य और भाषा का सर्वाधिक प्रभाव बंगला साहित्य पर पड़ा क्योंकि बंगाल ही प्रांत था जिसपर अंग्रेजों का सर्वप्रथम अधिकार हुआ था। बंगला साहित्य का प्रारम्भ कई शताब्दियों पूर्व हो का था परन्तु 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगला साहित्य को नई प्रेरणा प्रदान ने का कार्य किया दो महत्वपूर्ण केन्द्रों ने कलकत्ता का फोर्ट विलियम कॉलेज तथा सेरामपुर के ईसाई शनरी। इन केन्द्रों के पंडितो और मौलवियों ने बंगला भाषा में आधुनिक गद्य साहित्य के निर्माण का प्रयत्न या। बंगला साहित्य के विकास में विलियम कैरी की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही जो फोर्ट विलियम लेज में बंगला और संस्कृत के प्रोफेसर रहे थे। कैरी, वार्ड और प्रेसी आदि ने बंगला में अपनी कृतियाँ ाशित करवायीं। मिशनरियों ने बाइबिल का बंगला में अनुवाद किया, समाचार पत्र प्रकाशित किये और गद्य ली के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। राजा राममोहन राय के साथ एक प्रकार से बंगला साहित्य का रोदय हुआ। 'युवा बंगाल' कहलाने वाले पश्चिमी शिक्षा प्राप्त प्रगतिशील विचारों वाले युवकों ने बंगला भाषा आधुनिक दिशा में अग्रसर होने में अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। युवा बंगाल आन्दोलन के एक त्वपूर्ण नेता माइकेल मधूसूदन दत्त ने अपनी कृतियाँ के माध्यम से बंगला के विकास को एक नयी दिशा ान की।

दीनबंधु मित्र अत्यन्त लोकप्रिय नाटककार थे जिन्होंने अपने 'नील दर्पण' नाटक में नील की खेती करने ले किसानों की दुर्दशा का बड़ा यथार्थ चित्रण किया। बंगला गद्य शैली के विकास में ईश्वरचन्द विद्यासागर भूमिका भी महत्वपूर्ण थी जिन्होंने अपनी रचनाओं में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करके बंगला को अधिक ावोत्पादक बनाया।

बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय का उदय आधुनिक बंगला गद्य के विकास के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना । वह अपने समय की तीव्र देशभक्ति की भावनाओं के प्रतीक थे और उनका 'आनन्द मठ' देशभक्ति बन्धी प्रसिद्ध उपन्यास था।

19वीं शताब्दी के बंगला साहित्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने में रवीन्द्र नाथ टैगोर की भूमिका अत महत्वपूर्ण रही। उनकी 'गीतांजली' को नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

20वीं शताब्दी के महानतम् उपन्यासकारों में शरत चन्द्र चटोपाध्याय का एक अनोखा स्थान है। उपन्यासों में सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं के साथ-साथ मानव मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों सुन्दर चित्रण है। काजी नजरुल इस्लाम राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले लेखकों में उल्लेख जिनकी कविता 'विद्रोही' अद्वितीय थी। प्रगतिवादी विचारधारा के लेखकों में प्रमुख थे प्रेमेन्द्र मित्र, अचिन्त गुप्त और बुद्धदेव वसु तथा वामपंथी विचारधारा के लेखक थे मानिक बन्दोपाध्याय तथा गोपाल हलधर अ

3. गुजराती—18वीं शताब्दी में राजनैतिक अव्यवस्था के कारण साहित्यिक जागृति न हो भक्तिमार्गीय संतों ने धार्मिक और पौराणिक विषयों पर लिखा। गिरधर ने गुजराती भाषा में रामायण की की। दोहा, सोरठा में वीर रस की कवितायें लिखी गईं।

(i) कविता—गुजराती भाषा को आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय नर्मदा शंकर को है जिन्होंने को नया अर्थ और नये आयाम प्रदान किये। 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक सारे कवियों की कविताओं पर पाश्चात्य प्रभाव की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ जाती है। इस दौर में कवियों ने अपनी कृतियों से कविता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें प्रमुख थे नाना बलवंतराय, कलादी, कान्त और नरसिम्हा राव। महात्मा गाँधी के राष्ट्रवादी आन्दोलन की प्रवृत्तियों का गुजराती काव्य में भी दिखाई पड़ता है। उन दिनों कविता के प्रमुख विषय थे देशभक्ति की भावनायें तथा आन्दोलन के उद्देश्य। उमाशंकर जोशी, सुन्दरम और सुन्दर जी बेताई आदि कवियों ने नये-नये विष काव्य रचना की। नये कवियों में बेनी भाई पुरोहित, बालमुकुन्द देव, निरंजन भगत और राजेन्द्र शाह उल्लेखनीय हैं।

(ii) उपन्यास—गुजराती उपन्यास अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बने। गोवर्धन राम का 'स चन्द्र' एक ऐसा उच्चकोटि का उपन्यास था जिसे गुजराती साहित्य की मूल निधि कहा जा सकता है। अ गुजराती उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं झवेर चन्द मेघानी, पन्ना लाल पटेल, पीताम्बर पटेल, मन्नूभाई तथा मुंशी गुणवंत राय आचार्य आदि।

(iii) नाटक—अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव से गुजराती नाटक का विकास हुआ। दो प्रकार के नाट रचना हुई जिनमें से एक थे रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिये, जो हास्य प्रधान होते थे तथा दूसरे सा नाटक, जिनका विषय गम्भीर होता था। के०एम०मुंशी तथा चन्द बदन मेहता आदि लेखक रंगमं सार्वजनिक मनोरंजन का माध्यम बनाकर दर्शकों तक ले जाने के प्रयास में अत्यधिक सफल हुए। कुछ ने एकांकी नाटकों का महत्व स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, जिनमें उल्लेखनीय है उ जोशी, जयंती दयाल, चूनीलाल मेदिया तथा गुलाबदास ब्रोकर।

(iv) लघु कहानियाँ—20वीं शताब्दी में गुजराती में लघु कहानियों का अत्यधिक विकास हुआ प्रकार के विचारों तथा विषयों तथा मन की गहराईयों को छू लेने वाले प्रसंगों पर लघु कहानियाँ लिखी ग कहानीकारों में प्रमुख थे पन्नालाल पटेल, चूनी लाल मेदिया, धूमकेतू, ईश्वर पेतलीकर, गुलाबदास, उ जोशी, रामनारायण पाठक तथा जी०बी० मावलंकर आदि।

4. मराठी—मध्य युग में भक्ति आन्दोलन के दौरान मराठी भाषा और साहित्य का पर्याप्त विकास महान मराठा संतों तुकाराम, एकनाथ, रामदास आदि ने जनता की भाषा में गीतों एवं प्रवचनों के माध मराठी भाषा को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ईसाई मिशनरियों ने अपने प्रचार को आसान बनाने के लिये मराठी भाषा का शब्दकोष एवं व्याकरण तैयार किया। इस काल में

पुस्तकों का मराठी भाषा में अनुवाद हुआ। पाश्चात्य प्रभाव और छापेखाने के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में एक साहित्यिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

(i) काव्य—कुछ कवियों ने जनजागरण के लिये कविता को अपने विचारों के प्रसार का माध्यम बनाया, जिसमें केशवसुत का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नारायणवामन तिलक, विनायक और राम गणेश गडकरी आदि कवियों ने अपने-अपने विशिष्ट ढंग से मराठी कविता में आधुनिकता का समावेश किया। इनके बाद भी चन्द्रशेखर, भास्कर रामचन्द्र ताँबे तथा नारायण मुरलीधर गुप्त आदि कवियों ने मराठी कविता को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

(ii) उपन्यास—मराठी उपन्यासों के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हुई तथा सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों के साथ-साथ ऐतिहासिक गाथाओं पर भी उपन्यास लिखे गये। हरिनारायण आप्टे ने मराठा और राजपूत इतिहास की वीरता सम्बन्धी कहानियों पर उपन्यास लिखे। सी०वी० वैद्य, सी०जी० भानु और एस०एन० परांजपे ने ऐतिहासिक विषयों पर लिखा। अन्य मराठी इतिहासकारों में वी०एम० जोशी, एस०वी० केतकर, मामा बरेरकर, वी०एस० खांडेकर एवं एन०एस० फड़के के नाम उल्लेखनीय है।

(iii) नाटक—रंगमंच के उदय के कारण मराठी साहित्य में नाटक को भी पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। मराठी नाटकों को मनोरंजन के साधन के रूप में लोकप्रिय बनाने में एन०सी० केलकर, एस०के० कोलाहटकर और के०पी० खाडेलकर आदि की भूमिका महत्वपूर्ण रही। मराठी रंगमंच की उल्लेखनीय सेवा करने वालो में मामा बरेरकर का महत्वपूर्ण स्थान है जिनके 'अपूर्व बंगाल' तथा 'भूमिकन्या सीता' नामक नाटक अत्यधिक लोकप्रिय हुए।

(iv) निबन्ध, कहानी, लेख इत्यादि—मराठी साहित्य ने निबन्ध, कहानी एवं लेख इत्यादि के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति की। इस क्षेत्र में समाचारपत्र, पत्रिकाओं ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। पत्रकारिता के क्षेत्र में बालगंगाधर तिलक तथा गोपाल गणेश आगरकर ने उल्लेखनीय योगदान दिया। तिलक ने अपने प्रसिद्ध साप्ताहिक 'केसरी' तथा आगरकर ने 'सुधारक' में अपने लेखों के माध्यम से जनसाधारण का मार्ग तत्कालीन महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनैतिक घटनाओं की ओर आकर्षित किया। पाठकों की भावनाओं को अपने लेखों के माध्यम से झकझोरने में एन० जी० केलकर, शिवराम महादेव परांजपे तथा विष्णु शास्त्री चिपलंकर की भूमिका भी अत्यधिक महत्वपूर्ण रही।

5. उड़िया—मध्ययुग में उड़ीसा हिन्दू धर्म, दर्शन, शिल्प एवं वास्तुकला का एक प्रमुख केन्द्र था तथा उड़िया भी भारत की प्राचीन भाषाओं में से एक है। अन्य भाषाओं के समान उड़िया का विकास भी 19वीं शताब्दी में हुआ।

(i) गद्य—उड़िया गद्य लेखन को आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय फकीर मोहन सेनापति नामक एक लेखक को है जिन्होंने उड़िया में लघु कहानी लिखना प्रारम्भ किया, भजन और कवितायें लिखी, उच्च कोटि के उपन्यास लिखे तथा रामायण और महाभारत का उड़िया में अनुवाद किया। उन्होंने उड़िया गद्य को जो अमूल्य योगदान दिया उसके कारण उन्हें उचित ही 'उड़िया गद्य का पितामह' कहा जाता है।

कुछ समय पश्चात युवा लेखकों के एक नये दल का आविभवि हुआ जिन्होंने उड़िया साहित्य को आधुनिक बनाना प्रारम्भ किया। इनमें कालिन्दी शरण, पाणिग्रही, गोपीनाथ मोहन्ती, काहुन चरण मोहन्ती तथा विभूति पटनायक आदि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

(ii) पद्य—कविता को मध्ययुग के वातावरण से निकालकर दृढ़ आधुनिक आधार प्रदान करने का श्रेय राधानाथ रे और मधुसूदन राय को है। राघानाथ रे की 'चिलिका' नामक कविता तथा 'काव्य महायात्रा' नामक

अतुकान्त कविता उड़िया साहित्य की महानतम् कृतियों में से मानी जाती है। अन्य कवियों में नन्द किशोर और गंगाधर मेहर के नाम उल्लेखनीय हैं।

20वीं शताब्दी की राष्ट्रवादी लहर ने उड़िया लेखको में भी राष्ट्रवादी विचारधारा का संचार किया। प्रकार के लेखको में गोपबंधु दास, पंडित नीलकंठ एवं कृपा सिन्धु मिश्र उल्लेखनीय हैं।

गद्य के समान पद्य में भी नवोदित लेखकों का एक वर्ग उभरा जो विचारों, विषय और शैली में नर्व लाया। इनमें प्रमुख थे बैकुंठनाथ पटनायक और अन्नदा शंकर रे। प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख थे शनि शै मनमोहन ऋषि, अनन्त पटनायक आदि।

(iii) नाटक—गद्य एवं पद्य के साथ-साथ आधुनिक युग में उड़िया नाटक साहित्य का भी प विकास हुआ। वैष्णव पाणी, कालीचरण पटनायक और रमाशंकर राय ने सामाजिक विषमताओं तथा रा आकांक्षाओं को नाटकों के माध्यम से रंगमंच पर प्रस्तुत किया।

उपर्युक्त प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त आधुनिक युग में उड़िया साहित्य में लेखकों ने निब आलोचनात्मक लेख और समीक्षायें, ऐतिहासिक ग्रन्थ, कहानी और कविताओं आदि की रचना करके उ साहित्य को समृद्ध बनाया।

6. पंजाबी—पंबाज पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो जाने के बाद उस पर पाश्चात्य साहित्य की प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ। इसी कारण 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बड़ी तीव्रता के साथ प्रगति पथ पर अग्रसर हुआ और उसने अपनी एक अलग ही पहचान बना ली।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भाई वीरसिंह के नेतृत्व में पंजाबी साहित्यिक जगत पर 'सिंह सभा लेख नामक पंजाबी लेखकों के एक दल का वर्चस्व रहा, जिन्होंने समकालीन सामाजिक, धार्मिक पृष्ठभूमि लिखा। उन्होंने 'सुन्दरी', 'विजयसिंह', 'सतवंत कौर' तथा 'बाबानन्द सिंह' आदि उपन्यासों की रचना क पंजाबी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। वीरसिंह के अतिरिक्त काहन सिंह तथा शरन सिं भी पंजाबी साहित्य को समृद्ध बनाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। काहन सिंह ने सिख पंथ पर एक विश्वव भी तैयार किया।

पंजाबी काव्य का भी पर्याप्त विकास हुआ जिसमें मोहन सिंह तथा अमृता प्रीतम की भूमिका महत्व रही।

कहानी साहित्य के भी विकास में कर्तार सिंह दुग्गल, कुलवंत सिंह बिर्क तथा संतसिंह सेखों के न उल्लेखनीय हैं। निबन्धकारों में गुरबक्श सिंह का नाम उल्लेखनीय है। प्रसिद्ध पंजाबी उपन्यासकार थे। ना सिंह, जिनके 'चिट्टा लहू' एवं 'आदमखोर' आदि उपन्यास गर्मस्पर्शी होने के साथ-साथ शिक्षा प्रद भी

7. सिन्धी—सिन्धी लेखकों पर भी पाश्चात्य प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपनी भाषा को आधुनिक ब के प्रयास करने प्रारम्भ कर दिये। फारसी को राजदरबार की भाषा के पद से हटा दिये जाने के परिणामस्व सिंध के लेखक अपनी भाषा सिन्धी की ओर आकृष्ट हुए।

(i) गद्य—अन्य भाषाओं के लेखों के सिन्धी में अनुवाद के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे सिन्धी भाषा मौलिक लेखन का कार्य प्रारम्भ हुआ। 1890 में मिर्जा साहिब ने अपना 'जीनत' नामक प्रसिद्ध उपन्य प्रकाशित किया जो सिन्धी भाषा में अपनी किस्म का पहला उपन्यास था। इसके बाद फतेह मुहम्मद सेहव हरुसदा रंगानी तथा निर्मलदास फतेहचन्द आदि लेखकों ने सिन्धी गद्य को अमूल्य सेवा प्रदान की। बाद दशकों में गद्यलेखन को और अधिक विकसित करने का कार्य किया लालचंद अमरडिनोमल, जेठमल परमा तथा मेरुमल मेहरचन्द ने।

(ii) नाटक—सिन्धी लेखकों पर पाश्चात्य रंगमंच का तथा अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटकों का सिंधी में अनुवाद करके उन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। इसके साथ ही महाकाव्यों और पौराणिक कथाओं से प्रेरणा लेकर हरिश्चन्द्र, रामायण और द्रोपदी आदि नाटक लिखे गये। कालान्तर में सामाजिक घटनायें भी नाटकों की विषय वस्तु बनी जिसकी शुरुआत मंघाराम मंलकानी ने की। नाटक की दृष्टि से लीलाराम फरवानी की 'हिक रात' कृति का भी अत्यधिक महत्व है।

(iii) काव्य—कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका रही किशन चन्द बेबस की जिन्होंने अपनी 'शीरीन शायर', 'गंगाजूँलहरु' कृतियों में बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। जिन कवियों ने उनसे प्रेरणा ली उनमें प्रमुख थे हरि दिलगीर, राम पंजवानी, गोविन्द भाटिया तथा छंदराज दुखायल आदि। धीरे-धीरे सिन्धी कविता यथार्थवादी और धर्म निरपेक्ष बनती चली गई, जिसके प्रतिनिधि कवि थे हैदर बक्श जटोई, देवणदास आजाद तथा दयाराम दिद्दूमल।

इस प्रकार सिन्धी भाषा और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ, परन्तु देश के विभाजन के बाद सिन्ध पाकिस्तान का अंग बन गया जिसके परिणामस्वरूप सिन्धी भाषा और साहित्य की प्रगति को आघात पहुँचा।

8. कश्मीरी—अन्य भाषाओं की अपेक्षा यद्यपि कश्मीरी भाषा और साहित्य का विकास कुछ देर से हुआ परन्तु लगभग 50 वर्षों के अन्दर इसने अत्यधिक उल्लेखनीय प्रगति की। संस्कृत और फारसी की समृद्ध विरासत मिलने के कारण कश्मीरी भाषा का विकास सरल हो गया।

(i) गद्य—यद्यपि गद्य का विकास बहुत अधिक नहीं हुआ परन्तु फिर भी कश्मीरी में गद्य की विभिन्न विधाओं पर लेखन कार्य हुआ। गद्य लेखकों में प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं उमेश कौल, सोमनाथ जुत्शी, नवीन, हरवोन आदि। गद्य शैली में सुधार करने का श्रेय अख्तर मुइउद्दीन को है, जिनकी प्रसिद्ध कृति है 'सात संगर'। अली मुहम्मद लोने और कामिल भी उल्लेखनीय गद्य लेखकों में से हैं। रंगमंच पर खेलने के दृष्टिकोण से नाटकों की भी रचना हुई। कश्मीरी भाषा में आधुनिक नाटक लेखन के जनक थे जगन्नाथ वली और मुईउद्दीनी हाजिनी। अन्य नाटक लेखकों में पुष्कर मान, अलीमुहम्मद लोने, कामिल और जुत्शी लोशन के नाम उल्लेखनीय हैं। कश्मीरी में उपन्यास और कथा साहित्य की शुरुआत अभी नहीं हुई है।

(ii) काव्य—मध्ययुग में हिन्दू और मुसलमान संतों ने कश्मीरी भाषा को काफी समृद्ध बना दिया था जिसके कारण आधुनिक युग में कश्मीरी भाषा की कविता को अत्यधिक सफलता मिली। अन्तर बस इतना था कि 19वीं शताब्दी के अंत में धार्मिक विषयों का स्थान सांसारिक विषयों ने ले लिया। धीरे-धीरे कश्मीरी कविता में नई-नई विचारधाराओं का जन्म हुआ तथा लोकगीत, हास्य तथा व्यंग तथा गजल आदि लिखी जाने लगी। कविता में यथार्थवाद को स्थान देने का श्रेय मकबूल कारालाबारी तथा वहाबपारे आदि कवियों को है। रसूलमीर ने श्रोताओं के मन को छूने वाली गजलें लिखी।

कश्मीरी में आधुनिक कविता का सूत्रपात करने का श्रेय माहजूर को है जो रसूल मीर से प्रभावित थे। धीरे-धीरे पुरानी विषय वस्तु को त्यागकर कविताओं में नई भावनाओं को स्थान दिया जाने लगा तथा परम्परागत शैली के स्थान पर नई शैली अपनाई गई। अब्दुल अहद आजाद ने कश्मीर की सामंतवादी, निरंकुश, धर्मान्ध तथा अन्धविश्वासों से भरी रूढ़िवादी व्यवस्था तथा जनसाधारण की दयनीय आर्थिक दशा को उजागर करते हुए लेखनी उठाई। अन्य भाषाओं की कविता के समान कश्मीरी कविता पर भी प्रगतिवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है जिसका प्रतिनिधित्व किया रोशन, नदीम, राही और प्रेमी आदि कवियों ने। परन्तु स्वाधीनता के बाद कश्मीर में जो उथल-पुथल आई उस दौरान कश्मीर के कवियों में एक निराशावादी प्रवृत्ति का जन्म हुआ।

निष्कर्ष—इस प्रकार संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू आदि प्रमुख भाषाओं के अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं तथा उनके साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। विभिन्न विषयों पर साहित्य की रचना हुई तथा नई-नई शैलियों का विकास हुआ। ये सभी भाषायें विकास के पथ पर अग्रसर है तथा भविष्य में इनसे बड़ी अपेक्षायें हैं।

दक्षिण भारतीय भाषाओं का साहित्य—आधुनिक युग में भारतवर्ष के उत्तरी-पूर्वी तथा पश्चिम की भाषा के ही समान दक्षिण की भी चारो भाषाओं—तमिल, तेलुगू, मलयालम एवं कन्नड़ तथा उनके का पर्याप्त विकास हुआ। इन चारों भाषाओं और उनके साहित्य का विवरण निम्न प्रकार है—

1. तमिल—दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं में प्राचीन काल से जो भाषा सर्वाधिक समृद्ध रही वह थी जिसका प्रमाण है संगम साहित्य। 19वीं शताब्दी में इस भाषा का आधुनिकीकरण हुआ तथा अन्य भाषाओं के समान ही तमिल में भी अंग्रेज पुस्तकों का अनुवाद हुआ। पत्रकारिता के विकास ने तमिल क्षेत्र को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

(i) काव्य—तमिल काव्य में देशभक्ति और राष्ट्रवाद का स्वर मुखरित हुआ। देशभक्ति के अ तमिल कविता पर प्रगतिवाद का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। देशभक्ति पर रचना करने वाले प्रमुख सुब्रह्मण्य भारती। प्रगतिवादी कवियों ने पीड़ित, दलित, भूख क शिकार और मत्यु शैय्या पर पड़े ल हालत का बहुत सजीव वर्णन किया। सामाजिक और आर्थिक समानता के लिये संघर्ष कर रही नई लिये ये कवि आशा के संदेशवाहक बन कर आये।

(ii) गद्य—गद्य में भी उन्हीं भावनाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है जिन्होंने कविता में नई प्रवृत्ति प्रतिबिम्बित किया। नई विचारधारा के लेखकों में प्रमुख थे टी०वी० कल्याण सुन्दर मुदालियर, जिन्हें अ तमिल गद्य का पितामह माना जाता है। स्वामी विपुलानन्द भी नई विचारधारा के एक अत्यधिक सा प्रतिभा सम्पन्न लेखक थे। 20वीं शताब्दी में तमिल में उपन्यास लेखन की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ तथा कुछ मौलिक उपन्यास भी लिखे गये। तमिल उपन्यासकारों में मर अडिगल तथा कलकि विशेष उल्लेखनीय हैं।

(iii) नाटक—आधुनिक युग में तमिल नाटको का भी विकास हुआ। नैतिक उपदेशों तथा उच्च से परिपूर्ण नाटकों की संख्या में वृद्धि हुई तथा व्यंग एवं परिहास से परिपूर्ण नाटक भी खूब लिखे गये। के एक महान नाटककार थे सांवंद मुदालियर।

(iv) कहानी—तामिल में कहानी लिखने की प्रवृत्ति का भी विकास हुआ जिनका प्रमुख उद्दे आधुनिक व्यक्ति को शिक्षित करना। तामिल कहानी लेखकों में वी०वी०एस अय्यर का नाम विशेष उल्ले है।

2. तेलुगू—तेलुगू प्रदेश पर पश्चिम का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण तेलुगू साहित्य ने शताब्दी के प्रारम्भ में बड़ी तीव्रता से प्रगति की।

(i) काव्य—आधुनिक तेलुगू कविता की आधारशिला रखने का प्रमुख श्रेय बेंकट शास्त्री, फ शास्त्री और गुर्जदा अप्पाराव को है। आम लोगों की बोलचाल की भाषा लिखने वाले कवियों में प्रमुख थे राममूर्ति पंतुलु। नन्दूरी सुब्बाराव तथा बासव राजू अप्पाराव आदि लेखकों ने प्रणय और देशभक्ति पर लिखे। कुछ कवियों की कविताओं में प्रेम का आदर्श कल्पना परिलक्षित होती है, जिनमें प्रमुख थे रा सुब्बाराव, कृष्णशास्त्री, शिवशंकर शास्त्री, वेदुला, सत्य नारायण तथा अब्बूरी रामकृष्ण राव। अन्य भाष समान ही तेलुगू कविता पर भी प्रगतिवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है, जिसके प्रभावस्वरूप कवि जनसामान्य के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं तथा मजदूरों और किसानों के जीवन की विषमता कवितायें लिखना प्रारम्भ किया।

(ii) उपन्यास—तेलुगू में उपन्यास लेखन का भी पर्याप्त विकास हुआ। प्रारम्भिक उपन्यास लेख विरेशलिंगम का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिनका राजशेखर चरित्रम् एक चर्चित उपन्यास था। उपन्यासकारों में चिल्का मूर्ति, लक्ष्मी नरसिंहम, विश्वनाथ सत्यनारायण तथा नोरीनरसिंहा शास्त्री दे

उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी उपन्यासकारों में एस०बी० सुब्बाराव तथा उनका उपन्यास 'शिवारकु मिगिलेदी' उल्लेखनीय है।

(iii) नाटक—तेलुगू में नाटकों की रचना भी हुई तथा रंगमंच पर खेले जा सकने वाले नाटकों का सृजन हुआ। दैनिक जीवन के साथ-साथ पौराणिक गाथाओं और ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित नाटकों की रचना हुई। तेलुगू नाटककारों में प्रमुख थे गुरजादा अप्पाराव, वेदम् वेंकटराय शास्त्री, पानुगुंटी नरसिम्हाराव, डॉ० कृष्णामाचार्ल आदि। एकांकी नाटकों की भी रचनायें हुई।

(iv) लघु कहानियाँ—तेलुगू में 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लघुकथा लेखन का भी कार्य प्रारम्भ हुआ। लघुकथा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने का श्रेय गुरजादा अप्पाराव को है। लघु कथा को सरल बनाकर और अधिक विकसित करने का कार्य चिन्ता दीक्षितुलु ने किया। बहुत-से तेलुगू लेखकों ने विभिन्न विषय वस्तुओं पर लघु कहानियों की रचना की, जिनमें प्रमुख थे गुडिपति वेंकटचलम, एम० नरसिंहाराव, मालती चन्दर, इल्लिनदाला सरस्वती, वी० पदमराजू, कनपती वरलक्ष्मम्मा आदि।

3. कन्नड़—पश्चिमी तथा अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के कारण कन्नड़ साहित्य का अत्यधिक तीव्रता से विकास हुआ जिसके कारण कन्नड़ साहित्य ने 19वीं शताब्दी में आधुनिक युग में प्रवेश किया तथा कन्नड़ भाषा ने नया रूप धारण करके नये दौर में प्रवेश किया।

(i) गद्य—गद्य लेखन के विकास में मैसूर के शासक कृष्णराय के प्रोत्साहन की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। अनुवाद कार्य भी हुआ तथा गद्य में कुछ मौलिक ग्रन्थों की रचना भी हुई। कुम्पू नारायण के ग्रन्थ 'मुद्रा मंजूषा' में नई प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। इसी वर्ष बाइबिल के संशोधित संस्करण (New Testament) का प्रकाशन कन्नड़ में हुआ।

(ii) उपन्यास—उपन्यास के क्षेत्र में सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धि हुई। प्रारम्भिक कन्नड़ उपन्यासकारों में एम०एस० पुतन्ना का नाम उल्लेखनीय है। मानवीय भावनाओं, देश-विदेश की महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यासों का भी सृजन हुआ। प्रमुख कन्नड़ उपन्यासकारों में थे बेतीगेरी, कृष्णाराव, कस्तूरी, के०वी० अय्यर, कांतिमणि तथा के०टी० पौराणिक आदि।

(iii) कविता—अंग्रेजी कविता के परिणाम के प्रभावस्वरूप तथा अंग्रेजी कविताओं के कन्नड़ में अनुवाद के कारण कन्नड़ कविता का अत्यधिक विकास हुआ। कन्नड़ कविता को एक साहित्यिक रूप प्रदान करने मे वी० एन० तट्टी, एस० कट्टी, शांत कवि और काव्यानन्द आदि कवियों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। विभिन्न विषयों पर कवियों ने गीत, भजन, गाथागीत, स्तुति गीत, सोनेट आदि की रचना की। श्रीधर, गोविन्दपाई, के० नरसिंहा स्वामी आदि प्रमुख कन्नड़ कवि थे।

(iv) कहानी—कन्नड़ भाषा में कहानी लेखन की शुरुआत का श्रेय मस्ती नामक लेखक को है, जिन्होंने बहुत-से कहानियाँ लिखी जिनका पाठकों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अन्य कन्नड़ कहानीकारों में कृष्णकुमार, गोपाल कृष्ण राव, आनन्द, वेत्तीगेरी तथा गोरम्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(v) नाटक—कन्नड़ में नाटकों की भी पर्याप्त रचना हुई तथा इतिहास और पौराणिक कथाओं के साथ-साथ समकालीन घटनाओं और परिस्थितियों को भी नाटकों का विषय बनाया गया। गरुण तथा वेंकटरामैय्या ने पौराणिक कथाओं पर तथा मस्ती और समसा ने ऐतिहासिक विषयों पर नाटक लिखे। हुयील गोल तथा आद्या ने सामाजिक घटनाओं पर तथा करन्त तथा मुगाली ने व्यंग प्रधान नाटकों की रचना की। गोकाक ने सुखान्त, कैलाशम् ने दुखान्त तथा कुछ अन्य लेखकों ने एकांकी नाटक तथा गीति नाटिकायें लिखी।

(vi) आलोचनात्मक लेखन—जहाँ जनसामान्य के लिये बहुत-सा साहित्य लिखा बुद्धिजीवियों तथा शिक्षित वर्ग के लिये गम्भीर विषयों पर निबन्ध और लेख लिखे गये। जीवनियाँ, आ डायरियाँ तथा साहित्यिक आलोचनायें लिखी गई तथा आलोचनात्मक लेखन आधुनिक कन्नड़ साहित्य सशक्त पहलू बन गया।

4. मलयालम—दक्षिण भारत की अन्य भाषाओं की ही तरह मलयालम भी 15वीं शताब्द अत्यधिक साहित्यिक भाषा की श्रेणी में आती थी। मलयालम साहित्य का आधुनिक दौर भी 19वीं श ही प्रारम्भ हुआ।

(i) गद्य—मलयालम में आधुनिक गद्य शैली लाने की दिशा में ईसाई मिशनरियों के धार्मिक ग्रं अनुवादों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। चन्दू मेनन ने आम आदमी की समझ में आ सकने वाली 'इन्दुलेखा' नामक उपन्यास लिखा। इससे अन्य लेखकों को प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली। आधुनिक नींव को सुदृढ़ करने में ए०आर० राजराजा वर्मा की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही।

(ii) काव्य—मलयालम कविता 15वीं शताब्दी से ही अत्यधिक महत्वपूर्ण थी परन्तु 19वीं श उत्तरार्द्ध में यह अपना मध्ययुगीन रूप त्यागकर आधुनिक रूप में आई। इस नये विकास की प्रक्रिया के का श्रेय केरल वर्मा नामक कवि को है जिनकी 'मयूर संदेशम्' एक महत्वपूर्ण कृति है। धीरे—धीरे कवियों ने आम जनता की बातचीत की शैली में अपनी कवितायें लिखी। कुमारन असन तथा बल्लथो नई शैली की दृष्टि से उल्लेखनीय कवि थे। मलयालम कविता को समृद्ध बनाने में नलप्पथ नारायण वी० सी० बालकृष्ण पनिक्कर तथा जी० शंकर कुरुप आदि की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही।

मलयालम कविता पर प्रगतिवाद का प्रभाव भी पड़ा तथा प्रगतिवादी आन्दोलन के प्रमुख कवि भास्करन, अनुजन, वयलार राम वर्मा, गोविन्दन नायर आदि। प्रगतिशील विचारों के कवि थे गोपाल कु कुलम तथा श्रीधर मेनन आदि।

(iii) नाटक—मलयालम नाटक को समृद्ध बनाने में सी०वी० रमण पिल्लै की भूमिका महत्व ऐतिहासिक नाटक लिखने का कार्य ई०वी० कृष्णपिल्लै, इदासेरी, गोविन्दन नायर आदि की भूमिका म रही।

(iv) लघु कहानियाँ—लघु कहानी लेखन के क्षेत्र में भी मलयालम के लेखकों को उल्ल सफलता मिली है। प्रमुख कहानीकारों में से एक है तकाजी/समसामयिक परिस्थितियों पर लिखने प्रमुख हैं के०टी० मुहम्मद, बशीर, सरस्वती अम्मा तथा पी०सी० कुट्टीकृष्णन आदि।

(v) आलोचनात्मक लेख—मलयालम के लेखकों ने गम्भीर विषयों पर पर्याप्त आलोचनात्म भी लिखे। इस क्षेत्र में विशेष योगदान पी० गोविन्द पिल्लै तथा आर० नारायण पनिक्कर का रहा।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम देखते हैं कि भारत के अन्य क्षेत्रों के ही समान भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। इन सभी भाषाओं में आज भी साहित्य-सृजन हो रहा है, जिनके कारण इनका भविष्य उज्ज्वल है।

1857 से पहले के सामाजिक सुधार

भारत में ब्रिटिश शासन काफी लम्बे समय तक रहा जिस दौरान उन्होंने तरह-तरह से भारत का शोषण किया। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी शासन के दौरान भारत में कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक भी हुए। समय-समय पर भारतीय समाज सुधारकों ने विभिन्न सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध बेड़ा उठा

उसी के परिणामस्वरूप समय-समय पर अंग्रेजी शासन द्वारा उन कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिये कानून बनाये जाते रहे।

सती प्रथा—गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक ने 1829 में एक कानून द्वारा सती प्रथा को बंद कर दिया। प्रारम्भ में यह कानून केवल बंगाल में लागू हुआ परन्तु अगले वर्ष यह बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेन्सियों में भी लागू कर दिया गया। इस नियम को पारित करवाने में राजा राममोहन राय की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण थी।

ठगी प्रथा—एक समय में ठगों का आतंक फैला हुआ था तथा वे भोले-भाले नागरिकों को बेवकूफ बनाकर उनका सारा माल लूट लेते थे। लार्ड विलियम बैंटिक के समय में ठगों का दमन किया गया। इसके लिये उसने एक अधिकारी कार्नल स्लिमैन की नियुक्ति की। कुछ ठग भाग गये तथा कुछ ने समर्पण कर दिया। 1830 ई० तक ठगों का पूरी तरह दमन कर दिया गया।

शिशु वध—शिशु वध की प्रथा मूलत: राजपूतों में प्रचलित थी जो कन्याओं के जन्म लेते ही उन्हें मार डालते थे। गवर्नर जनरल जॉन शोर के समय में 1795 ई० के बंगाल नियम 21 तथा वेलेजली के समय में 1802 ई० की धारा 6 के द्वारा शिशु हत्या को साधारण हत्या के रूप में मान लिया गया। इस प्रकार शिशु वध प्रथा भी धीरे-धीरे समाप्त हो गई।

नर-बलि प्रथा—भारतीय समाज में नर-बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। इसे समाप्त करने का श्रेय हार्डिंग प्रथम को जाता है। इसके लिये उसने एक अधिकारी कैम्पबेल की नियुक्ति की। 1844-45 ई० तक यह प्रथा भी समाप्त हो गई।

दास प्रथा—मध्यकाल में फीरोज तुगलक ने दासों के व्यापार पर रोक लगा दी थी जबकि अकबर ने दास-प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया था। आधुनिक काल में कार्नवालिस ने 1789 ई० में दासों के व्यापार को बंद करवा दिया था। गवर्नर जनरल एलनबरो ने 1843 ई० के पाँचवे नियम द्वारा दास प्रथा को समाप्त कर दिया।

विधवा पुनर्विवाह—तत्कालीन भारतीय समाज में विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं दी जाती थी तथा पति की मृत्यु के बाद उन्हें सन्यासियों की भाँति जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य किया जाता था। विभिन्न भारतीय समाज सुधारकों ने इस समस्या की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया तथा एक चेतना उत्पन्न की। विधवाओं के पुनर्विवाह सम्बन्धी कानून पारित किये जाने में चार व्यक्तियों का योगदान अत्यधिक महत्वूपर्ण था—ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, डी०के० कर्वे, वीरेशलिंगम पुन्तलू एवं विष्णु शास्त्री पंडित। इस सम्बन्ध में सामाजिक चेतना लाने में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर अग्रणीय रहे। इन्होंने अपना सारा जीवन विधवाओं के पुनर्विवाह करवाने में ही लगा दिया। 1855 ई० में इन्होंने 984 लोगों द्वारा हस्ताक्षरित विधवा पुनर्विवाह कानून बनाने सम्बन्धी याचिका अपनी सरकार को दी। इनकी अपील का अनुगमन करते हुए बर्दवान के राजा मेहताबचन्द्र तथा नदिया के राजा श्रीचन्द्र ने भी सरकार को इस आशय के प्रार्थना पत्र भेजे। गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी की कार्यकारिणी के सदस्यों ने इन सुझावों का स्वागत किया तथा 26 जुलाई 1856 ई० को विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित कर दिया। इस अधिनियम के नियम 15 द्वारा विधवाओं के पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता मिल गई।

सारांश (Summary)

- 1453 ई० में ऑटोमन तुर्कों ने एशिया माइनर तथा पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों पर अधिकार जमा लिया। इससे भारत और यूरोप के मध्य शताब्दियों से चला आने वाला व्यापार बंद हो गया। यूरोपवासियों ने

भारत के लिये नवीन सामुद्रिक मार्ग की खोज प्रारम्भ की। पहले पुर्तगाली आये तथा इस व्यापार से वाले लाभ को देखकर डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी भी आये।

- पुर्तगाली और डच तो धीरे-धीरे इस व्यापार से तथा भारतवर्ष से ही बाहर हो गये परन्तु अंग्रेजो फ्रांसीसियों के बीच यह संघर्ष लम्बा चला। अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच यह संघर्ष कर्नाटक यु नाम से जाने जाते हैं।
- 1744 से 1763 के बीच अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच तीन कर्नाटक युद्ध हुए जिसमें अंततः विजयी हुए तथा भारत में सत्ता स्थापित करने का फ्रांसीसियों का स्वप्न ही रह गया।
- ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया और धीरे अधिकाधिक अधिकार प्राप्त करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लिया। उन्होंने कलकत्ता की किले भी प्रारम्भ कर दी। अलीवर्दी खाँ जैसे बंगाल के नवाब अंग्रेजों की महत्वकांक्षाओं पर काबू रख परन्तु बाद में बंगाल के नवाब और अंग्रेजों का संघर्ष हुआ।
- बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने जब अंग्रेजों की महत्वाकांक्षाओं और प्रसार पर रोक लगानी शुरु अंग्रेजों ने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा तथा उसके स्थान पर मीरजाफर को बंगाल का नवाब की योजना बनाई। परिणामस्वरूप 1757 में प्लासी का युद्ध हुआ तथा बंगाल में अंग्रेजी प्रभुत्व, एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।
- अब अंग्रेजों ने बंगाल का खुलकर शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। मीरजाफर कुछ समय तक तो की माँगों को पूरा करता रहा परन्तु जब उसे राजकोष खाली होता दिखाई पड़ा तब उसने अंग्रेजों की के सामने झुकने से मना कर दिया। परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने मीरजाफर के स्थान पर उसके मीरकासिम को बंगाल का नवाब बना दिया।
- मीरकासिम का अंग्रेजों से संघर्ष हुआ और कई युद्धों में परास्त होकर वह अवध के नवाब शुजा की शरण में आ गया जहाँ मुगल सम्राट शाहआलम पहले से ही था। इन तीनों ने मिलकर अंग्रेजों करने का निश्चय किया।
- इन तीनों का अंग्रेजों से 1764 से युद्ध हुआ जो बक्सर के युद्ध के नाम से जाना जाता है। बक्सर यु विजय से बंगाल पर अंग्रेजों की पकड़ मजबूत हो गई और अवध का नवाब अंग्रेजों के पूर्ण नियन्त्र आ गया तथा सम्राट शाहआलम पूरी तरह अंग्रेजी सहायता पर आश्रित हो गया। इस प्रकार बक्सर के ने प्लासी के युद्ध के अधूरे कार्य को पूरा किया।
- क्लाइव ने बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना की जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक अधिकार तो कम्पनी के हाथों में आ गये जबकि सारे उत्तरदायित्व नवाब के जिम्मे रहे।
- हैदर अली ने हिन्दू शासन समाप्त करके मैसूर पर अपना अधिकार कर लिया। उसके द्वारा इस शक्ति बढ़ा लेने से मराठे, निजाम और अंग्रेज तीनों ही संशकित हो गये। अंग्रेजों का पहले तो हैदरअली से हुआ, फिर उसकी मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र टीपू सुल्तान से। अन्ततः चतुर्थ मैसूर यु अंग्रेजों को निर्णायक विजय प्राप्त हुई और अपनी राजधानी की रक्षा करता हुआ टीपू सुल्तान मारा ग
- अंग्रेजों का अगला शिकार बने मराठे। तीन आंग्ल मराठा युद्धों के बाद मराठा शक्ति पूर्णतः समा गई। पेशवा का पद समाप्त कर दिया गया तथा मराठा संघ को समाप्त कर दिया गया।

- ब्रिटिश सरकार ने समय-समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किये जिनके आधार पर भारत में ब्रिटिश शासन चलाया गया। इनमें पहला था 1783 में पारित किया गया रेग्यूलेटिंग एक्ट। इसके द्वारा बंगाल के गवर्नर को अब बंगाल का गवर्नर जनरल बना दिया गया तथा बम्बई और मद्रास के गवर्नरों को उसके अधीन कर दिया गया। गवर्नर जनरल की सहायता के लिये 4 सदस्यों वाली एक परिषद भी बनाई गई। इस अधिनियम के द्वारा कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था भी की गई।
- रेग्यूलेटिंग एक्ट के बाद अगला संवैधानिक कदम था 1784 का पिट्स इंडिया एक्ट। इस अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश सरकार का कम्पनी के मामलों पर तथा भारतीय प्रशसन पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया।
- शिक्षा के सम्बन्ध में भी समय-समय पर सुधार किये गये। भारतीय शिक्षा सम्बन्धी नीति-निर्धारण के सम्बन्ध में दो विचारधायें थीं—प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी। लौर्ड मैकाले यह चाहता था कि शिक्षा के माध्यम से एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जाये जो रंग और खून में तो भारतीय हो परन्तु रुचि, विचार, नैतिकता और बुद्धि से अंग्रेज हो।
- 1854 में वुड ने अपना घोषणा पत्र निकाला, लेकिन यह भी भारत के कल्याण से प्रेरित नहीं था। इसका उद्देश्य भी भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित कर उनको सरकारी नौकरियाँ देकर उन्हें अंग्रेजी सरकार का स्वामिभक्त बनाना था।
- 1882 में हंटर आयोग ने प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये, परन्तु जो सुझाव थे उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।
- 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् भारत में धार्मिक और सामाजिक सुधारों की लहर सी आ गई। 19वीं शताब्दी भारतीय नवजागरण के काल के रूप में उभरकर सामने आई। सर्वप्रथम जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ वह था राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज। उन्होंने उस समय के हिन्दू समाज में व्याप्त समस्त बुराईयों पर प्रश्न चिन्ह लगाया। उनके ही प्रयासों के परिणामस्वरूप 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा के विरुद्ध कानून पारित किया।
- ब्रह्म समाज के बाद दूसरे महत्वपूर्ण सुधारक थे स्वामी दयानन्द सरस्वती। उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की तथा भारतीयों को अपने पुनरुत्थान के लिये पाश्चात्य शिक्षा के स्थान पर वेदों का आश्रय लेने के लिये कहा। सम्पूर्ण आर्य समाज आन्दोलन स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेशी एवं स्वराज्य के स्तम्भों पर आधारित है। आर्य समाज ने गुरूकुल एवं डी०ए०वी० कॉलेजों की स्थापना की।
- स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में हुए विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया तथा भारत के दर्शन को विदेशों में प्रसारित किया। उन्होंने अपने गुरू रामकृष्ण के संदेश एवं शिक्षाओं के प्रसार के लिये रामकृष्ण मिशन की स्थापना की।
- ब्रिटिश शासन के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन के समस्त पहलुओं को लोकप्रिय बनाने में प्रेस की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। यद्यपि समय-समय पर प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाये जाते रहे परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान जनता को शिक्षित करने, जनता को ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध संगठित करने आदि के माध्यम से स्वतन्त्रता आन्दोलन को मजबूत करने में प्रेस की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही।

- आधुनिक युग से संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। बहुत सारे पाश्चात्य वि विश्व को संस्कृत साहित्य से परिचित कराया तथा उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिय उल्लेखनीय हैं जेम्स प्रिंसेप, डबल्यू० सी० टेलर एवं मैक्समूलर आदि।
- हिन्दी गद्य को विकसित करने में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा भारतेन्दु, हरिश्च भूमिका महत्वूर्ण रही। पद्य के विकास में वियोगी हरि, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, जयशंकर सुमित्रानन्दन पंत तथा महादेवी वर्मा आदि की भूमिका महत्वपूर्ण रही।
- उर्दू गद्य और पद्य के विकास में मिर्जा मुहम्मद गालिब एवं सरसैय्यद खां की भूमिका महत्वपूर प्रगतिवादी उर्दू शायरों में जोश, फैज और फिराक तथा उपन्यासकारों में शौकल थानवी तथा अहमद अब्बास की भूमिका महत्वपूर्ण रही।
- संस्कृत, उर्दू एवं हिन्दी के अतिरिक्त विभिन्न देशी भाषाओं में भी पर्याप्त साहित्य लिखा गया। इनमे भारत की असमिया, बंगला, गुजराती, मराठी, उड़िया, पंजाबी, सिन्धी और कश्मीरी तथा दक्षिण भ भाषाओं में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में पर्याप्त साहित्य की रचना हुई।
- भारत में ब्रिटिश शासकों ने यद्यपि आर्थिक रूप में भारत का शोषण किया परन्तु अनेक सामाजिक भी किये। भारत में अनेक सामाजिक कुरीतियाँ विद्यमान थीं जिनके विरूद्ध समाज सुधार समय-समय पर आवाज उठाई। इसी के परिणामस्वरूप अंग्रेज शासकों ने सती प्रथा, ठगी, शि. नरबलि प्रथा तथा दास प्रथा को समाप्त करने के लिये कानून बनाये। इसके अतिरिक्त विधवा पुना को भी कानूनी मान्यता प्रदान की गई।

अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

1. आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष के कारण बताइए।
2. पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम तथा महत्व का वर्णन कीजिए।
3. 'प्लासी युद्ध' के कारण एवं परिणामों की समीक्षा कीजिए।
4. अंग्रेजों की शिक्षा पर एक टिप्पणी लिखिए।
5. भारत में यूरोपियनों का आगमन एवं कर्नाटक की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
6. कर्नाटक युद्ध के कारण एवं महत्व का वर्णन कीजिए। फ्रांसीसियों की हार के कारण बताइए।
7. बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला तथा अंग्रेजों के मध्य विवाद के कारणों को स्पष्ट करें।
8. अंग्रेजों की मैसूर नीति को विस्तार से लिखिए।
9. बक्सर युद्ध के कारण एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।
10. द्वैध शासन क्या था? बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना का वर्णन कीजिए।
11. प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध पर प्रकाश डालिए।
12. प्रेस की भूमिका का प्रकाश डालिए।
13. सुधार आन्दोलन में राजा राम मोहन राय के योगदान पर प्रकाश डालिए।
14. आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
15. ब्रिटिश सरकार द्वारा किए गए कुछ सामाजिक सुधारों पर प्रकाश डालिए।

संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. भारतीय इतिहास: मानिक लाल गुप्ता, अटलांटिक पब्लिशर्स।
2. भारतीय इतिहास: एक समग्र अध्ययन-शर्मा, मनोज कुमार, पियर्सन एजूकेशन।
3. भरतीय इतिहास का वैदिक युग (Vol-1) एस०एल० नागौरी, कांता नागौरी, पांइटर पब्लिशर्स।

❑❑❑

इकाई (Unit)

5

मराठा शक्ति का उत्कर्ष (1627–1707 ई०)

[Rise of Maratha Power (1627–1707 A.D.)]

संरचना

- उद्देश्य (Objectives)
- विषय प्रवेश (Introduction)
- मुगल साम्राज्य के पतन के कारण (Reasons for the Downfall of Mughal Empire)
- मराठा-शक्ति के उत्कर्ष के कारण (Reasons for the Rise of Maratha Power)
- छत्रपति शिवाजी (1627–1680 ई०) [Chhatrapati Shivaji (1627–1680 A.D.)]
- सारांश (Summary)
- अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
- संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक समझ सकेंगे—

- मुगल साम्राज्य के पतन के कारण।
- मराठा शक्ति के उत्कर्ष के कारण।
- छत्रपति शिवाजी का जीवन और कार्य।
- शिवाजी की धार्मिक नीति।

विषय प्रवेश (Introduction)

दक्षिण भारत में मराठा शक्ति का उदय किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी विशेष संगठन अथवा संग के प्रयास का परिणाम नहीं था और न ही यह कोई आकस्मिक घटना अथवा दैविक चमत्कार था। इस शक्ति उदय का आधार था समस्त जनता का सामूहिक रुप से योजनाबद्ध संगठित रूप से निरंतर प्रयास, उनकी भा धर्म, साहित्य, निवास और राजनैतिक और आर्थिक एकता और संगठन ने राष्ट्रीयता की भावना को जा किया और एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना के लिए प्रेरित किया।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण (Reasons for the Decline of Mughal Empire

लगभग: 175 वर्ष के गौरवपूर्ण शासन के उपरान्त मुगल-साम्राज्य का पतन हुआ। विभिन्न इतिहासक ने मुगल-साम्राज्य के पतन के कारणों का विभिन्न प्रकार से विवेचन किया है। मुगल-शासन एक प्रकार पुलिस-शासन ही बन कर रहा। मुगल बादशाहों का लक्ष्य साम्राज्य की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना अ आंतरिक शांति की स्थापना ही रहा। इसी मे उनके सम्मान और शक्ति की सुरक्षा निहित थी। उत्तरकालीन मुग बादशाह इन दायित्वों को भी नहीं निभा सके। अत: जनता उनसे पृथक रही और स्थानीय सरदारों अथ

सूबेदारों द्वारा स्वतंत्र राज्यों की स्थापना से वे उदासीन रहे। उनका सोचना था–"कोहोपति हमे का हनी" इसके विपरीत, जिस प्रशासक ने उन्हें सुरक्षा और शांति प्रदान की, उसका जनसाधारण ने स्वागत किया। यद्यपि **नौ-सेना का अभाव** मुगल-साम्राज्य की दुर्बलता अवश्य थी परंतु प्रत्यक्ष रुप से उसके पतन के लिए उत्तरदायी नहीं था। नौ-सेना के अभाव से उत्पन्न दुर्बलता उस समय प्रकट हुई जब 16वीं शताब्दी में यूरोप के निवासी भारत आये और समुद्र पर अधिकार स्थापित करके उन्होंने भारत के विदेशी व्यापार पर नियंत्रण कर किया। विदेशी व्यापार के लिये यूरोप के व्यापारियों पर निर्भरता ने भारतीय शासकों को उन्हें व्यापारिक सुविधाएँ देने के लिए बाध्य किया जिस कारण अंत में उन्हें भारत में अपना राज्य स्थापित करने का मौका मिला। मुगल विदेशी वास्तव में आक्रांता थे और प्रयत्न करने पर भी वे **भारतीयों को यह विश्वास नही दिला सके कि उनका शासन विदेशियों का शासन नहीं था।** ऐसी स्थिति में भारतीयों में जो शक्तिशाली था उसी को अपना शासक मान लिया। **18वीं शताब्दी में मुगल-साम्राज्य जनता की जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी असमर्थ हो गया।** कृषि-भूमि की कमी और लगान वसूल करने में ठेकेदारी-व्यवस्था ने राज्य और किसान दोनों की आर्थिक दशा कमजोर कर दी जिससे राज्य तो दुर्बल हुआ और जनसाधारण की राज्य के प्रति सहानुभूति नहीं रही। **बौद्धिक पतन** भी मुगल-सम्राज्य के पतन का कारण बन गया। मुगलों के अधिकांश शासनकाल में शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं रही और जो थी भी वह समय के अनुकूल नहीं थी। उसमें तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा का पूर्ण अभाव था और उदार मानवीय भावनाओं के विकास में सहयोग दूर की बात थी। परिणाम यह हुआ कि, प्रशासन को योग्य व्यक्ति मिलने नसीब नहीं हो सके। **उत्तराधिकार के नियम न होने** के कारण प्रत्येक बादशाह की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन के लिए युद्ध की आशंका बनी रहीं और युद्ध भी हुए जिनमें जन-जीवन, प्रशासन, कृषि, व्यापार आदि नष्ट हुए और दरबार में प्रतिद्वंद्वी गुटबंदियां हुई। **मुगल-सेना का दुर्बल हो जाना** भी मुगल-साम्राज्य के पतन का एक कारण बना। यह भी सत्य है कि उसकी शक्तिहीनता का प्रमुख कारण जागीरदारी या मनसबदारी-प्रथा का असफल हो जाना था। अकबर के समय में मुगल-सेना अजेय बन गयी थी किन्तु बाद के बादशाहों के समय में स्त्रियों, रखैलों और वेश्याओं को युद्ध भूमि पर ले जाना आरंभ करने से सेना का चारित्रिक पतन हुआ और सेना की गतिशीलता भी कम हो गयी। जागीरदारी-प्रथा पर आधारित संगठित सेना, नि:संदेह अयोग्य शासकों के समय में शक्तिहीन हो गयी। मध्य-युग में सैनिक-शक्ति के अभाव में कोई साम्राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता था। मुगल-साम्राज्य के साथ भी ऐसा ही हुआ। **राजदरबार की दलबंदी** भी मुगल-साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी, मुख्यतया तब जब मुगल बादशाह दुर्बल हो गये। बादशाहों की दुर्बलता का एक परिणाम दलबंदियाँ थीं परंतु सरदारों की महत्तवाकाक्षा भी इसके लिए उत्तरदायी थी। उत्तरकालीन मुगल बादशाहों के शासनकाल में इन दलबंदियों ने शासक के अधिकारों का हनन करके साम्राज्य को दुर्बल बना दिया। **मराठों के** उत्तरी भारत पर आक्रमण, नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली द्वारा हुए विदेशी आक्रमणों ने मुगल-साम्राज्य की शक्ति और सम्मान को नष्ट करने में साथ दिया। यह भी माना जा सकता है कि ये आक्रमण हुए भी इस कारण कि मुगल-साम्राज्य पतन की ओर चल चुका था। **उत्तरकालीन मुगल बादशाहों का नैतिक पतन और अयोग्यता** और उनका अनुसरण करते हुए **मुगल सरदारों का** नैतिक पतन और उनकी अयोग्यता भी मुगल-साम्राज्य के पतन का कारण बनी, किन्तु यह भी उतना ही समीचीन है कि विलासप्रियता से अधिक बादशाहों और सरदारों की अयोग्यता मुगल-साम्राज्य के पतन के लिये अधिक उत्तरदायी थी क्योंकि विलासप्रिय तो औरंगजेब के अतिरिक्त सभी मुगल बादशाह थे। परंतु उत्तरकाल के शासक अयोग्य और गैर जिम्मेदार सिद्ध हुए जबकि पूर्व मुगल शासक ऐसे नहीं थे। **आर्थिक पतन** नि:संदेह, मुगल-साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी था। यह संकट शाहजहाँ के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। शासको की विलास प्रियता और शौक, जागीरदारी-प्रथा की असफलता, कृषि-भूमि की कमी, भूमि को ठेके पर दिया जाना आदि ऐसे कारण थे

जिनसे साम्राज्य और प्रजा दोनों की आर्थिक हानि हुई और राज्य अपनी आय से अपने व्यय की पूर्ति करने असमर्थ हो गया। इसका कुप्रभाव असैनिक और सैनिक प्रशासन दोनों पर पड़ा। औरंगजेब के शासनकाल आर्थिक संकट और बढ़ गया तथा उत्तरकालीन बादशाहों के शासनकाल में तो अर्थव्यवस्था असाध्य हो गय ऐसी स्थिति में साम्राज्य का पतन अवश्यभावी था। डॉ० विपिनचंद्र के मतानुसार "**भारत में राजनीति राष्ट्रीयता का अभाव मुगल-साम्राज्य के पतन का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक कार था।**" नि:संदेह, राष्ट्रीयता की भवना यूरोप में भी 18 वीं शताब्दी के अंतिम चरण में उत्पन्न हुई और भारत मुगल-काल में उस मावना के उत्पन्न होने का प्रश्न नहीं था। परंतु ब्रिटेन और फ्रांस जैसे राष्ट्र अपने पृथ अस्तित्व को समझते थे और वहाँ के नागरिकों में राष्ट्रीयता के अभाव में भी एक राजनीतिक इकाई होने व भाव उदित हो गया था। भारत की आर्थिक, राजनीतिक, जातीय और सामाजिक व्यवस्था उस समय ऐसी न बनी जो भारतीयों को एक राज्य के नागरिक होने की और उसके प्रति वफादार होने की भावना उत्पन्न करती राष्ट्र के निर्माण की आधारशिला बनती। इस भावना के उपस्थित न होने के कारण भी मुगल-साम्राज्य का पत अवश्यभावी हुआ। **औरंगजेब का मुगल-साम्राज्य के पतन में क्या उत्तरदायित्व था, इसके विषय में थो मतभेद है।** औरंगजेब की दक्षिण-नीति मुगल-साम्राज्य के पतन के लिए विशेष रुप से उत्तरादायी थी, इ विषय में कोई दो मत नहीं है। इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि यदि औरंगजेब ने दक्षिण मुसलमान-राज्य बीजापुर और गोलकुंडा को नहीं छेड़ा होता तो मराठों का उससे प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं होत मुगल-साम्राज्य की आर्थिक और प्रशासकीय समस्याएँ नहीं बढ़ती और मराठे तथा दक्षिण के ये मुस्लिम-रा पारस्परिक संघर्ष में लगे रहते। औरंगजेब की दक्षिण में राज्य-विस्तार की नीति, नि:संदेह, मुगल-साम्राज्य लिए कठिनाई और संकट उत्पन्न करने वाली सिद्ध हुई। औरंगजेब की धार्मिक नीति को लेकर भी विवाद आधुनिक समय में इतिहासकारों ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि औरंगजेब की नीति धार्मिक असहिष्णुता व नहीं थी। यदि यह यथार्थ है तो हिंदुओं अथवा राजपूतों के विद्रोहों का होना, साम्राज्य की एकता का नष्ट जाना आदि का दोष औरंगजेब पर नहीं लगाया जा सकता। परंतु यह निर्णय करना कठिन है कि औरंगजेब व नीति धार्मिक असहिष्णुता की थी अथवा नही। अत: यह प्रश्न विवादास्पद ही बना रहेगा।

मुगल-साम्राज्य के पतन के विषय में एक और विचार नोमन अहमद सिद्दीकी ने प्रकट किया है। उनव मानना है कि **राजनीतिक, प्रशासनिक और कृषि-संकट** सम्मिलित रुप से मुगल-साम्राज्य के पतन के लि उत्तरदारी थे। औरंगजेब के बाद के समय में जागीरदारी-प्रथा बदली हुई राजनीतिक और कृषि की स्थिति व साथ देने में ना कामयाब रही। एक तरफ जागीरों में कमी आयी और दूसरी तरफ उमरा-वर्ग के सदस्यों में वृ हो रही थी। इस कारण एक तरफ कागजों में जागीरों की आय को वास्तविक आय से अधिक दिखाया गया व हानिकारक हुआ और दूसरी तरफ पुराने मनसबदारों या जागीरदारों और नवीन मनसबदारों में अच्छी जागी को प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा हुई। औरंगजेब के पश्चात जागीरों की कमी का संकट और भी बढ़ गया क्यों। बहादुरशाह प्रथम ने मनसब देते हुए जागीरों की कमी होने का ध्यान नहीं रखा। इससे स्थिति यह बन गयी थ मनसबदारों को खालसा-भूमि (बादशाह की भूमि) से जागीर दी गयीं। अत: जब तक मुहम्मदशाह सिंहासन प बैठा तब तक खालसा-भूमि का बहुत बड़ा भाग जागीरों के रुप में उमरा-वर्ग को दिया जा चुका था। इस बादशाह की भूमि से प्राप्त होने वाली आय में बहुत कमी आ गयी। किन्तु फिर भी जागीरों की माँग में कमी न आयी अत: उमरा-वर्ग में असंतोष फैल गया जिससे राजनीतिक संतुलन बिगड़ गया। जागीरों की वास्तवि आय कागजों में दिखायी जाने वाली आय से कम होने लगी और इस कारण जागीरदारों ने अपने सैनिकों व संख्या में कमी कर दी। वे उतने सैनिक नहीं रख पाये जितनी उनसे आशा की जाती थी। इससे साम्राज्य व सैनिक-शक्ति दुर्बल हो गयी। प्रशासन पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा। प्रशासकीय अधिकारी भी उतनी आ प्राप्त नहीं कर पाते थे जितनी उनकी जागीरों की आय दिखायी गयी थी। अत: उन्होंने अपने प्रशासनिक व्यय

कमी कर दी जिसके फलस्वरुप प्रशासन में ढीलापन आ गया। प्रो० सिद्दीकी भी यह स्वीकार करते हैं कि छोटे जागीरदारों और ठेकेदारों द्वारा किसानों पर अनुचित दबाव डाला गया जिससे अनेक स्थानों पर खानदानी ज़मींदार समाप्त हो गये और उनका स्थान शहर से आये हुए महाजनों ने ले लिया तथा किसान कृषि कार्य छोड़कर विद्रोह करने के लिए बाध्य हुए या उन जमींदारों के संरक्षण में चले गये जो विद्रोही थे। इस प्रकार प्रो० सिद्दीकी के अनुसार शासन की दुर्बलता, जागीरों की कमी, दरबारियों की बढ़ती हुई लालसाएं एवं दलबंदिया, सैनिक-शक्ति में कमी आदि के कारण मुगल-साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हुआ।

इसके अतिरिक्त औरंगजेब के बाद वजीर के पद योग्य व्यक्ति को नहीं बल्कि राजनीतिक दलबंदी और उनकी आर्थिक एवं सैनिक क्षमता के आधार पर दिया गया। उस स्थिति में जबकि शासक स्वयं अयोग्य थे तथा उनकी भूमि, आय और सैनिक-शक्ति में निरंतर कमी आ रही थी, वजीर बादशाह के प्रतिद्वंद्वी के रुप में उभरा जिससे उमरा-वर्ग की दलबंदियाँ भी बढ़ी। सिंहासन के लिए उमरा-वर्ग के सदस्यों की सहायता लेना भी उत्तरकालीन मुगल बादशाहों की दुर्बलता का एक कारण बना। बाद के समय में वजीर या दीवान ने सहयोगी उमरा-वर्ग की सहायता से बादशाह बनाये और हटाये तथा अपने हाथों मे शक्ति रखने के लिए विभिन्न गुटों या उनके सरदारों ने अपने से बाहर की शक्तियों की भी सहायता ली। इन सभी ने, निःसंदेह, मुगल-साम्राज्य के पतन में भाग लिया।

मराठा शक्ति के उत्कर्ष के कारण (Reasons for the Rise of Maratha Power)

वास्तव में अंग्रेजों ने भारत का साम्राज्य मुगलों से नहीं बल्कि मराठों से प्राप्त किया था। तत्कालीन मुगल बादशाहों की शक्ति बहुत दुर्बल तथा सीमित हो गयी थी। 18 वीं शताब्दी में मराठे भारत की श्रेष्ठ शक्ति बन गये थे। अत: यह कहना यथोचित है कि भारत की राजसत्ता के लिए अंग्रेजों को वास्तव में हिंदू-मराठों से संघर्ष करना पड़ा था।

जी०एस० सरदेसाई के अनुसार 'मराठा' शब्द की उत्पत्ति राठा (Ratthas) शब्द से हुई है। महाराष्ट्र में इनकी शक्ति का उदय हुआ। दक्षिण-पश्चिम भारत का वह भाग जो पश्चिम में अरब सागर से लेकर उत्तर में सतपुड़ा पर्वत तक फैला हुआ है और जिसमें आधुनिक बंबई का राज्य, कोंकण प्रदेश, खानदेश, बरार, मध्य-भारत का कुछ भाग और हैदराबाद राज्य का प्राय: एक-तिहाई भाग सम्मिलित है, मराठावाद के नाम से जाना जाता था। भारत के इसी भाग को महाराष्ट्र कहा गया है, जहाँ के निवासियों की मुख्य भाषा मराठी है। यहीं पर मराठा-शक्ति का उदय हुआ।

मराठा-शक्ति का उत्कर्ष किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्ति-समूह का कार्य नहीं था और न किसी विशेष समय में उत्पन्न हुई कुछ अस्थायी परिस्थितियों का ही परिणाम था। मराठा-शक्ति के उदय का आधार महाराष्ट्र के समास्त निवासी थे जिन्होंने जाति, भाषा, धर्म, साहित्य और निवास-स्थान की एकता के आधार पर राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया था और उस राष्ट्रीयता को संगठित करने के लिए एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की इच्छा की थी। मुसलमानों द्वारा भारत की विजय पूर्ण हो जाने के पश्चात् स्वतंत्र राज्य की स्थापना के लिए हिंदू धर्मावलग्वियों का यह प्रथम प्रयास था और यह प्रयास एक ऐसा राष्ट्रीय आंदोजन बन गया जिसमें सभी वर्गों और व्यक्तियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। मराठों के उत्कर्ष का इतिहास मुसलमानों की राजनीतिक दुर्बलता से लाभ उठाकर हिंदू राष्ट्रीयता के निर्माण का ऐसा इतिहास है जिसमें संपूर्ण महाराष्ट्र के समस्त निवासियों ने भाग लिया। यही वह शक्ति थी जिसके आधार पर मराठा-नेताओं ने भारत में 'हिंदू-बादशाही' के निर्माण का स्वप्न देखा था और दिल्ली के साम्राज्य को अपने हाथ में लेकर भारत की शक्तियों को एक शक्ति की अधीनता में लाने का प्रयास किया तथा यही वह शक्ति थी जिसके बल पर मराठे

बड़े से बड़े संकट को सहन कर सके। मराठा-शक्ति के उत्कर्ष का इतिहास एक जन-समूह के उत्
इतिहास है और एक ऐसे उद्वेग का इतिहास है जो संपूर्ण महाराष्ट्र की जनता में व्याप्त था।

इस शक्ति के निर्माण और उत्कर्ष में विभिन्न परिस्थितियों का योगदान रहा। **महाराष्ट्र की भौग**
स्थिति मराठा-शक्ति के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुई। महाराष्ट्र का अधिकांश भाग पठार है जहाँ जी
सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को प्रकृति से कठोर संघर्ष करना पड़ता है। इससे वहाँ के
परिश्रमी और साहसी होते हैं। वहाँ आक्रमणकारी के लिए बहुत कठिनाइयाँ होती थीं तथा सेना को लेकर
और उसके लिए रसद प्राप्त करना कठिन होता था, जबकि सुरक्षा के लिए वहाँ अनेक सुविध
स्थान-स्थान पर सरलता से पहाड़ी किले बनाये जा सकते थे जिनकी सुरक्षा करना सरल था परंतु उनको
उतना ही कठिन होता था। गुरिल्ला युद्ध-पद्धति अथवा छापामार-नीति का प्रयोग वहाँ सरलता से संभ
था। इसके अतिरिक्त, भारत उप-महाद्वीप के बीच में स्थित होने के कारण वहाँ के निवासियों के लि
और दक्षिण दोनों दिशाओं में प्रगति करने की सुविधा थी।

आर्थिक दृष्टि से महाराष्ट्र के निवासियों में अधिक आर्थिक असमानता न थी। व्यापारी
अतिरिक्त वहाँ धनवान व्यक्ति अधिक नहीं थे। इसका कारण यह था कि **आर्थिक शोषण करने वाले**
महाराष्ट्र में अभाव था। इससे महाराष्ट्र-निवासियों का चिरत्र उत्तम बना था, वे परिश्रमी और साहसी थे
समानता की भावना थी, वे ऊँच और नीच की भावन से ऊपर थे तथा वे उस भोग-विलास से बचे
जिसके कारण उत्तर-भारत का समाज खोखला होता जा रहा था।

सामाजिक दृष्टि से महाराष्ट्र में कठोर विभाजन नही था। 15 वीं और 16 वीं शताब्दी के धर्म
और भक्ति-आंदोलन सामाजिक और धार्मिक सुधार लिये थे तथा जातीय समानता को शक्तिशाली बन
महाराष्ट्र में राजनीतिक चेतना से पूर्व सामाजिक और धार्मिक चेतना उत्पन्न हो गई थी। इसके अ
दक्षिण-भारत का धार्मिक और सामाजिक आंदोलन किसी एक वर्ग का आंदलोन नहीं था अपि
जनसाधारण का आंदोलन था। इस आंदोलन का नेतृत्व उन व्यक्तियों ने किया था जिनमें से अधिकांश
के निम्न वर्ग से थे। तुकाराम, रामदास, वामन पंडित और एकनाथ जैसे संत और दार्शनिक आन्दोलन की
थे। यह आंदोलन ब्राह्मणों की श्रेष्ठता, ऊँच-नीच की भावना, जाति-व्यवस्था और कर्मकांड के विरु
इसने विश्वास, आस्था और भक्ति के द्वारा हर प्राणी को ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग बताया गया
आंदोलन ने धार्मिक और सामाजिक एकता तथा सरलता का मार्ग प्रशस्त किया, महाराष्ट्र के समा
जन-जीवन को संगठित किया तथा उसमें एकता की उस भावना का प्रतिपादन किया जिससे राष्ट्रीय
निर्मित होती है। इतिहासकार रानाडे ने महाराष्ट्र में उत्पन्न राजनीतिक उथल-पुथल का प्रमुख कारण
धार्मिक-आंदोलन को बतलाया है और यह वास्तविकता है कि महाराष्ट्र के विभिन्न संतों ने मराठों की
भावना का पोषण किया। विभिन्न संतों के भजनों, उपदेशों आदि ने अशिक्षित मराठों की भावनाओं को
से प्रभावित किया और उनके अपने अत:करण में अपने धर्म और समाज की रक्षा की भावना को जन्म दि

छत्रपति शिवाजी (1627–1680 ई०) [Chhatrapati Shivaji (1627–1680 A.D.]

(1) जीवन और कार्य

शिवाजी का जन्म 20 अप्रैल, 1627 ई० को पूना के उत्तर में स्थित जुन्नान नगर के निकट शिवनेर
हुआ। उनके पिता का नाम शाहजी भौंसले था और माता का नाम था जीजाबाई। जीजाबाई देवगिरि निवा
जागीरदार यादवराय की पुत्री थी। शाहजी भौंसले ने न केवल अहमदनगर राज्य में शक्ति और सम्मा
किया था अपितु वह बीजापुर राज्य में भी प्रतिष्ठा के पद पर आसीन थे। वह युद्ध, शासन और विद्व

संरक्षण देने की दृष्टि से बीजापुर में विख्यात थे। इस प्रकार शिवाजी के पिता एक शक्तिशाली और सम्मानित सामंत थे। परंतु शाहजी ने तुकाबाई मोहिते नामक एक अन्य स्त्री से विवाह कर लिया था और जीजाबाई रुष्ट होकर अपने पुत्र शिवाजी को लेकर अपने पति से अलग रहती थीं। स्पष्ट है शिवाजी को पिता का संरक्षण प्राप्त नहीं हो सका। परंतु ऐसा भी नही है कि शाहजी ने अपने पुत्र पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। शाहजी ने अपने वफादार और योग्य सेवक दादाजी कोंणदेव को शिवाजी की शिक्षा और दीक्षा के लिए नियुक्त किया था। 12 वर्ष की आयु में शिवाजी को अपने पिता से पूना की जागीर प्राप्त हो गयी थी। 1640 ई० में 12 वर्ष की आयु में शिवाजी का विवाह साईबाई निम्बालकर नाम की कन्या से कर दिया गया। शिवाजी ने 'मावल प्रदेश' को अपने जीवन की प्रारंभिक कर्मभूमि बनाया। इसके अतिरिक्त शाहजी ने अपने पुत्र की सहायता के लिए बाद में भी कुछ योग्य अधिकारी भेजे जो उनके सहायक बन गए। शिवाजी ने अपनी माँ से साहस, दृढ़-निश्चय, अत्याचार का विरोध और धर्म के प्रति रुचि अर्जित की। शिवाजी के व्यक्तित्व पर सर्वाधिक प्रभाव उनकी माँ जीजाबाई का पड़ा। माँ के अतिरिक्त शिवाजी अपने गुरु एवं संरक्षक 'दादाजी कोंणदेव' से भी प्रभावित थे। साहित्यिक शिक्षा में शिवाजी की रुचि नहीं थी परंतु युद्ध और साहसिक कार्यों के लिए वह सदैव तत्पर रहते थे। यह सर्वथा सत्य है कि उनके चरित्र-निर्माण में जीजाबाई (उनकी माँ) का बहुत बड़ा सहयोग था और यही उनकी सफलता का प्रमुख कारण बनी।

आरंभ से ही शिवाजी का लक्ष्य एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना था। उन्हें किसी भी मुसलमान शासक के जागीरदार का रूप में जीवन व्यतीत करना स्वीकार नहीं था। इस विषय पर उनका अपने संरक्षक कोंणदेव से भी मतभेद था। महाराष्ट्र में एक स्वतंत्र हिंदू-राज्य की स्थापना करना उनका प्रमुख लक्ष्य था। शिवाजी का प्रारंभिक लक्ष्य मुसलमान सत्ता से हिंदुओं को मुक्ति दिलाना नहीं था। सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है: 'उन्हें एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना की लालसा सदैव रही परंतु अपने को हिंदुओं का उद्धारकर्ता उन्होंने बहुत बाद के समय के अतिरिक्त कभी नहीं माना।'' इस प्रकार **हिंदू-धर्म की रक्षा की भावना उनके हृदय में थी। परंतु उनका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक स्वतंत्रता था।** साथ ही यह बात भी स्पष्ट है कि उन्होंने हिंदुओं की धार्मिक भावना से प्रेरणा ली थी और वह धर्म की रक्षा करना भी अपना एक मुख्य कर्तव्य मानते थे।

एम०जी०रानाडे ने शिवाजी के जीवन काल को चार भागों में बाँटकर उनके उद्देश्य को स्पष्ट किया है। आरंभ के छ: वर्षों में शिवाजी का उद्देश्य आसपास के मराठा सरदारों को अपने साथ लेकर संगठित करना और अपनी रक्षा का प्रयत्न करना मात्र था। इस प्रारंभिक कार्य की पूर्ति के पश्चात् उन्हें बीजापुर-राज्य से संघर्ष करना पड़ा। अगले दस वर्ष तक अपनी स्वयं की रक्षा, राष्ट्रीय तत्वों को एकत्रित करना और अपनी सीमाओं का विस्तार करना उनका लक्ष्य रहा। बीजापुर-राज्य के निरंतर प्रयत्नों और उसके श्रेष्ठतम सेनापतियों से संघर्ष के बावजूद भी शिवाजी ने अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफलता प्राप्त की। उनके जीवन के तीसरे भाग (1662–1672 ई०) में उनका प्रमुख संघर्ष दक्षिण की ओर बढ़ती हुई मुगलों की शक्ति से हुआ और अंत में इसमें भी वह सफल हुए। अपने जीवन के चौथे और अंतिम काल में (1674–1680 ई०) में शिवाजी ने अपने स्वतंत्र राज्य को घिवतत् स्थापित किया, अपना राज्याभिषेक कराया और 'छत्रपति' 'हैंदव (हिंदू) धर्मोद्धारक' एवं 'गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक' की उपाधि में अपने आप को विभूषित किया। इस प्रकार, आत्मरक्षा और स्वतंत्र-राज्य की स्थापना की भावना प्रारम्भिक काल से अंत तक उनके जीवन का उद्देश्य रहा और इसी भावना के कारण वीजापुर और मुगलों से उनका संघर्ष हुआ। बीजापुर-राज्य अथवा मुगलों से उनका कोई विवाद नहीं था यदि बीजापुर अपने को कर्नाटक में सीमित रखता और मुगल अपने को उत्तर-भारत में सीमित रखते और उनमें से कोई भी महाराष्ट्र को अपनी अधीनता में लेने का प्रयत्न न करता। शिवाजी मुगल-आधिपत्य को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर थे यदि मुगल बादशाह उनको उनके प्रदेश में स्वतंत्र छोड़ देता। कदाचित इसी उद्देश्य से वह आगरा भी गये थे। **शिवाजी ने हिंदू-राजाओं को एकत्रित करके**

मुसलमानी राज्य को समाप्त करने का लक्ष्य कभी नहीं बनाया। उनका एकमात्र उद्देश्य दक्षिण-भारत में राज्य की स्थापना करना था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए और मुगलों को ताप्ती नदी तक सीमित रखने वह बीजापुर और गोलकुंडा की सहायता करने के लिए तत्पर थे। इसीलिये जब मुगलों ने बीजापुर डाला तब शिवाजी ने बीजापुर (जिससे उनका निरंतर संघर्ष रहता था) की सहायता की थी। इस **शिवाजी का मूल उद्देश्य मराठों की बिखरी हुई शक्ति को संगठित करके महाराष्ट्र में स्वतंत्र हिंदू की स्थापना करना था।**

दादाजी कोंणदेव के संरक्षण के काल में शिवाजी ने पूना के निकटवर्ती दुर्गों को जीतना आरं दिया था। कोंणदेव शिवाजी के इस कार्य से सहमत नहीं थे परंतु वह शिवाजी को इस कार्य से रोक सके। 1647 ई० में कोंणदेव का स्वर्गवास हो गया और शिवाजी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र हो गये। उस समय शिवाजी की आयु 20 वर्ष थी। उनके साथ अनेक साहसी और योग्य मराठा मिल गये। उनके पिता शाहजी ने 1639 ई० में श्यामजी नीलकंठ, बालकृष्ण दीक्षित, सेनाजी पंत रघुनाथराव बल्लाल जैसे योग्य व्यक्तियों को सहायतार्थ उनके पास भेजा। शिवाजी ने तुकोजी और नरा जैसे योग्य व्यक्तियों को स्वयं साथ लिया। 1643 ई० में शिवाजी ने बीजापुर से सिंहगढ़ के किले को जीत उसके पश्चात् एक-एक करके उन्होंने चाकन, पुरंदर, बारामती, तोर्ना, सूपा, तिकोना, लोहगढ़, रायरी (जो बाद में उनकी राजधानी बना) आदि विभिन्न किले अपने अधिकार में ले लियें 1648 ई० में शिव 'पुरंदर के किले' को छल करके नीलोजी नीलकंठ से छीन लिया। शिवाजी का उस समय तक बीजापुर सीधा संघर्ष नहीं हुआ था। सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह उस समय (1646–1656 ई०) अस्वस्थ थ शिवाजी ने उसके दरबार के बहुत से सरदारों को रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर लिया था। इस प्रकार, **ई० तक शिवाजी बिना कोई बड़ा संघर्ष किये विभिन्न मराठा सरदारों को संगठित करने, विभिन्न पर अधिकार करने तथा महाराष्ट्र और कोंकण प्रदेश के कुछ भाग पर अधिकार करने में सफल हो थे।**

25 जनवरी, 1656 ई० में शिवाजी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विजय जावली की थी। जावल मराठा सरदार चंद्रराव के अधिकार में था और वह शिवाजी के विरुद्ध बीजापुर-राज्य से मिला हुआ शिवाजी ने चन्द्रराव की हत्या कर दी और किले पर अधिकार कर लिया। इससे उनका राज्य-वि दक्षिण-पश्चिम की ओर संभव हो सका अप्रैल 1656 ई० में शिवाजी ने 'रायगढ़' को अपनी राजधानी किया।

1657 ई० में शिवाजी का सामना पहली बार मुगलों से हुआ। दक्षिण के सूबेदार शाहजादा औ ने गीजापुर पर आक्रमण किया और बीजापुर ने शिवाजी से सहायता की याचना की। यह सोच कर कि में मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना आवश्यक है, शिवाजी ने बीजापुर की सहायता करने के उद्दे मुगलों के दक्षिण-पश्चिम भाग पर आक्रमण कर दिया। इसी समय शिवाजी ने जन्नार को लूट स्थान-स्थान पर आक्रमण करके मुगलों को असहज कर दिया। परंतु जब बीजापुर ने मुगलों से संधि क तब शिवाजी ने मुगलों पर आक्रमण करने बन्द कर दिये। उत्तराधिकार के युद्ध के कारण मुगलों को प्रा वर्ष तक दक्षिण-भारत की ओर देखने का अवकाश ही नहीं मिला। इस अवसर का लाभ उठाकर शिवा सर्वप्रथम कोंकण को जीत लिया।

इधर बीजापुर मुगलों से मुक्त होकर शिवाजी की शक्ति को दबाने के लिए तत्पर हो गया। 1 **ई० में बीजापुर-राज्य ने अपने एक प्रख्यात सरदार अफजलखाँ को शिवाजी को कैद करने य डालने के लिए नियुक्त किया।** उसके साथ लगभग 10 हजार घुड़सवार और एक अच्छा तोपखान

अफजलखाँ ने मार्ग में आते हुए मंदिरों को तोड़ा, गाँवों को उजाड़ दिया और इस प्रकार के उत्पात और कारनामें किये कि शिवाजी आतंकित हो जायें। वाई नामक स्थान पर आकर अफलजखाँ रुका। अब उसने कूटनीति का सहारा लिया। उसने अपने दूत कृष्णा जी भास्कर को शिवाजी के पास भेजकर यह संदेश दिया कि यदि शिवाजी स्वयं व्यक्तिगत रुप से उससे आकर मिले और बीजापुर के आधिपत्य को स्वीकार कर लें, तो वह उन्हें आदिलशाह से क्षमा ही नहीं दिला देगा बल्कि जो भी भू-क्षेत्र और किले शिवाजी के पास हैं, उनको उन्हीं की जागीर के रुप में तथा कुछ अन्य प्रदेश भी जागीर के रुप में उन्हें दिला देगा। शिवाजी ने धर्म की दुहाई देकर कृष्णा जी भास्कर से अफजलखाँ की वास्तविक नीयत को जानने का प्रयत्न किया और उससे उन्हें आभास हो गया कि अफजलखाँ का मन साफ नहीं था। अफजलखाँ स्वभाव से भी विश्वास के योग्य नहीं था। शिवाजी ने अफजलखाँ पर विश्वास नहीं किया और धूर्तता का उत्तर धूर्तता से देने का निश्चय किया। मोरो पंगले और नेताजी पालकर को शीघ्रता से परंतु चुपके-चुपके प्रतापगढ़ के जंगलों में पहुँचने का आदेश दिया और गोपीनाथ को दूत के रुप में अफजलखाँ के पास प्रेषित किया। गोपीनाथ ने अफजलखाँ को सूचित किया कि शिवाजी बहुत भयभीत हैं और यदि अफजलखाँ उन्हें क्षमा करने का आश्वासन दे तो प्रतापगढ़ के निकट वह उससे मिलने आ सकते हैं। अफजलखाँ इस के लिए सहमत हो गया और अपनी सेना को लेकर प्रतापगढ़ से एक मील दूर जाकर रुक गया। किले और अफजलखाँ की सेना के मध्य में शिवाजी और अफजलखाँ के मिलने के लिए स्थान निश्चित हुआ। यह भी निश्चित हुआ कि शिवाजी और अफजलखाँ दोनों केवल दो-दो अंगरक्षकों के साथ एक-दूसरे से मिलने आयेंगे। शिवाजी को बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के आना था। शिवाजी ने अपनी सुरक्षा के लिए अपने अंगरखे के नीचे लोहे का कवच पहना, अपनी पगड़ी के नीचे लोहे की टोपी पहनी और अपने बायें हाथ में बघनख तथा सीधे हाथ की बाँह में एक तेज कटार को छिपा लिया। अपने अंगरक्षकों के रुप में उन्होंने जीवमहल और शंभूजी कावजी को शस्त्रों सहित साथ लिया। अफजलखाँ सशस्त्र आया और उसके साथ दो अंगरक्षक आये जिनमें एक प्रख्यात तलवारबाज सैयद बाँदा था। शिवाजी के दूत गोपीनाथ के अनुरोध पर अफजलखाँ ने अपने 1,000 सैनिक बंदूकचियों को मिलने के स्थान से कुछ दूर छोड़ दिया। 2 नवंबर, 1659 ई० प्रतापगढ़ के दक्षिण में स्थित वार नामक स्थान पर अफजलखाँ ने शिवाजी के ऊपर तलवार से प्रहार कर दिया। जब वह शिवाजी से गले मिला। शिवाजी के कवच ने उनकी रक्षा की और उन्होंने तुरन्त अपने बघनख और कटार को अफजलखाँ के पेट में घोंप दिया। अफजलखाँ ने घायल होकर शिवाजी को छोड़ दिया और जोर से चीखा। सैयद बाँदा ने तलवार से शिवाजी के सर पर वार किया परंतु उनकी लोहे की टोपी ने उनकी रक्षा की। जीवमहल ने सैयद बाँदा का दाहिना हाथ काटकर उसे मार गिराया। जंगल में छिपी हुई मराठा सेना ने **बीजापुर की सेना पर आक्रमण कर दिया और उसे परास्त करके भगा दिया।** शिवाजी को इस युद्ध के फलस्वरुप तोपखाना, गोला-बारुद, हाथी, घोड़े, ऊँट और लगभग 10 लाख रुपया नकद प्राप्त हुआ।

1660 ई० में मुगल-सूबेदार शाइस्ताखाँ को शिवाजी को समाप्त करने का आदेश दिया गया। उसने बीजापुर-राज्य से मिलकर शिवाजी को समाप्त करने की योजना बनायी और शिवाजी से पूना, चाकन और कल्याण को छीनने में सफल हुआ। प्राय: दो वर्ष तक चले इस युद्ध में शइस्ताखाँ ने शिवाजी के बहुत से स्थानों और किलों को जीतने में सफलता प्राप्त की। परंतु शिवाजी युद्ध करते रहे। 1663 ई० में शाइस्ताखाँ ने पूना में वर्षा ऋतु बिताने की योजना बनायी। 15 अप्रैल, 1663 ई० को शिवाजी चुपके से पूना में प्रवेश कर गये और रात को शाइस्ताखाँ के महल पर 400 बहादुर सिपाहियों के साथ आक्रमण कर दिया। **शाइस्ताखाँ इस अचानक आक्रमण से भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ।** यद्यपि शिवाजी केवल उसका अंगूठा काटने में सफल हुए और फिर आक्रमण शुरु कर दिये। 10 फरवरी, 1664 ई० को शिवाजी ने सूरत पर आक्रमण किया। मुगल किलेदार भाग खड़ा हुआ। चार दिन तक सूरत को अच्छी तरह लूटकर और अधिक से अधिक धन लेकर शिवाजी वापस चले गये। इसके पश्चात् प्राय: एक वर्ष तक शिवाजी मुगल-आक्रमण से मुक्त रहे।

1666 ई० में शिवाजी औरंगजेब से मिलने आगरा गये। राजा जयसिंह ने उन्हें उनकी सुरक्षा दे में आश्वस्त किया था और यह सुझाया था कि संभवतया, उनके स्वयं मुगल बादशाह से मिलने के फल उन्हें दक्षिण के मुगल प्रदेश की सूबेदारी और सीदियों से जंजीरा का टापू प्राप्त हो जाए। संभवतया, शि स्वयं भी औरंगजेब से दरबार से संपर्क स्थापित करने और उत्तर-भारत की स्थिति को जानने के लिए उ थे। राजा जयसिंह ने शिवाजी को अपने पुत्र रामसिंह की व्यक्तिगत सुरक्षा में रखने का विश्वास दि शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी सहित 9 मई, 1666 ई० को 4,000 मराठा सैनिकों को लेकर आगरा गये रामसिंह शिवाजी को लेकर दरबार में गया तब औरंगजेब ने उनके प्रति उदासीनता का व्यवहार किया औ पंचहजारी मनसबदारों में खड़े हो जाने का इशारा कर दिया। शिवाजी ने इसे अपना घोर अपमान माना अ उसी समय मनसबदारों की पंक्ति से निकलकर बाहर जाकर बैठ गये। औरंगजेब ने रामसिंह तथा अ सरदारों को शिवाजी को बुलाने के लिए भेजा परंतु उन्होंने औरंगजेब के सामने जाने से मना कर दिया। र ने शिवाजी की तबियत खराब हो जाने का बहाना बना दिया। इसके पश्चात् शिवाजी को रामसिंह की दे में जयपुर भवन में रखा गया और उनको नजरबंद कर दिया गया। उसके उपरान्त शिवाजी औरंगजेब करने के लिए फिर कभी नहीं गये। दरबार में अनेक व्यक्ति ऐसे थे जो शिवाजी को मरवा देने वे लालायित थे। औरंगजेब भी अपने प्रमुख शत्रु को समाप्त करने को इच्छुक था। औरंगजेब ने राजा जयसिं पूछा कि उसने शिवाजी को क्या आश्वासन दिया था? राजा जयसिंह ने उत्तर दिया कि शिवाजी के जी सुरक्षा के अतिरिक्त उसने उनसे कोई वायदा नहीं किया था। परंतु इस पत्र-व्यवहार में कुछ समय लग दौरान शिवाजी ने कुछ मुगल सरदारों को रिश्वत दी और भाग निकलने की योजना बनायी। शिवाजी ने का बहाना बनाया और कुछ समय पश्चात् बीमारी ठीक हो जाने की खुशी में मिठाई के बड़े-बड़े टोकरे को बाँटने के लिए भेजने आरंभ किये। एक दिन अपने सौतेले भाई हीरोजी को अपना सोने का कड़ा प बिस्तर पर लिटाकर शिवाजी और उनका पुत्र शम्भाजी मिठाई के टोकरे में बैठकर भाग निकले। उसके साधुओं का भेष बनाकर, अपने पुत्र को मथुरा में एक मराठा परिवार के साथ छोड़कर तथा इला बनारस, गोंडवाना और गोलकुंडा होते हुए शिवाजी 25 दिन के पश्चात् 22 सितंबर, 1666 ई० को वापस पहुँच गये। इस प्रकार शिवाजी की आगरा की यात्रा निरर्थक सिद्ध हुई परंतु उसने एक रोम इतिहास का निर्माण किया। 1668 ई० में शिवाजी ने मुगलों से संधि कर ली।

1670 ई० में शिवाजी ने मुगलों से फिर युद्ध आरंभ कर दिया। पुरंदर की संधि द्वारा खोये हुए अनेक किलों को शिवाजी ने फिर जीत लिया। इसी समय कोंगना के किले को नानाजी ने अपने साहस जिसे शिवाजी ने सिंहगढ़ का नाम दिया। विभिन्न मुगल प्रदेशों को सफलता से लूटने के साथ ही शि पुरंदर, कल्याण, माहुली आदि किलों को भी जीता। दिलेरखाँ और शाहजादा मुअज्जम के झगड़े का लाभ हुए शिवाजी ने 13 अक्टूबर, 1670 ई० में सूरत के बंदरगाह को दुबारा लूटा। मराठों ने उस समय बगलाना और खानदेश पर आक्रमण किये तथा सलहेर और मुलहेर के किलों को जीत लिया। उसी सम कोंकण पर आक्रमण करके मराठों ने जवाहरनगर और रामनगर पर अधिकार किया। 1672 ई० में मर संघर्ष बीजापुर से भी हुआ जबकि मराठों ने पन्हाला पर आक्रमण किया। मराठों ने पन्हाला, पार्ली औ के दुर्गों को जीत लिया। इस प्रकार, **कुछ ही वर्षा में शिवाजी मुगलों और बीजापुर से अनेक दु भू-प्रदेशों को जीतने में सफल हुए।**

16 जून, 1674 ई० में शिवाजी ने काशी के प्रसिद्ध विद्वान 'श्री गागभट्ट' द्वारा राज्याभिषेक करवाया। छत्रपति की उपाधि ग्रहण की और रायगढ़ को अपनी राजधानी घोषित

उस युग के महान विद्वान, वेदों के ज्ञाता और बनारस के महान पंडित विश्वेश्वर उर्फ गागभट्ट ने शिवाजी को क्षत्री माना, उदयपुर के राजपूत-राजवंश से उनका संबंध बताया और शिवाजी का राज्याभिषेक स्वयं करना स्वीकार किया। 15 जून, 1674 ई० को वेद-मंत्रों और हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार बड़ी धूमधाम से शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि ग्रहण की और भगवा-ध्वज अपना झंडा बनाया। इस अवसर पर शिवाजी ने बहुत धन व्यय किया। परंतु इस प्रसन्नता में थोड़ी बाधा 12 दिन पश्चात् तब हुई जब शिवाजी की माता जीजाबाई का देहावसान हो गया। इसके कारण कुछ समय उपरान्त शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक तांत्रिक विधि से भी कराया।

अपने रिक्त खजाने की पूर्ति करने के उद्देश्य से शिवाजी ने मुगल-सेनापति बहादुरखाँ के शिविर पर आक्रमण किया और प्राय: एक करोड़ रुपया तथा 200 अच्छे घोड़े लूटने में सफल हुए। शिवाजी ने बीजापुर के खानदेश और बगलाना के प्रदेशों को लूटने में भी सफलता प्राप्त की। इन आक्रमणों में शिवाजी को केवल धन ही प्राप्त नहीं हुआ अपितु उनकी सैन्य शक्ति में भी वृद्धि हुई।

(2) शासन-प्रबंध

(1) राजा— मध्य-युग के अन्य शासकों की भाँति शिवाजी एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न निरंकुश शासक थे। राज्य की संपूर्ण शक्तियाँ उनमें केंद्रित थीं। वही राज्य के अंतिम कानून निर्माता, प्रशासकीय प्रधान, न्यायाधीश और प्रधान सेनापति थे। परंतु शिवाजी ने अपनी शक्ति का प्रयोग अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कभी नहीं किया बल्कि वह एक प्रजापालक शासक सिद्ध हुए। इतिहासकार रानाडे के शब्दों में 'शिवाजी नेपोलियन की भाँति एक महान संगठनकर्ता और असैनिक प्रशासन के निर्माणकर्ता थे।' शिवाजी के शासन की एक विशेषता यह भी रही कि उन्होंने मराठी को शासन की राज्य भाषा बनाया और उसकी प्रगति के लिए रघुनाथ पंडित हनुमंते के सभापतित्व में विद्वानों की एक समिति नियुक्ति करके उससे एक शब्दकोश-**राज्य-व्यवहार-कोश** का निर्माण कराया।

(2) अष्ट-प्रधान—शासन में शिवाजी की सहायता के लिए आठ बड़े अधिकारी अथवा मंत्री होते थे। ये एक मंत्रि-परिषद अथवा समिति के समान कार्य नहीं करते थे। प्रत्येक मंत्री अपने-अपने विभाग का प्रधान होता था और यह शिवाजी की इच्छा पर निर्भर करता था कि वह उनसे पृथक-पृथक अथवा सम्मिलित रुप से उनकी सलाह ले।

उनकी सलाह को मानने अथवा न मानने का विकल्प शिवाजी का होता था, उनकी सलाह शिवाजी के लिए बाध्यकारी नहीं होती थी। ये आठों प्रधान सचिवों के समान कार्य करते थे। उनका दायित्व शिवाजी द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करना और विस्तृत रुप से शासन की देखभाल करना होता था। शिवाजी, फ्रांस के शासक लुई चौदहवें और प्रशा के शासक फ्रेडरिक महान के समान स्वयं ही अपने प्रधानमंत्री थे तथा शासन की समस्त शक्ति अपने अंदर केंद्रित रखते थे। इन आठ प्रधानों में पेशवा की स्थिति, निश्चित श्रेष्ठ थी जबकि अन्य प्रधान किसी भी प्रकार उसके अधीन नहीं थे। उनमें सभी केवल शिवाजी के प्रति उत्तरदायी थे। ये आठ प्रधान निम्नलिखित थे-

(i) पेशवा या मुख्य प्रधान— इसका कार्य संपूर्ण राज्य के शासन की देखभाल करना था। राजा की अनुपस्थिति में राजा के कार्यों की देखभाल करना, शासन में एकरूपता लाने के लिए शासन के अधिकारियों पर नियंत्रण रखना और प्रजा के हित के लिए प्रयत्न करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। राजा के सभी आदेशों और पत्रों पर राजा की मुहर के नीचे उसकी मुहर लगती थी।

(ii) आमात्य या मजमुआदार— राज्य की आय और व्यय का हिसाब रखना और राजा को उससे सूचित कराना उसका कर्त्तव्य था।

(iii) मंत्री या वाकया-नवीस—राजा के नित्य प्रति के कार्यों को लेखाबद्ध करना, शार मिलने-जुलने वालों की निगरानी करना और राजा के जीवन की सुरक्षा उसका कर्त्तव्य था।

(iv) सचिव या शुरू-नवीस—राजा की पत्रावली की भाषा एवं शैली को ठीक करना तथा परग आय-व्यय का हिसाब रखना इसका कर्त्तव्य था।

(v) सुमंत अथवा दबीर— यह राज्य का विदेश-मंत्री होता था। राजा को संधि अथवा युद्ध के वि सलाह देना, विदेशों से समाचार प्राप्त करना, विदेशों में राजा के सम्मान की रक्षा, विदेशी राजदूतों से व और अपने राजदूतों को विदेशों में भेजना तथा उनके कार्यों की देखभाल करना उसका कार्य था।

(vi) सेनापति अथवा सर-ए-नौबत—सेना में भर्ती, सेना का संगठन, शिक्षा, अस्त्र-शस्त्रों औ की व्यवस्था करना आदि इसका कार्य था।

(vii) पंडित राव— राजा की ओर से विद्वान ब्राह्मणों को दान देना, धार्मिक कार्यों को सम्पादित अपराधियों को दंड देना, और जाति के विवादों को निपटाना और प्रजा के नैतिक चरित्र को सुधारना कार्य था।

(viii) न्यायाधीश— सैनिक और असैनिक विवादों का हिंदू-विधान के आधार पर न्याय करन संबंधी विवादो तथा गाँव के मुखिया के पद के विवादों का निर्णय करना इसका कार्य था।

(3) प्रांत—शिवाजी का साम्राज्य तीन प्रांतों में बंटा था। उनमें से प्रत्येक में एक प्रांतपति अथवा की नियुक्ति की गयी थी। उत्तरी प्रांत में डाँग, बगलाना, कोली प्रदेश, दक्षिणी सूरत, उत्तरी बंबई का प्रदेश और पूना की ओर का दक्षिणी पठार शामिल था। यहाँ त्रिबंक पिंगले की नियुक्ति की गयी थी। प्रांत में दक्षिणी बंबई का कोंकण प्रदेश, सामंतवाड़ी और उत्तरी किनारा का समुद्र-तट सम्मिलित थे। न अन्नाजी दत्तो की अधीनता में रखा गया था। दक्षिण-पूर्वी प्रांत में सतारा और कोल्हापुर के जिले तथा क में तुंगभद्रा के पश्चिम में बेलगाँव, धारवार और कोसल के जिले आते थे। यह प्रांत दत्तोजी पंत के आधीन

शिवाजी ने अपने जीवन के संध्या काल में तुंगभद्रा के दूसरी ओर का कोपल से लेकर बेल्लूर तथ तक का प्रदेश जीता था। इसमें आधुनिक मैसूर राज्य का उत्तरी, मध्यवर्ती और पूर्वी भाग तथा मद्रास र बेलारी, चित्तूर और अर्काट के जिले शामिल थे। किन्तु इस प्रदेश का संगठन नहीं हो सका था और यह समय में सेना की शक्ति पर ही शासन चलता था। इसके अतिरिक्त कनारा, दक्षिण धारवार, सोंधा और के प्रदेश अभी ऐसे थे जहाँ से शिवाजी कर तो वसूल करते थे परंतु उनका स्वामित्व निश्चित नहीं हो स ये शिवाजी के अन्त समय के निकट के अवसर पर ही जीते गये थे।

(4) सेना और नौ-सेना— शिवाजी की सेना के मुख्य अंग घुड़सवार सेना और पैदल सेना थे मृत्यु के समय पर उनकी सेना में 45,000 पागा (शाही घुड़सवार), 60,000 सिलेदार घुड़सवार त लाख मावले पैदल सेना थी। उनकी सेना में हाथी भी थे। उनकी संख्या लगभग 300 थी। उनके पास ए तोपखाना भी था।

पागा या शाही घुड़सवारों को 'बरगीर' कहा जाता था। इन्हें राज्य की आरे से शस्त्र दिये जाते थे 'सिलेदार' घुड़सवार अपने घोड़ो और शस्त्रों की व्यवस्था स्वयं करते थे और कभी-कभी अपने साथ साथियों को भी लाते थे और उनके लिए शस्त्रों और घोड़ों की व्यवस्था भी स्वयं करते थे। 'पागा' घु सेना का एक नियमित संगठन था। 25 घुड़सवारों के ऊपर एक हवलदार, 5 हवलदारों के ऊपर एक ज 10 जमादारों पर एकहजारी और पाँच एकहजारियों के ऊपर एक पंचहजारी अधिकारी रखा जाता था घुड़सवार सेना का प्रधान घुड़सवार सेना का 'सर-ए-नौबत' कहलाता था।

इसी प्रकार, पैदल-सेना में भी अधिकारियों का पद-विभाजन किया जाता था। 9 सैनिकों या पाइकों का अधिकारी नायक, दस नायकों के ऊपर एक हवलदार, दो या तीन हवलदारों के ऊपर एक जुमलादार, दस जुमलादारों के ऊपर एकहजारी और सात एकहजारियों के ऊपर एक सातहजारी होता था। पैदल-सेना में पंचहजारी का पद नहीं था। संपूर्ण पैदल-सेना का प्रधान पैदल-सेना का 'सर-ए-नौबत' होता था। शिवाजी के अंगरक्षक दस्ते में 20,000 (बीस हजार) मावले सैनिक थे जिनके वस्त्रों और हथियारों पर पर्याप्त धन व्यय होता था।

शिवाजी की सैन्य संगठन में किलों की व्यवस्था प्रमुख स्थान रखती थी। शिवाजी के राज्य में लगभग 250 किले थे जो उनकी सुरक्षा और आक्रमणकारी नीति के प्रमुख आधार थे। शिवाजी ने किलों की सुरक्षा के लिए विशेष प्रबंध किये थे। एक किले में तीन प्रमुख अधिकारी होते थे-एक 'हवलदार', एक 'सबनिस' और एक 'सर-ए-नौबत'। किले की सुरक्षा और प्रशासन तीनों अधिकारियों का संयुक्त उत्तरादायित्व होता था। 'हवलदार' तथा 'सर-ए-नौबत' मराठा होते थे जबकि 'सबनिस' ब्राह्मण जाति का होता था। इनके अतिरिक्त किले की रसद और सैनिक-सामग्री की देखभाल के लिए अन्य अधिकारी होते था जिसे 'कारखाना-नवीस' कहते थे। वह आय और व्यय का पूरा विवरण रखता था। हवलदार को अपने अधीनस्थ अधिकारियों को हटाने, सरकारी पत्रों को लेने और भेजने, संध्या समय किले का फाटक बंद करने तथा प्रात: काल फाटक खोलने और बीच-बीच में जाकर देखभाल करने का दायित्व सौंपा गया था। 'सर-ए-नौबत' पर रात में किले की सुरक्षा और पहरेदारों पर निगरानी का दायित्व था। 'सबनिस' किले के असैनिक शासन की देखभाल करता था। इस प्रकार विभिन्न अधिकारियों और विभिन्न जातियों के अधिकारियों की नियुक्ति करके शिवाजी ने यह प्रयास किया था कि किसी एक अधिकारी के शत्रु-पक्ष के साथ मिल कर घात करने पर किला शत्रु के हाथों में न चला जाए। शिवाजी ने पूर्ण रुप से निश्चित कर दिया था कि किस किले में कितने सैनिक रहेंगे, कितनी रसद होगी, कितने शस्त्र होंगे, फाटक को खोलने और बंद करने का क्या समय होगा, इत्यादि। इन नियमों का कठोरता से पालन होता था। इससे शिवाजी के दुर्ग जो प्राकृतिक ढंग से ही पहाड़ों पर सुरक्षित बने हुए थे, आसानी से शत्रु के हाथों में नहीं जा सकते थे।

शिवाजी ने नौ-सेना की भी व्यवस्था की थी। कोंकण प्रदेश को जीतने के उपरान्त जंजीरा के सीदियों के आक्रमण से अपने समुद्र-तट की रक्षा के लिए उन्हें नौ सेना की व्यवस्था करना आवश्यक हो गया था। सभासद के अनुसार शिवाजी की नौ-सेना में विभिन्न प्रकार के 400 जलयान थे। यह जल-बेड़ा दो भागों में विभाजित था। दरिया-सारंग और माई नायक। इनमें से प्रत्येक एक भाग का प्रधान था। कुछ वर्षों के पश्चात् शिवाजी को दो अन्य योग्य व्यक्तियों 'मिसरी' और 'दौलतखाँ' की सेवाएँ भी मिल गयी थीं। शिवाजी की नौ-सेना विदेशी व्यापारियों, जंजीरा के सीदियों और औरंगजेब के लिए चिंता का विषय बन गयी थी। उसने अनेक अवसरों पर पुर्तगाली, हॉलैंड और अंग्रेज जहाजों से टक्कर ली और खंडेरी के द्वीप को सीदी और अंग्रेजों के संयुक्त आक्रमण से बचाने में सफलता प्राप्त की। इनके अलावा **शिवाजी ने एक बड़ी व्यापारिक नौ-सेना का भी निर्माण किया था।** डॉ०एस०एन० सेन ने लिखा है: "अपने तत्कालीन शासकों से भिन्न उस महान मराठा ने यह समझ लिया था कि बिना एक शक्तिशाली व्यापारिक नौ-शक्ति के एक शक्तिशाली नौ-सेना का निर्माण असंभव था।" परंतु **फिर भी शिवाजी की नौ-सेना यूरोपियन नौ-सेना की अपेक्षा दुर्बल थी। इसका कारण उनकी नौ-सेना के पास तोपखाने का न होना था।** इसी दुर्बलता के कारण शिवाजी को जंजीरा के सीदियों के विरुद्ध सफलता नहीं मिल सकी थी। सूरत की अंग्रेजों की फैक्ट्री के प्रधान ने टिप्पणी की थी कि, "एक अंग्रेजी जहाज अपने को बिना किसी खतरे में डाले हुए उनके एक सौ जहाजों को नष्ट कर देगा।" इस कारण शिवाजी की नौ-सेना का मुख्य कार्य अपने समुद्र-तट की रक्षा करना, अपने तट पर आये हुए जहाजों से व्यापारिक-कर लेना और समुद्र-तट पर टूटे हुए जहाजों के सामान को अपने अधिकार में करने तक सीमित रहा।

(5) अर्थव्यवस्था और लगान-व्यवस्था– मुद्रा, व्यापारिक-कर और भूमि से लगान शिवाजी आय के स्थायी साधन थे। परंतु ये उनकी सेना और शासन के व्यय के लिए पर्याप्त नहीं थे। इस क **शिवाजी ने अपनी आय का प्रमुख साधन 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' को बनाया। ये 'कर' पड़ोसी रा की सीमाओं और नगरों से अथवा अपने प्रभाव-क्षेत्र के नागरिकों से वसूल किये जाते थे।** 'चौथ' में प्रदेश की वार्षिक आय का एक-चौथाई भाग और 'सरदेशमुखी' में उस प्रदेश की आय का 1/10 वाँ निश्चित था। शिवाजी इन प्रदेशों के शासन कार्य का दायित्व अपने ऊपर नहीं लेते थे और न ही ये प्रदेश उ राज्य की सीमा के अंतर्गत आते थे। इन करों की वसूली शक्ति के आधार पर होती थी और इनका प्रमुख शत्रु-राज्यों की संपत्ति से अपनी सेना और शासन के व्यय को पूरा करना होता था। ये 'कर' शिवाजी की के प्रमुख साधन थे और धीरे-धीरे शिवाजी के और बाद में मराठों की शक्ति के विस्तार में सहायक सिद्ध हु

(6) धार्मिक नीति: शिवाजी सुसंस्कृत हिंदु थे। हिंदू धर्म की उदारता की भावना को उन्होंने सम और अपने व्यवहार और नीति में उसका अनुपालन भी किया। समर्थ गुरु रामदास उनके आध्यात्मिक धार्मिक गुरु थे। यह कहना तो अनुचित होगा कि गुरु रामदास शिवाजी के राजनितिक उद्देश्यों के निर्माण प्रमुख भागीदार थे परंतु यह कहना तो सत्य है कि शिवाजी पर गुरु रामदास का प्रभाव धर्म और सदाचार का और वे शिवाजी को प्रेरित करने वाली शक्ति थे। शिवाजी ने हिंदुओं, ब्राह्माणों और गौरक्षा की दुहाई देते हुए अन्य धर्मों के प्रति पूर्ण सहिष्णुता का व्यवहार किया। वह दुर्गा-भवानी के उपासक थे परंतु उन्होंने किसी अ धर्म के पैगंबर या देवता का कभी अपमान नहीं किया। **इस्लाम के साथ उनका व्यवहार सदैव उदार र** मुहम्मद और कुरान के प्रति उनका व्यवहार आदरपूर्ण था। जब भी उन्हें कुरान की पुस्तक प्राप्त होती थी, उसे सम्मान सहित अपने मुसलमान साथियों को पढ़ने के लिए दे देते थे। उन्होंने कभी भी किसी मस्जिद नहीं तोड़ा, मुसलमान स्त्रियों एवं बच्चों के प्रति युद्ध के अवसर पर भी सम्मानजनक व्यवहार किया मस्जिदों, मुस्लिम संतों और पीरों को आर्थिक सहायता भी दी। राज्य की सेवा में मुसलमानों को शामिल कि गया था, उनकी सेना और नौ-सेना में मुसलमान भी होते थे तथा उन्हें योग्यता के अनुसार उच्च पद दिये थे। इतिहासकार खफीखाँ ने भी, जो शिवाजी से असंतुष्ट था, उनकी धार्मिक नीति की प्रशंसा की है।

मूलत: शिवाजी का शासन-प्रबंध अत्यन्त श्रेष्ठ था। स्मिथ जैसे इतिहासकारों द्वारा शिवाजी के राज्य 'डाकू राज्य' (Robber State) कहना एक दम अनुचित है। साम्राज्य-निर्माण के साथ एक अच्छी शा व्यवस्था की स्थापना शिवाजी को इतिहास के महान व्यक्तियों में स्थान देती है। शिवाजी के शासन-प्रबंध श्रेष्ठता इस बात से भी सिद्ध होती है कि जब शिवाजी आगरा में औरंगजेब के द्वारा धोखे से बंदी बना लिये थे, उस समय में भी उनके राज्य में कोई अव्यवस्था नहीं हुई और संपूर्ण शासन विधिवत् चलता रहा जैसे उनकी उपस्थिति में चलता था। इसे सर जदुनाथ सरकार द्वारा 'मध्ययुगीन राजतंत्र की एक अनोखी घटना' क गया है। एम०जी० रानाडे ने शिवाजी के असैनिक शासन-प्रबंध को निम्नलिखित विशेषताओं के आधार अन्य शासन-व्यवस्थाओं से पृथक माना है—

(i) दुर्गों के शासन-प्रबंध को विशेष महत्व देना।

(ii) किसी भी पद विशेष को एक ही परिवार तक सीमित न रखना अथवा उस पद को पैतृक पद बनाना।

(iii) अपने सैनिक और असैनिक अधिकारियों को जागीर प्रदान न करना।

(iv) लगान-व्यवस्था में किसानों से सीधा संपर्क स्थापित करना।

(v) ठेके पर भूमि न देना।

(vi) अष्ट-प्रधान का निर्माण करना जिसमें प्रत्येक सदस्य को पृथक कार्य दिया गया था तथा जिनमें से प्रत्येक सदस्य राजा और अपने साथियों के प्रति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होता था।

7. शासन में सैनिक अधिकारियों की अपेक्षा असैनिक अधिकारियों को अधिक मान प्रदान करना।

8. शासन में ब्राह्मण, प्रभु, मराठा आदि सभी जातियों को सम्मिलित करके उनमें संतुलन बनाये रखना।

इस प्रकार, **शिवाजी एक महान राष्ट्र-निर्माता ही नहीं थे बल्कि एक महान शासन-प्रबंधक भी थे।**

(3) शिवाजी का चरित्र-मूल्यांकन और इतिहास में उनका स्थान अथवा शिवाजी एक राष्ट्र-निर्माता के रुप में

सरदेसाई ने शिवाजी के बारे में लिखा है: "नि:संदेह, शिवाजी का व्यक्तित्व अपने ही युग का नहीं बल्कि संपूर्ण आधुनिक युग का भी असाधारण व्यक्तित्व है। अंधकार के बीच में वह एक ऐसे नक्षत्र के समान चमकते हैं जो अपने समय से बहुत आगे थे।" शिवाजी का चरित्र और व्यक्तित्व मराठा इतिहासकार के इस कथन की पुष्टि करता है। शिवाजी का चरित्र प्रत्येक प्रकार से आदर्श माना जा सकता है। वह एक अच्छे पुत्र, वफादार मित्र, पत्नीप्रिय पति और प्रिय पिता थे। वह अपनी माता का अत्यधिक सम्मान करते थे। उनके चरित्र के विकास में उनकी माता का बहुत बड़ा हाथ रहा। **दयालुता, सहिष्णुता, सद्व्यवहार, साहस, शौर्य, दृढ़-निश्चय, पवित्र विचार आदि गुण उनमें थे।** अपने समय की परंपरा के अनुसार उन्होंने कई विवाह किये थे परंतु अपनी सभी पत्नियों के प्रति उनका व्यवहार प्रेम का था। शिवाजी ने शिक्षा प्राप्त न की थी परंतु अपने अनुभव से उन्होंने अच्छा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। वह कुशल नीतिज्ञ, मनुष्यों के पारखी और परिस्थितियों को समझने वाले थे। शिवाजी एक अच्छे हिंदू और दुर्गा-भवानी के पूजक थे। धर्म, धार्मिक ग्रंथ और कहानियाँ उनके जीवन की प्रेरणा थे। उनका धर्म उनको सत्कार्य में लगाने वाला था। **उनकी धार्मिक प्रवृत्ति एक पहाड़ी झरने की भाँति स्वच्छ जल को अविरल गति से बहाने वाली थी जिसमें धर्मांधता की गंदगी न थी। उन्होंने सभी धर्मों का सम्मान किया और उनके साथ समान व्यवहार किया।** महाराष्ट्र के तत्कालीन धार्मिक आंदोलनों और संतों से वह प्रभावित हुए थे और महाराष्ट्र का धार्मिक पुनर्जागरण इस बात पर आधारित था कि शक्ति के आधार पर लादी गयी मुसलमानी धार्मिक असहिष्णुता को सहन न किया जाए। शिवाजी के व्यक्तित्व पर धार्मिक पुनर्जागरण की उस भावना का प्रभाव स्पष्ट था। **शिवाजी एक कुशल और साहसी सैनिक थे।** अनेक युद्धों में उन्होंने अपने जीवन को संकट में डाला था। अफजलखाँ से भेंट करना, शाइस्ताखाँ पर अचानक उसके शहर और निवास-स्थान में प्रवेश करके आक्रमण करना, औरंगजेब से आगरा मिलने जाना उनके जीवन की ऐसी घटनाएँ हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि शिवाजी अपने जीवन को खतरे में डालने से कभी नहीं झिझके। **शिवाजी एक योग्य सेनापति थे।** अपने देश की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने गुरिल्ला युद्ध-पद्धति का प्रयोग किया और सुरक्षा के लिए अनेक दुर्गों का निर्माण कराया। शिवाजी किसी भी प्रकार की मादक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते थे और स्त्रियों के प्रति उनका व्यवहार आदरपूर्ण था। इस प्रकार शिवाजी सभी मानवीय गुणों से पूर्ण थे और अपने समय की नैतिकता से कहीं आगे थे।"

शिवाजी ने एक स्वतंत्र हिंदू-राज्य की स्थापना करने में सफलता पायी। शिवाजी एक महान शासन-प्रबंधक थे। असैनिक और सैनिक दोनों ही प्रकार की शासन-व्यवस्था में उन्होंने अद्भुत योग्यता का परिचय दिया। शिवाजी ने शासन में पूर्णतया नवीन अन्वेषण किये हो, यह तो स्वीकार नहीं किया जा सकता, परंतु उन्होंने दूसरों के ज्ञान से लाभ उठाकर अपनी इच्छानुसार उसमें परिवर्तन किये थे।"

परंतु इनसे भी अधिक शिवाजी की महानता एक राष्ट्र-निर्माता के रुप में है। शिवाजी का महा कार्य हिंदू-मराठा-राष्ट्र का निर्माण करना और उनको महानता देना, उसको स्वतंत्रता की भावना प्रदान व था। शिवाजी ने स्वतंत्र हिंदू-राज्य की स्थापना का बीड़ा उठाया। गुलाम रहकर वह बड़ी से बड़ी प्रतिष्ठ स्वीकार करने के लिए तत्पर न थे। अपनी छः वर्ष की आयु में उन्होंने बीजापुर के सुल्तान के सम्मुख अ सिर झुकाने से इनकार कर दिया था और औरंगजेब के दरबार में अपने को असम्मानित अनुभव करके उ दरबार की परंपरा को तोड़कर शक्तिशाली मुगल-सम्राट का उसके दरबार में (अप्रत्यक्ष रुप से) अपमान दिया था। अपने कार्य को उन्होंने बिना किसी की सहायता के आरंभ किया और यह अनुभव करके कि ब हुई मुस्लिम-शक्ति का विरोध मराठों की एकता के बिना संभव नहीं है, उन्होंने मराठों को एक सूत्र में बं का प्रयत्न किया। अपने आकर्षक व्यक्तित्व और प्रारंभिक सफलताओं के कारण वह शीघ्र ही योग्य म को अपने नेतृत्व में एकत्र करने में सफल हो गये। आभाजी, रघुनाथ बल्लाल, समरजी पंत, प्रतापराव गू हमीरराव मोहिते, शिंदोजी निंबालकर, संबाजी मोर, तानाजी मालसुरे, सूर्यराव काकादे, संताजी घोरपदे, धान जादव, खांडेराव दाभादे, पासोंजी भौंसले, सयाजी भौंसले, नेमाजी शिंदे आदि अनेक ऐसे महान व्यक्ति थे शिवाजी के सहायक बने और जिनमें से अनेक ने शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त भी मराठों का नेतृत्व कि सभी वर्गों से आये हुए इन योग्य महानुभावो ने शिवाजी के हिंदू-राज्य की सेवा की। खतरों के अवसर पर इ से कोई भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुआ, एक ने भी अपने राजा से बेवफाई नहीं की, अनेक ने अ कर्तव्य की पूर्ति करते हुए संतोष से अपने जीवन को युद्धों में समाप्त किया और इस प्रकार सभी अपने त और बलिदान से मराठा-राष्ट्र को जाग्रत करने में सहायक हुए। शिवाजी की प्रमुख सफलता राज्य-विस्तार व धन की प्राप्ति में उतनी नहीं थी जितनी कि मराठों को एकता और आत्मविश्वास प्रदान करने में थी। शिवाजी महाराष्ट्र और मराठा सरदारों को यह विश्वास दिलाया कि वह मुस्लिम शक्ति का सफलता से विरोध क सकते थे और यही वह विश्वास था जिसके कारण मराठों ने 20 वर्ष (1687–1707 ई०) तक दृढ़तापूर्व औरंगजेब की विशाल सैन्य शक्ति का सामना किया और मुगलों की कमर तोड़ दी। यह शिवाजी और उ एक सौ योग्य सरदारों की योग्यता और मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष में मिलने वाली सफलता का ही परिणाम कि मराठा-राष्ट्र में एक नया साहस और आशा जाग्रत हुई थी तथा उनमें संघर्ष करने की शक्ति और अप अंतिम विजय में विश्वास उत्पन्न हुआ था।

सारांश (Summary)

- मराठा-शक्ति का उत्कर्ष किसी एक व्यक्ति अथवा विशेष व्यक्ति-समूह का कार्य नहीं था और न कि विशेष समय में उत्पन्न हुई कुछ अस्थायी परिस्थितियों का परिणाम था। मराठा-शक्ति के उदय व आधार महाराष्ट्र के समस्त निवासी थे जिन्होंने जाति, भाषा, धर्म, साहित्य और निवास-स्थान की एक के आधार पर राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया और उस राष्ट्रीयता को संगठित करने के लिए ए स्वतंत्र राज्य की स्थापना की इच्छा की।
- 1670 ई० में शिवाजी ने मुगलों से फिर युद्ध आरंभ किया। पुरंदर की संधि द्वारा खोये हुए अपने अने किलों को शिवाजी ने फिर जीत लिया। इस प्रकार, कुछ ही वर्षों में शिवाजी मुगलों और बीजापुर अनेक दुर्गों और भू-प्रदेशों को जीतने में सफल हुए।
- 16 जून, 1674 ई० में शिवाजी ने काशी के प्रसिद्ध विद्वान 'श्री गागभट्ट' द्वारा अपना राज्याभिषेक करवाया, छत्रपति की उपाधि ग्रहण की और रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।

- शिवाजी, वास्तव में, फ्रांस के शासक लुई चौदहवें और प्रशा के शासक फ्रेडरिक महान की भाँति स्वयं ही अपने प्रधानमंत्री थे और शासन की सभी शक्तियों को अपने में केंद्रित रखते थे।
- शिवाजी सुसंस्कृत हिंदू थे। हिंदू धर्म की उदारता की भावना को उन्होंने ठीक प्रकार से समझा और आत्म सात किया और अपने व्यवहार और नीति में उसका प्रयोग किया। समर्थ गुरु रामदास उनके आध्यात्मिक और धार्मिक गुरु थे।
- शिवाजी परम कुशल और साहसी सैनिक थे। शिवाजी योग्य सेनापति भी थे। अपने देश की भौगोलिक स्थिति व परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने गुरिल्ला युद्ध-पद्धति का प्रयोग किया और सुरक्षा के लिए अनेक दुर्गों का निर्माण किया।

अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

1. मराठा-शक्ति के उत्कर्ष के कारण बताइए।
2. छत्रपति शिवाजी के जीवन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. 'मराठा स्वतंत्रता संग्राम' पर टिप्पणी लिखिए।
4. एक स्थायी राज्य की स्थापना करने में शिवाजी की असफलता के कारण बताइए।
5. मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
6. शिवाजी का राष्ट्र निर्माता के रुप में चरित्र-चित्रण कीजिये।

संदर्भ-ग्रन्थ (Reference Books)

1. भारतीय इतिहास: एक विश्लेषण-मनीकांत सिंह, किताब महल।
2. भारत का इतिहास-मनोज शर्मा, पियर्सन एजूकेशन।
3. भारत का इतिहास प्रागैतिकहासिक काल से आधुनिक काल तक-मानिक लाल गुप्ता, अटलांटिक पब्लिशर्स।

❑❑❑

इकाई (Unit)

6

राजस्थान और विजयनगर : समाज और अर्थव्यवस्था, धर्म और संस्कृति

(Rajasthan and Vijaynagar : Society and Economy, Religion and Culture)

संरचना

- उद्देश्य (Objectives)
- विषय-प्रवेश (Introduction)
- सल्तनतकालीन उत्तरी भारत के स्वतंत्र राज्य (Independent Kingdoms of North India during Sultanate Period)
- विजयनगर राज्य का उत्थान (Rise of Vijaynagar Kingdom)
- विजयनगर की शासन व्यवस्था (Administrative System of Vijaynagar)
- विजयनगर राज्य के पतन के कारण (Reasons for the Downfall of Vijaynagar Kingdom)
- सारांश (Summary)
- अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)
- संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक समर्थ होंगे—

- राजस्थान तथा विजयनगर राज्य के उत्थान को जानने में।
- राजस्थान तथा विजयनगर की शासन-व्यवस्था जानने में।
- राजस्थान तथा विजयनगर के पतन के कारणों को जानने में।

विषय प्रवेश (Introduction)

"राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ का गौरवपूर्ण स्थान है। मेवाड़ के राजपूत राजाओं ने संपूर्ण मध्यव युग में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखी।" —कर्नल ट

"कृष्णदेव राय विजयनगर का शानदार राजा है। उसकी शासन-व्यवस्था और न्याय की समत महान शासक की कृतियों का स्मरण कराती है।" —नूर्न

सल्तनकालीन उत्तरी भारत के स्वतंत्र राज्य (Independent Kingdoms of North India during Sultanate Period)

(1) जौनपुर—फिरोज तुगलक की मृत्यु के कुछ ही वर्ष पश्चात् दिल्ली सल्तनत के जिन प्र स्वाधीनता स्थापित की उनमें जौनपुर सर्वप्रथम था। जौनपुर नगर की स्थापना तुगलक वंश के सुल्तान फि

तुगलक ने अपने चचेरे भाई जूना खाँ (मुहम्मद तुगलक) के नाम पर की थी। उस समय **मलिक सरवर,** जिसको **सुल्तान-उल-शर्क** की उपाधि मिली थी, जौनपुर का सूबेदार था। तैमूर लंग के आक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई अराजकता का लाभ उठाकर उसने जौनपुर को स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया, यद्यपि उसने स्वयं सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की। उसका वंश उसकी उपाधि के कारण शर्की वंश के नाम से जाना गया। उसके अवध, अलीगढ़ तथा दोआब के प्रदेशों पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। 1399 ई० में उसका देहान्त होने पर उसके दत्तक पुत्र **मलिक करनफूल** ने शासन की बागडोर सँभाली और वह **मुबारकशाह** के नाम से शर्की वंश का पहला सुल्तान बन गया। उसने अपने नाम का खुतबा भी पढ़वाया। उसके शासनकाल में दिल्ली के वजीर **मल्लू इकबाल** ने जौनपुर को जीतने का असफल प्रयास किया जिसके फलस्वरूप दिल्ली तथा जौनपुर के बीच शत्रुता बढ़ गयी। इसी कारण बहुत वर्षों तक दोनों राजवंशों में वैमनस्य चला। 1402 ई० में मुबारकशाह की मृत्यु हो गयी। उसके उत्तराधिकारियों ने बहुत समय तक जौनपुर पर शर्की वंश का अधिकार रहा। इब्राहीम शाह इस वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था। वह अत्यधिक विनम्र और विवेकपूर्ण तथा शिक्षा का उपासक था। उसके संरक्षण में जौनपुर में स्थापत्य कला की एक नई शैली विकसित हुई जो शर्की के नाम से जानी गई। उसके शासन काल में उच्चकोटि की सांस्कृतिक उन्नति के कारण जौनपुर 'भारत के शीराज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। **हुसैनशाह शर्की** इस वंश का अंतिम शासक था। उस ने लोदी शासकों से युद्ध किया। बहलोल लोदी ने हुसैन को परास्त किया और बिहार में शरण लेने को विवश किया। बहलोल लोदी ने अपने पुत्र **बारबकशाह** को जौनपुर का शासक नियुक्त किया, किंतु हुसैनशाह के षड्यंत्र चलते रहे। उसने जौनपुर के जमींदारों को उकसाकर जौनपुर में विद्रोह करा दिया। इस समय दिल्ली का सुल्तान **सिंकदर लोदी** था। उसने विद्रोह को दमन किया और जौनपुर को दिल्ली में मिला लिया। 1500 ई० में बिहार में निर्वासित के रूप में हुसैनशाह की मृत्यु हो गयी और उसके साथ ही जौनपुर का शर्की राज्य का भी अंत हो गया।

(2) मालवा—1398 ई० तक मालवा दिल्ली सल्तनत का भाग रहा, क्योंकि 1305 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने इसको जीत लिया था। 1398 ई० में तैमूर लंग के आक्रमण के फलस्वरूप जो अव्यवस्था फैली, उसका लाभ उठाकर यहाँ के सूबेदार **दिलावर खाँ गौरी** ने अपने आप को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया, किंतु उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की। 1406 ई० में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र **अलप खाँ 'हुसंगशाह'** के नाम से सुल्तान बना। वह वीर साहसी शासक था। 1435 ई० में वह चल बसा। उसके उत्तराधिकारियों ने बहुत समय तक मालवा पर राज्य किया। **गाजी खाँ** के शासनकाल में उसके वजीर **महमूद खाँ** ने उसे हटाकर सिंहासन पर अधिकार कर लिया और एक नए राजवंश (खिलजी वंश) की नींव डाली। इस राज्य का अंतिम शासक **महमूद द्वितीय** हुआ। उसके समय में चंदेरी का प्रधानमंत्री मेदनीराय बन बैठा था। मेदनीराय ने मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह से मिलकर महमूद द्वितीय पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में मालवा की भारी क्षति हुई। मालवा के शासक **महमूद द्वितीय** ने गुजरात के शासक बहादुरशाह के छोटे भाई **चाँद खाँ** को शरण दी थी जिससे नाराज होकर बहादुरशाह ने मालवा पर आक्रमण करके 1531 ई० में मांडू पर कब्जा कर लिया। दिल्ली के मुगल सम्राट हुमायूँ के शासनकाल तक मालवा गुजरात के ही अधीन रहा। तदोपरान्त **शेरशाह सूरी** ने इस पर अधिकार किया और शुजात खाँ को यहाँ का सूबेदार बनाया। 1562 ई० में **बाजबहादुर** मालवा का शासक था। मुगल सम्राट अकबर ने बाजबहादुर को हरा कर मालवा को मुगल साम्राज्य में मिला लिया था।

(3) गुजरात—अलाउद्दीन खिलजी ने 1297 ई० में गुजरात को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया था। तैमूर लंग के आक्रमण से उत्पन्न कुव्यवस्था का लाभ उठाकर 1401 ई० में सूबेदार **जफर खाँ** ने गुजरात में अपनी

स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। कुछ समय पश्चात जफर खाँ के विद्रोही पुत्र **तातार खाँ** ने उसको पद कर दिया और स्वयं **नासिरूद्दीन मुहम्मदशाह** के नाम से गद्दी पर बैठ गया। परन्तु कुछ समय में ही उ चाचा **शम्स खाँ** ने उसकी हत्या करके जफर खाँ को फिर गुजरात का शासक घोषित कर दिया। जफर ख 1407 ई० में '**मुजफ्फरशाह**' की उपाधि धारण कर पुन: गुजरात का शासन भार सँभाल लिया। उसने म के सुल्तान हुसंगशाह को युद्ध में हरा दिया। 1411 ई० में मुजफ्फरशाह चल बसा और उसका **अहमदशाह** गद्दी पर आसीन हुआ। अहमदशाह ने 1411 ई० से 1442 ई० तक शासन किया। उ शासनकाल में गुजरात की समुचित उन्नति हुई। उसने **असावत** नामक पुराने नगर के स्थान पर आधुनिक **अहमदाबाद** का निर्माण कराया और अहमदाबाद को अपनी राजधानी बनाया। 1442 ई० में अहमदशाह मृत्यु हुई। उसके बाद उसका पुत्र.मुहम्मदशाह शासक बना। मुहम्मदशाह ने 1442 ई० से 1451 ई० तक किया। उसके उत्तराधिकारियों में **कुतुबुद्दीन अहमद** और **दाउद खाँ** ने शासन किया। दाऊद खाँ को अमी हटा कर 1458 ई० में **अबुल फतह** को शासक नियुक्त किया। अबुल फतह खाँ ने **अबुल-फतह-महमूद** उपाधि धारण की। यह सुल्तान **महमूद बेगड़ा** के नाम से जाना जाता है। महमूद बेगड़ा 56 वर्ष तक श रहा। उसके शासनकाल में गुजरात की सीमा काफी विस्तार कर गई थी। उसको पुर्तगालियों के विरुद्ध वि सफलता नहीं मिली। उसको 'डयू' के निकट पुर्तगालियों को कोठी बनाने के लिए जमीन देनी पड़ी। 155 में बेगड़ा स्वर्गवासी हुआ। वह अपने वंश का सर्वोत्तम शासक था। वह वीर योद्धा, महान विजेता और कु शासक था। उसके शासनकाल में गुजरात राज्य की सीमाएँ अधिकतम विस्तार पा गई थीं। उसका पुत्र ख खाँ मुजफ्फरशाह द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठा और उसके पश्चात 1526 ई० में बहादुरशाह ने श किया। उसने 1531 ई० में मालवा को जीतकर गुजरात में मिला लिया और चित्तौड़ में लूट पाट बहादुरशाह के उत्तराधिकारी निर्बल सिद्ध हुए। अन्ततह 1572 ई० में मुगल सम्राट अकबर ने गुजरात को साम्राज्य में मिला लिया।

(4) बंगाल—बंगाल और दिल्ली के बीच बहुत फासला है। बंगाल दिल्ली के विरुद्ध सदैव वि करता रहा है। मुहम्मद गौरी के सेनापति इख्तियारूद्दीन मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी ने 1205 ई० बंगाल को जीतकर दिल्ली साम्राज्य में शमिल कर लिया था। दास वंश के शासक बलबन ने बंगाल के वि शासक तुगरिल बेग का वध करवाकर अपने पुत्र बुगरा खाँ को बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर दिया बलबन की मृत्यु के बाद **बुगरा खाँ** ने बंगाल को स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया। 1345 ई० में हाजी **शम्सु इलियास** बंगाल का शासक बना। उसने तुगलक शासकों से युद्ध किया। फिरोज तुगलक ने बंगाल पर आक्र किया, किंतु वह असफल रहा। 1357 ई० में इलियास की मृत्यु हो गई। इलियास के पश्चात 1357 ई० 1393 ई० तक उसके पुत्र **सिकंदर** ने शासन किया। सिंकदर के बाद 1537 ई० तक **ग्यासुद्दीन आज़ बारबकशाह, अलाउद्दीन हुसैनशाह, नसरतशाह** तथा **ग्यासुद्दीन** आदि क्रमवार शासक हुए। अलाउ हुसैनशाह ने एक नया राजवंश स्थापित किया। उसने लगभग 50 वर्ष तक शासन किया और जनता की भ के लिए अनेक कार्य किए। 1537 ई० में **शेरशाह सूरी** ने बंगाल के अंतिम शासक ग्यासुद्दीन को मार भ और बंगाल पर अपना अधिकार जमा कर दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(5) कश्मीर—1301 ई० में एक हिंदू सरदार ने कश्मीर में एक सुदृढ़ हिंदू राज्य स्थापित किया। 13 ई० में **शम्सुद्दीनशाह** ने कश्मीर में हिन्दू राज को समाप्त करके स्वतंत्र मुस्लिम राज्य स्थापित किया। उ उत्तराधिकारियों ने 1440 ई० तक कश्मीर पर राज्य किया। इस समय के प्रसिद्ध शासक **सिकंदर, जै आबदीन, हैदरशाह** आदि हुए। आबदीन धार्मिक दृष्टि से अपने काला का अकबर था, उसने जजिया कर

दिया था और मंदिरों के निर्माण की आज्ञा दे दी थी। 1540 ई० में **मिर्जा हैदर** नामक एक व्यक्ति ने, जो बाबर का संबंधी था, कश्मीर को जीत लिया। तदोपरान्त कश्मीर में अमीरों के आपसो संघर्षों के कारण अराजकता फैल गई। अंतत: 1586 ई० में मुगल सम्राट अकबर ने कश्मीर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

(6) उड़ीसा—उड़ीसा राज्य गंगा नदी के डेल्टा से लेकर गोदावरी नदी के मुहाने तक फैला हुआ था। इस राज्य की स्थापना चोलवंशीय राजा **अनन्त वर्मन** ने की थी। वह एक वीर तथा विजेता राजा तो था ही, साथ ही धर्म और संस्कृत तथा तेलुगू साहित्य का पोषक भी था। उसने पुरी में प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर का निर्माण करवाया था। अनन्त वर्मन के उत्तराधिकारियों में **नरसिंह प्रथम** का नाम प्रसिद्ध है। 1434 ई० में उड़ीसा में एक नए राजवंश का उदय हुआ। इस नए वंश का संस्थापक **कपिलेन्द्र** था। उसने विजयनगर तथा बहमनी शासकों के आक्रमणों से अपने राज्य को सुरक्षित रखा। कपिलेन्द्र के उत्तराधिकारियों में **पुरूषोत्तम** और **प्रतापरुद्र शासक** हुए। उनके शासनकाल में विजयनगर तथा गोलकुण्डा के शासकों के साथ 'उड़ीसा' को युद्ध करने पड़े। 1541–42 ई० के लगभग उड़ीसा में कपिलेन्द्रे वंश के स्थान पर भोई वंश की स्थापना हो गई। **भोई वंश** के संस्थापक **गोविन्द भोई** और उसके उत्तराधिकारियों ने उड़ीसा पर 1599 ई० तक राज्य किया। उसके पश्चात **मुकन्द हरिचन्दन** नाम के व्यक्ति ने इस वंश का शासनकाल समाप्त कर दिया और 1568 ई० में बंगाल के शासक ने उड़ीसा को अपने राज्य में शामिल कर लिया।

(7) कामरूप—ब्रह्मपुत्र नदी घाटी में खैन लोगों ने कामरूप राज्य की स्थापना की थी। यह राज्य पूर्व में अहोमों तथा पश्चिम में बंगाल के सुल्तानों के राज्य से घिरा हुआ था। **कूच** जाति के **विष सिंह** ने 1515 ई० में कामरूप पर अधिकार कर लिया। **नरनारायण** कूच जाति का प्रसिद्ध राजा था। उसके शासनकाल में कामरूप राज्य अपनी शान शौकत की प्रसिद्धि की चोटी पर था परन्तु बदकिस्मती से राजा और सामतों के बीच मतभेद और झगड़े के कारण राज्य विभाजित हो गया और उस के आधे भाग पर नरनारायण के भतीजे **रघुदेव** ने अधिकार कर लिया। विभाजित भाग **कूच बिहार** तथा **कूच हाजी** के नाम से प्रसिद्ध हुए। कालांतर में दोनों भागों के बीच संघर्ष के कारण अहोम लोगों ने कामरूप पर अधिकार कर लिया। अंत में दिल्ली सल्तनत के समय कामरूप पर अहोमों का शासन रहा।

(8) मेवाड़—मेवाड़ का इतिहास बहुत प्राचीन है। मेवाड़ आधुनिक समय में **उदयपुर** के नाम से प्रसिद्ध है। सातवीं शताब्दी ई० में मेवाड़ पर गहलौत राजपूतों का अधिकार था। 1303 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर आक्रमण करके **राणा रत्नसिंह** की रानी 'पद्मिनी' को प्राप्त करने का असफल प्रयास किया था। अलाउद्दीन ने मेवाड़ के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था, किन्तु कालान्तर में मेवाड़ के राणा हम्मीर देव ने संपूर्ण मेवाड़ पर फिर अधिकार कर लिया। **हम्मीर देव** के वंशजों में **क्षेत्रसिंह, लक्खा, मोकल और राणा कुम्भकरण** हुए। राणा कुम्भकरण (राणा कुम्भा) मेवाड़ के शक्तिशाली राजाओं में था। उसके समय में मेवाड़ अपने वैभव के चरम उत्कर्ष पर था। उसने कुम्भलगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग का निर्माण कराया और मालाबार पर विजय प्राप्त करके चित्तौड़ में एक कीर्ति स्तंभ स्थापित किया। उसके उत्तराधिकारियों में **राणा सांगा** का नाम ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्ध है। राणा सांगा (1509–1528 ई०) ने मेवाड़ के वैभव को बढ़ाया और इब्राहीम लोदी को बुरी तरह परास्त किया। राणा सांगा ने बाबर के साथ 'खानवा' का युद्ध लड़ा राणा सांगा की हार तो हुई पर बाबर को मेवाड़ जीतने का साहस नहीं हुआ। अकबर के समय **महाराणा प्रताप** ने मेवाड़ की रक्षा की, किंतु जहांगीर के शासनकाल में मेवाड़ मुगलों के अधीन हो गया।

(9) मारवाड़—मारवाड़ में राठौर राजपूत शासन करते थे। आधुनिक समय में मारवाड़ को जोध- नाम से जाना जाता है। 1394 ई० से 1421 ई० तक मारवाड़ पर चुन्द का शासन था। चुन्द के उत्तरा जोधा ने आधुनिक जोधपुर नगर बसाया। उसने जोधपुर तथा मंदौर के दुर्गों का भी निर्माण किया। 1438 1488 ई० तक शासन करने के उपरांत जोधा का देहावसान हो गया और विक्का उसका उत्तराधिकार उसने बीकानेर नगर की स्थापना की। उसके उपरान्त मालदेव शासक हुआ, जिसने शेरशाह सूरी से युद्ध था। शेरशाह ने 1542 ई० में मारवाड़ पर अधिकार कर लिया।

(10) आमेर—आमेर राज्य की स्थापना दसवीं शताब्दी में हुई थी। इस राज्य को जयपुर के पुकारते हैं। इस राज्य पर सूर्यवंशी कछवाहा राजपूत शासन करते थे। इतिहास के प्रारंभिक समय में यह मेवाड़ के आधीन रहा, किन्तु 14 वीं शताब्दी में इसका स्थान राजस्थान के प्रथम श्रेणी के राज्यों में हं 1561 ई० में वहाँ के राजा भारमल (बिहारी मल) ने अपनी पुत्री जोधाबाई का विवाह अकबर के स उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

विजयनगर राज्य का उत्थान (Rise of Vijaynagar Kingdom)

विजयनगर राज्य की स्थापना—विजयनगर राज्य की स्थापना का इतिहास हरिहर और बुक्का दो भाइयों की कहानी से प्रारंभ होता है। ये दोनों भाई हिंदू थे और दोनों की अपने गुरू विद्याचरण (विद्य में अपार श्रद्धा थी। दोनों भाई वारंगल के राजा के यहाँ सेवक थे। जब 1323 ई० में मुसलमान सेना ने व पर आक्रमण किया, तो दोनों भाई रायचूर प्रदेश के 'अनेगोन्दी' शासक के यहाँ चाकरी करने चले ग मुसलमान सैनिकों ने इनको बंदी बनाया और दिल्ली भेज दिया। इसी समय दक्षिण के मुसलमान रा विद्रोह भड़क उठा। मुहम्मद-बिन-तुगलक ने इन दोनों भाइयों को मुक्त कर दिया और दक्षिण में सामंत बना दिया। वहाँ जाकर दोनों भाइयों ने गुरू विद्याचरण के आदेश पर 'तुंगभद्रा' नदी के त विद्यानगर अथवा विजयनगर नाम के नगर की स्थापना कीं। यह स्थापना सन् 1336 ई० में मतावलम्बियों की रक्षा करने के लिए की गई थी। इनके पिता का नाम संगम था। इस कारण यह राजवंश राजवंश कहलाया।

विजयनगर का उत्कर्ष—1346 ई० होयसल वंश के प्रसिद्ध राजा बल्लाल के देहावसान पर ह तथा बुक्का ने बल्लाल के राज्य पर अधिकार कर लिया और तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित विजयनगर न उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। अब उन्होंने विजयनगर के राज्य का विस्तार करना शुरु किया। उन्होंने उ कृष्णा नदी से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया।

विजयनगर के राजवंश तथा उनके शासक—विजयनगर पर अनेक राजवंशों ने राज्य किया था। त संगम वंश, सलुव वंश, तुलुव वंश तथा अरविंदु वंश के नाम प्रमुख हैं।

संगम वंश के प्रमुख शासक (1336–1486 ई०)
[Main Rulers of Sangam Dynasty (1336–1486 A.D.)]

विजयनगर के संस्थापक हरिहर और बुक्का नाम के दो भाई थे। इनके वंश को संगम वंश कहा जाता है

हरिहर के भाई बुक्का ने सम्राट की उपाधि धारण नहीं की। इस वंश के काल की प्रमुख घटनाए प्रकार हैं—

(1) बुक्का ने मदुरा राज्य पर विजय प्राप्त की और हिंदू धर्म की रक्षा करते हुए 'वेद-मार्ग-प्रतिष्ठापक' की उपाधि धारण की। 1374 ई० में बुक्का ने चीन में अपना दूतमंडल भेजा था

(2) 1379 ई० में **हरिहर द्वितीय** सम्राट बना। उसने अपने आप को '**महाराजाधिराज**' तथा '**राज-परमेश्वर**' की उपाधियों से विभूषित किया।

(3) हरिहर द्वितीय ने कनारा, मैसूर, त्रिचनापली, कांची तथा चिंगल आदि प्रदेशों पर विजय प्रापत करके अपने राज्य की सीमा का विस्तार किया और लंका से कर वसूल किया तथा गोवा पर भी विजय प्राप्त की।

(4) 1406 ई० में हरिहर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात **विरूपाक्ष प्रथम** और **बुक्का द्वितीय** ने अल्पकाल तक शासन किया। बाद में **देवराय प्रथम** शासक हुआ। उसने बहमनी सुल्तानों से युद्ध किए। 1422 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(5) देवराय प्रथम की मृत्यु के पश्चात् **रामचन्द्र विजय देवराय द्वितीय**, क्रमश: राजा हुए। उनके शासनकाल में सैन्य-संगठन पर विशेष बल दिया गया। उसने समुद्री व्यापार का निरीक्षण करने के लिए भी विशेष पदाधिकारी नियुक्त किया था।

(6) देवराय द्वितीय के शासनकाल में विजयनगर समृद्धि के उच्चतम शिखर पर था। उसके शासनकाल में दो विदेशी यात्री विजयनगर आए। इनमें से एक इटली का **निकोलो कोण्टी** और दूसरा ईरान का **अब्दुर्रज्जाक** था। 1446 ई० में देवराय द्वितीय का स्वर्गवास हो गया।

(7) देवराय द्वितीय के उत्तराधिकारी अयोग्य थे। उनके शासनकाल में बहमनी राजाओं ने आक्रमण किए। **विरूपाक्ष द्वितीय** संगम वंश का अंतिम शासक था। उसको '**चंन्द्रगिरि**' के शक्तिशाली सामंत **नरसिंह** ने हटाकर कर 1486 ई० में सिंहासन पर अधिकार कर लिया और सलुव वंश की नींव डाली। यह घटना विजयनगर साम्राज्य के इतिहास में प्रथम अपहरण के नाम से जानी जाती है।

सलुव वंश के प्रमुख शासक (1486–1509 ई०)
[Main Rulers of Saluva Dynasty (1486–1509 A.D.)]

(1) नरसिंह सलुव ने विरूपाक्ष द्विवीय से सिंहासन छीना और बहमनी सुल्तानों तथा उड़ीसा के राजा के विरुद्ध युद्ध करके अनेक राज्यों को अपने आधीन किया और सलुव वंश की पताका फहराई।

(2) नरसिंह की मृत्यु होने पर उसके निर्बल उत्तराधिकारियों से शासन की सत्ता सेनापति **नरस नायक** ने छीन ली।

(3) 1505 ई० में सेनापति **नरस नायक** की मृत्यु होने पर उसके पुत्र **नरसिंह तुलुव** ने **नरसिंह सलुव** के पुत्र और शासक **तिश्मा** की हत्या करके सिंहासन पर अधिकार जमा लिया और तुलुव वश की स्थापना की। यह घटना विजयनगर साम्राज्य के इतिहास में द्वितीय अपहरण कही जाती है।

तुलुव वंश के प्रमुख शासक (1505–1570 ई०)
[Main Rulers of Tuluva Dynasty (1505–1570 A.D.)]

वीर नरसिंह ने नए राजवंश की स्थापना की। जिसको तुलुव वंश कहते हैं। निम्नलिखित इस वंश के प्रमुख राजा हुए—

(i) नरसिंह तुलुव (1505–1509 ई०)

(ii) कृष्णदेव राय (1509–1529 ई)

(iii) अच्युत राय (1529–1542 ई०)

(iv) सदाशिव राय और उसके उत्तराधिकारी (1542–1570 ई०)

तुलुव वंश के शासनकाल की उल्लेखनीय घटनाओं का संक्षिप्त वृतान्त निम्नप्रकार है—

(1) साम्राज्य विस्तार—तुलुव वंश की स्थापना वीर नरसिंह द्वारा की गयी थी। वह वीर शासक थ उसने 1505 ई० से 1509 ई० तक शासन किया। उसके उपरान्त **कृष्णदेव राय** 1509 ई० से 1529 ई शासनाध्यक्ष रहे। वह न केवल विजयनगर का महान शासक था वरन् उसकी गणना भारत के इतिह महानतम शासकों में होती है। उसने अनेक युद्ध लड़े और अनेक विद्रोही सामंतों का दमन किया। उसने द दोआब जीत लिया था। कृष्णदेव राय ने उड़ीसा के राजा **गजपति प्रताप रूद्र** एवं बहमनी राज्य के मुहम्मद शाह को पराजित किया। राजाप्रताप रूद्र ने अपनी पुत्री का विवाह कृष्णदेव राय के साथ कर कृष्णदेव राय ने **उदयगिरि** का दुर्ग भी अपने आधीन कर लिया था। उसके बाद उसने **कोडबिंड कोडपल्ली** पर विजय प्राप्त कर ली और 1520 ई० में बीजापुर के सुल्तान को हराया तथा बीजापुर रा पदाक्रांत किया और **गुलबर्गा** के दुर्ग पर आक्रमण किया। कृष्णदेव राय की इन सैनिक गतिविधि फलस्वरूप विजयनगर साम्राज्य की सीमाएँ काफी विस्तृत हो गई थीं और इसकी शक्ति तथा वैभव उ शिखर तक पहुँच गए। वह जितना महान और वीर विजेता था उतना ही योग्य शासक होने के साथ-साथ एवं विद्वानों का संरक्षक भी था, विदेशी पर्यटकों ने उसे असाधारण शासकों की श्रेणी में माना है और न्यायप्रियता की भूरी-भूरी प्रशंसा की है।

(2) शत्रुओं का प्रकोप—कृष्णदेव राय के पश्चात् विजयनगर का पतन होने लगा। उसके उत्तराधि निर्बल और अयोग्य निकले। विजयनगर चारों ओर से शत्रुओं से घिर गया। इसी समय कृष्णदेव राय क **अच्युत राय** गद्दी पर बैठा। वह नितांत अयोग्य था। उसके समय चारों ओर विद्रोह होने लगे। बीजाप सुल्तान ने **रायचूर** तथा **मुदगल** को अपने साम्राज्य में मिला लिया। **अच्युत राय** का उत्तराधिकारी सद **राय** भी अयोग्य तथा दुर्बल था। फलस्वरूप शासन का समस्त कार्य प्रधानमंत्री **राम राय** के हाथों में चला अब दरबार में दलबंदियां प्रारम्भ हो गयीं। इस प्रकार विजयनगर के निर्बल राजाओं के कारण उसका पत गया।

(3) विजयनगर पर दोहरा संकट—विजयनगर के प्रधानमंत्री **राम राय** ने अहमद नगर तथा गोलक के सुल्तानों से मित्रता करके बीजापुर पर आक्रमण कर दिया, जिससे वह **रायचूर** तथा **मुदगल** के दुर्ग फिर से प्राप्त कर सके, परन्तु बीजापुर का मंत्री अत्यंत कुशल था। उसने विजयनगर, अहमदनगर गोलकुण्डा के संघ को तोड़ दिया। अत: एक नए संघ का निर्माण हुआ जिसमें अहमदनगर के f गोलकुण्डा तथा बीजापुर के सुल्तान मिल गए। सबने मिलकर अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया। इस स संघ में विजयनगर ही एक मात्र हिन्दू राज्य था। अन्य सभी मुस्लिम राज्य थे। इस आक्रमण में हिंदु मुसलमानों के साथ अपमानजनक व्यवहार किया। अत: यह संघ सांप्रदायिक आधार पर विछिन्न हो गए परिणामस्वरूप अब विजयनगर के विरुद्ध मुसलमान राज्यों ने मिलकर संयुक्त संघ बना लिया, मात्र 'बरा सुल्तान इस संघ से पृथक रहा।

(4) तालीकोट का युद्ध—1565 ई० में मुस्लिम राज्यों के संघ ने मिलकर विजयनगर पर धावा दिया। इस संयुक्त सेना ने दक्षिण की ओर से आक्रमण किया और **तालीकोट** के निकट विजयनगर की पर आक्रमण करने के लिए रुक गई। विजयनगर का मंत्री राम राय अपनी सेना के साथ तालीकोट पहुँचा, पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। युद्ध में राम राय मारा गया और मुसलमान सेना ने विजयनगर को बुरी तरह और असंख्य स्त्रियों, बच्चों व पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया। इतिहास कार **सीवेल** ने लिखा है **"संसार के इतिहास में कभी भी इतने वैभवशाली नगर का इस प्रकार सर्वनाश नहीं किया गया, जैस**

विजयनगर का।'' इस प्रकार विजयनगर का वैभव जाता रहा और दक्षिण में अनेक स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आ गए।

युद्ध का परिणाम—तालीकोट के युद्ध में मुसलमान सेनाओं ने संयुक्त रूप से मिलकर लूटमार की थी और नरसंहार को अंजाम दिया था, किंतु वे विजयनगर के अस्तित्व को पूरी तरह से समाप्त करने में सफल नहीं हुए। इसका प्रमुख कारण यह था कि तालीकोट के युद्ध के पश्चात मुस्लिम राज्यों में फिर ईर्ष्या का भाव भड़क उठा और वे निर्बल हो गए। इस निर्बलता का लाभ उठाकर विजयनगर ने अपनी खोई हुई भूमि और शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया।

अरविंदु वंश (1570–1614 ई०) [Arvindu Dynasty (1570–1614 A.D.)]

1570 ई० में विजयनगर के प्रधानमंत्री राम राय के भाई **तिरुमल** ने **वेनुगोंडा** को राजधानी बनाकर विजयनगर के राजा **सदाशिव** से सत्ता हस्तगत कर ली और विजयनगर पर शासन करने के लिए अरविन्दु वंश की स्थापना की। इस वंश के सभी राजा दुर्बल हुए जिनके समय में यह साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा। अवसर पाकर मुसलमान शासकों ने धीरे-धीरे विजयनगर को हथिया लिया और उसका अंत कर दिया।

विजयनगर की शासन-व्यवस्था (Administrative System of Vijaynagar)

(1) केंद्रीय शासन—शासक ही राज्य की संपूर्ण शक्ति का केन्द्र था। विजयनगर के शासक निरंकुश तो थे, परन्तु वे स्वेच्छाचारी बिल्कुल नहीं थे। राज्य की संपूर्ण शक्ति राजा में निहित थी, किन्तु वे सैदव प्रजा की भलाई के प्रति सजग रहते थे। राजा न्याय का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। राजा को परामर्श एवं सहायता देने के लिए एक मंत्री-परिषद् होती थी। राजा प्रांतीय शासकों एवं अन्य राज्य-कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं करता था। केंद्रीय शासन में अनेक विभाग होते थे तथा प्रत्येक विभाग का अलग अध्यक्ष होता था। विजयनगर के शासकों का दरबार अत्यधिक वैभवपूर्ण था। जिसे देखकर विदेशी यात्री आश्चर्यचकित रह जाते थे।

(2) प्रांतीय शासन—शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य को 6 प्रमुख संभागों में विभक्त किया गया था। प्रत्येक संभाग का एक प्रशासक होता था। उस पर शासन का उत्तरदायित्व होता था। वही आय-व्यय का ब्यौरा राजा के सामने प्रस्तुत करता था तथा आय का आधा भाग उसे केंद्रीय कोष में जमा करना होता था। प्रांतीय नायक युद्ध होने पर राजा को सैनिक सहायता देते थे। यद्यपि प्रांत के शासन पर केंद्र का पूरा नियंत्रण रहता था तथापि प्रांतीय सूबेदार अनेक शक्तियों का उपभोग करते थे।

(3) स्थानीय शासन—प्रांत **नाडू** (जिलों) में तथा प्रत्येक जिला छोटी नगर-ग्राम इकाइयों में बँटा होता था। सबसे छोटी इकाई गाँव होते थे। गाँव में ग्राम-पंचायतों की व्यवस्था थी, जो छोटे-छोटे झगड़ों को सुलझाती थी एवं शांति बनाए रखने का कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार **महानायकाचार्य** नामक एक पदाधिकारी के माध्यम से गाँवों से सम्पर्क बनाए रखती थीं।

(4) न्याय-प्रणाली—विजयनगर राज्य में न्याय-प्रणाली पूरी तरह सुगठित थी, देश में अनेक न्यायालय थे। सर्वोच्च न्यायालय राजा के अधीन था। राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। दण्ड-विधान पर्याप्त कठोर था। चोरी, व्यभिचार तथा राजद्रोह के लिए मृत्युदंड तक का प्रावधान था, इसी कारण अपराध कम होते थे। ब्राह्मणों को प्राणदंड नहीं दिया जाता था, सर्वत्र शांति और व्यवस्था व्याप्त थी।

(5) सैन्य-व्यवस्था—विजयनगर के शासकों की सैन्य-व्यवस्था बहुत व्यवस्थित और संगठित थी। सेना के चार भाग होते थे। **(i) घुड़सवार, (ii) हाथी सवार, (iii) पैदल** और **(iv) तोपखाना**। सैनिकों को वेतन एवं प्रशिक्षण देने की उचित व्यवस्था थी। मुस्लिम यात्री **अब्दुर्रज्जाक** ने लिखा है ''**विजयनगर राज्य में बहुत से सैनिक स्कूल थे, जिनमें वहाँ के निवासियों को तलवार तथा धनुष चलाने की शिक्षा दी जाती थी।**'' सेना में जागीरदारी प्रथा का प्रचलन था।

(6) राज्य के आय के साधन—राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमि-कर था। एक विद्वान पुर्तग लेखक के अनुसार किसानों से 9/10 भाग से लेकर आवश्यकता पड़ने पर उपज का 1/2 लगान (भूमि—व के रूप में लिया जाता था। जनता से व्यवसाय-कर, चरागाह-कर, विवाह-कर, उद्यानों तथा दस्तकारी वस्तुओं पर भी सरकार कर लेती थी। कर नकद एवं उपज दोनों रूप में लिया जाता था। करों की संख्या अ थी, परंतु अनियमित रूप से धन नहीं वसूल किया जाता था।

(7) आर्थिक दशा—विजयनगर राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ थी। अत: प्रत्येक व्यक्ति सुख और आनंद का जीवन बिता रहा था। ईरानी यात्री **अब्दुर्रज्जाक** ने लिखा है "**राजा ही धनवान नहीं था, व प्रजा भी धनवान थी। जनसाधारण भी कानों, गलों, हाथों और अंगुलियों में आभूषण पहनते थे।**

पेइज लिखता है—"**विजयनगर विश्व के सर्वश्रेष्ठ नगरों में से एक था, यहाँ पर जीवन की स वस्तुएँ एवं सुविधाएँ उपलब्ध थीं।**"

(8) विजयनगर की सामाजिक स्थिति—विजयनगर राज्य का समाज दो वर्गों में विभाजित था। वर्ग वैभव पूर्ण संपन्न एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिता रहे थे, तो दूसरी ओर झोपडियों में रहने वाले अति—दी और कष्टमय जीवन जी रहे थें। समाज में ब्राह्मणों को सम्मान दिया जाता था। सामाजिक दशा का वर्णन नू ने इस प्रकार किया है, "**स्त्री हिसाब रखने वाली, स्त्री क्लर्क और स्त्री अंगरक्षकों के अतिरि राजदरबार में स्त्री-पहलवान, स्त्री-ज्योतिषी एवं स्त्री भविष्य-वक्ता भी थीं।**"

इस कथन से विजयनगर के सभ्य एवं प्रगतिशील समाज की एक झलक देखने को मिलती है। न मांसाहारी भी थे, किंतु गाय एवं बैल का मांस वर्जित था। ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य सभी जातियों के लि खानपान के विषय में कोई प्रतिबंध नहीं था। समाज में बाल विवाह, धनी व्यक्तियों में बहुपत्नी प्रथा, दहे सती-प्रथा, आदि प्रचलित थीं।

9. साहित्य एवं कला की उन्नति—विजयनगर राज्य के लगभग सभी राजा साहित्य के प्रेमी थे व विद्वानों का आदर करते थे। विजय नगर राज्य में अनेक भाषाओं (तेलुगू, तमिल, कन्नड़ तथा संस्कृत) में ब से ग्रन्थ लिखे गए। कृष्णदेव राय स्वयं उच्च कोटि के साहित्य-प्रेमी, विद्वान, कवि तथा संगीतकार थे। उन अपने शासन काल में प्रत्येक कला प्रेमी को आश्रय दिया। उन्होंने तेलुगू भाषा में '**अमुक्तमल्यद**' नाम पुस्तक की स्वयं रचना की थी। कृष्णदेव राय के शासनकाल में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ, जो कला श्रेष्ठ उदाहरण माने जाते थे। **विट्ठलस्वामी** का मंदिर तथा **हजार स्तंभों** वाला हजारा मंदिर हिंदू स्थाप कला के अनोखे नमूने हैं।

फर्ग्यूसन के अनुसार—"**विट्ठलस्वामी का मंदिर फूलों से अलंकृत वैभव की पराकाष्ठा द्योतक है। संगीत, नृत्य, नाटक, व्याकरण, न्याय दर्शन के ग्रंथों की रचना को प्रोत्साहन के का विजयनगर साम्राज्य को दक्षिणी भारतीय संस्कृति का समन्वय मानना उचित ही प्रतीत होता था।**'

अब्दुर्रज्जाक ने लिखा है—"संपूर्ण विश्व में न तो ऐसा नगर देखा गया है और न सुना गया है। इस दे में चाँदी तथा ताँबे के सिक्के प्रचलित हैं।" इस राज्य के शासकों की एक विशेषता यह भी थी कि सभी शास वैष्णव मतावलंबी होते हुए भी धार्मिक सहिष्णु थे (secular)। एक विद्वान ने इस संबंध में लिखा है— "**रा ने इतनी स्वतंत्रता दे रखी थी कि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार धर्माचरण कर सकता था तथा अप धर्म के अनुसार जीवन बिता सकता था।**"

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है "**विजयनगर साम्राज्य ने दक्षिण के मुसलमानों के आक्रमण के विरुद्ध हिंदू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करके एक महान ऐतिहासिक उद्देदश्य पूरा किया।**"

विजयनगर राज्य के पतन के कारण (Reasons for the Downfall of Vijaynagar Kingdom)

विजयनगर राज्य के पतन के बहुत से कारण थे। सर्व प्रमुख यह था कि हिंदुओं के पास मुसलमानों के समान संगठित और समर्पित सेना नहीं थी, दूसरा कारण यह था कि हिन्दू सेना के हाथी बहुधा युद्ध क्षेत्र में तोपखाने से भड़क जाते थे और उलटे मुँह भागकर अपनी ही सेना को कुचल डालते थे। संक्षेप में विजयनगर राज्य के पतन के प्रमुख कारण निम्न प्रकार थे—

(1) प्रांतीय शासकों की निजी सेनाओं को उचित समय पर सहयोग नहीं प्राप्त होता था।

(2) विजयनगर के राजा निरंकुश तो थे, किंतु उन्होंने प्रान्तों के अधिकारियों को विशेष अधिकार दे रखे थे; जिनके अंतर्गत वे धीरे-धीरे शक्ति बढ़ाकर स्वतंत्र होने का अवसर खोजने लगते थे। परवर्ती शासक अयोग्य तथा दुर्बल थे जिनमें इतनी शक्ति न थी कि वे विद्रोही सामंतों को दबा सके।

(3) हिंदू राजाओं की राजनीति धीरे-धीरे दोषपूर्ण होती चली गई, जिसका वर्णन **फरिश्ता** ने इस प्रकार किया है—"**विजयनगर के काफिरों ने, जो बहुत दिनों से ऐसे अवसर की खोज में थे, अपनी क्रूरता के प्रदर्शन को धूल में मिलाया और पाक कुरान तक को अपमानित करने से भी वे नहीं चूके।**"

(4) विजयनगर राज्य का सैन्य-संगठन गतिमान नहीं था। उनका तोपखाना बहुत ही आशक्त और पुराना तथा धीमी चाल वाला था।

(5) शासकों की कठोर न्याय-व्यवस्था के कारण विद्रोह होते रहते थे।

(6) इस राज्य के कुछ शासकों से मुसलमान राज्य क्रोधित हो गए थे और उन्होंने हिन्दू राज्यों को नष्ट करने का निर्णय कर लिया था। उनकी शत्रुता विजयनगर साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण बनी।

(7) इन सब कारणों के अतिरिक्त दक्षिण के बहमनी सल्तनत के शासकों से अनवरत चल रहे विवाद ने विजयनगर साम्राज्य को दुर्बल कर दिया जिसके कारण इस साम्राज्य का अंत हुआ।

सन् 1565 ई० में तालीकोट के प्रसिद्ध मैदान में विजयनगर की पराजय हुई। मुसलमान नगर में घुस आए और उन्होंने नगर को जलाकर नष्ट करने का भरपूर प्रयास किया। सैनिकों ने बड़ी बेरहमी से हजारों स्त्री-पुरुषों का संहार कर दिया और नगर के सुंदर आलीशान भवनों को पूर्णरूप से नष्ट कर दिया।

इस युद्ध ने विजयनगर को पूर्णरूप से नष्ट एवं शक्तिहीन बना दिया। यद्यपि इस युद्ध के बाद अरविन्दु वंश के शासकों ने साम्राज्य की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु कुछ ही समय में विजयनगर राज्य का अस्तित्व ही नहीं रहा।

सारांश (Summary)

फिरोज तुगलक की मृत्यु के कुछ ही समय उपरान्त दिल्ली सल्तनत के जिन प्रांतों ने अपनी स्वाधीनता को स्थापना की उनमें जौनपुर सर्वप्रथम था। जौनपुर नगर की स्थापना तुगलक वंश के सुल्तान फिरोज तुगलक द्वारा अपने चचेरे भाई जूना खाँ (मुहम्मद तुगलक) के नाम पर की गयी थी।

आमेर राज्य की स्थापना दसवीं शताब्दी में हुई थी। इस राज्य को आजकल **जयपुर** नाम से जाना है। इस राज्य पर सूर्यवंशी कछवाहा राजपूत शासन करते थे। इसके इतिहास के प्रारंभिक काल में यह मेव प्रभुत्व में रहा, किन्तु 14वीं शताब्दी में इसकी गणना राजस्थान के प्रथम श्रेणी के राज्यों में होने लगी

वीर नरसिंह ने तुलुव वंश की स्थापना की थी। वह एक वीर शासक था और उसने 1505 ई० से 1 ई० तक मात्र 4 वर्ष शासन किया था। उसके बाद **कृष्णदेव राय** ने 1509 ई० से 1529 ई० तक शासन वह न केवल विजयनगर का महान शासक था। उसकी गणना भारत के इतिहास के महानतम शासकों जाती है।

सल्तनत काल में हिंदुओं में अनेक ऐसे विचारक हुए जिन्होंने भक्ति मार्ग पर विशेष बल दिया औ सुधार का एक नया आंदोलन प्रारंभ किया जो भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जाता था।

अभ्यास-प्रश्न (Exercise Questions)

1. विजयनगर की शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिये।
2. विजयनगर राज्य के उत्थान व पतन का वर्णन कीजिये।
3. विजयनबर की शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिये।
4. तुलुव वंश के प्रमुख शासकों का वर्णन कीजिये।
5. सल्तनतकालीन उत्तरी भारत के स्वतंत्र राज्यों का वर्णन कीजिये।
6. तुलुव वंश के शासनकाल की प्रमख घटनाओं का संक्षिपत वर्णन कीजिये।

संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. भारतीय इतिहास का वैदिक युग (Vol–1)—*एस०एल० नागौरी, कांता नागौरी, पांइटर पब्लि*
2. प्राचीन भारत इतिहास—*लेखन-प्रतिभा प्रकाशन।*
3. भारतीय इतिहास : एक विश्लेषण—*मनीकांत सिंह, किताब महल।*

MA HIS-103H

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणिः पश्यन्तु माकश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

Swami Vivekanand
SUBHARTI UNIVERSITY
Subhartipuram, NH-58, Delhi-Haridwar Bypass Road,
Meerut, Uttar Pradesh 250005
Phone : 0121-243 9043
Website : www.subhartidde.com, E-mail : ddesvsu@gmail.com